हे अर्ज्जुन! यदि तुम मेरे जानेमें सम्मत हो, तो महात्मा प्रजानाथ युधिष्ठिरके निकट जाकर उनसे मेरे जानेकी बात कहो। हे महाबाहो! उनकी सम्मतिके अतिरिक्त मैं किसी कार्य्यको नहीं कर सकता, द्वारकापुरीमें जाना तो दूर रहे, मेरे प्राणत्यागका समय उपस्थित होनेपर भी मैं उनके अनभिलषित कार्य्यको नहीं कर सकता। हे पृथापुत्र! मैं तुम्हारा प्रीतिकर तथा हिताभिलाषी होनेसे यह सब सत्य वचन कहा है, इसे कदापि मिथ्या न समझना। हे अर्ज्जुन! देखो, सबल, सपद और अनुयाइयोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्र सुयोधनके मारे जानेसे इस समय यहांपर मेरे वास करनेका प्रयोजन निवृत्त हुआ है। हे तात! पर्व्वत, वन और काननयुक्त अनेक भांतिके रत्नोंसे परिपूर्ण समुद्र सहित पृथ्वी धर्म्मपुत्र धीमान् धर्म्मज्ञ राजा युधिष्ठिरके वशमें हुई है; इस समय वह अनेक भांतिसे महानुभाव सिद्धोंके द्वारा उपासित और बन्दिजनोंसे सदा स्तुत होकर धर्म्मपूर्व्वक इस समस्त पृथिवीको पालन करें। आज तुम मेरे सङ्ग कुरुवर्द्धन राजा युधिष्ठिरके समीप चलके उनसे मेरे द्वारकागमनका विषय पूंछो। हे पार्थ! वह कुरुपति महाबुद्धिमान युधिष्ठिर मेरे माननीय और प्रिय हैं, मैंने यह अपना शरीर तथा गृहस्थित सारा धन उन्हें अर्पण किया है। हे नृपनन्दन! जब यह पृथ्वी तुम्हारे और उत्तम चरित्रवाले गुरु युधिष्ठिरके वशमें हुई है, तब तुम्हारे अतिरिक्त यहांपर मेरे रहनेका कुछ भी कारण वा प्रयोजन नहीं है। हे पार्थिव! उस समय अमितपराक्रमी अर्ज्जुनने महात्मा कृष्णका ऐसा वचन सुनके उनका पूरी रीतिसे सत्कार करके दुःखपूर्व्वक कहा कि "ऐसा ही होगा।"

१५ अध्याय समाप्त।

अनुगीतापर्व्व आरम्भ।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्र! महात्मा केशव और अर्ज्जुनने शत्रुओंको मारके उस सभाके बीच निवास करते हुए कौनसी कथा कही थी?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! पृथापुत्र अर्ज्जुन निज राज्य पाकर हर्षपूर्व्वक कृष्णके सङ्ग उस सभामें विहार करने लगे। अनन्तर प्रहृष्टचित्त केशव और अर्ज्जुनने स्वजनोंमें घिरकर इच्छानुसार स्वर्गस्थानसदृश किसी सभामण्डपमें गमन किया। अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन कृष्णके सहित उस रमणीय सभाको देखके अधिक सन्तुष्ट होकर उनसे यह वचन बोले। हे महाबाहो देवकीतनय! उपस्थित संग्रामके समयमें आपका वह ईश्वररूप और माहात्म्य मुझे विशेष रीतिसे विदित हुआ है। हे केशव! पहले आपने सुहृदता पूर्व्वक मुझसे जो सब कथा कही थी, मेरा चित्तभ्रंश होनेसे वे सब विषय भूल गये हैं। हे माधव! आप भी शीघ्र द्वारकामें जायंगे, परन्तु उन विषयोंको फिर सुननेको मुझे अभिलाष होती है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी वाग्मिवर श्रीकृष्ण फाल्गुन अर्ज्जुनका ऐसा वचन सुनके उन्हें आलिङ्गन करके कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ! तुमने मेरे समीप समस्त गुप्तविषयोंको सुना है और स्वरूपयुक्त सनातन धर्म्म तथा शाश्वत लोकोंको जाना है। तुमने मूर्खतासे जो मेरे कहे हुए वचनको ग्रहण नहीं किया, वह मुझे अत्यन्त अप्रिय हुआ है; क्यों कि आज मेरी वह स्मृति फिर न प्रकट होगी। हे पाण्डुपुत्र! इसलिये मुझे निश्चय बोध होता है, कि तुम दुर्म्मेधा तथा श्रद्धाहीन हो; अब मैं उन विषयोंको तुमसे अशेषरूपसे कहनेमें समर्थ नहीं होता हूं। हे धनञ्जय! ब्रह्मपद विज्ञानमें वह धर्म्म ही यथेष्ट है, मैं फिर तुमसे पहलेकी भांति उसे

अशेष रूपसे नहीं कह सकता हूं। पहिले मैंने योगयुक्त होकर तुमसे उस परब्रह्मका विषय कहा था; अब उस विषयमें पुरातन इतिहास कहता हूं। हे धार्म्मिकवर! तुम जैसी बुद्धि अवलम्बन करनेसे श्रेष्ठ गति लाभ कर सकोगे; इसलिये तुम सावधान होकर मेरा समस्त वचन सुनो।

हे अरिदमन! एक बार कोई दुर्दर्ष ब्राह्मण स्वर्ग और ब्रह्मलोकसे मेरे पास आया, मैंने उसकी पूजा करके धर्म्मविषय पूछा। उसने दिव्यविधिके अनुसार मुझसे जो कहा था, तुम बिचार न करके उसे सुनो।

ब्राह्मण बोला, हे कृष्ण! तुम प्राणियोंके विषयमें अनुकम्पा करके मोक्षधर्म्म अवलम्बन पूर्व्वक मोहच्छेद करो; तुमने मुझसे जो विषय पूछा, है, उसे मैं यथावत् कहता हूं, सावधान होके सुनो। तपस्वी धर्म्मवित्तम काश्यप नाम किसी बिप्रने धर्म्मसमूहके आगमज्ञ किसी द्विजवरको पाया था। मेधावी बिप्रवर काश्यपने गतागत विषयोंमें अधिक ज्ञानबिज्ञान-पारग, लोकतत्वार्थ कुशल, सुख दुःखके तात्पर्य्य और जन्ममरणके तत्त्वज्ञ, पाप-पुण्य कोविद, ऊंच-नीच द्रष्टा, कर्म्मविद देहधारियोंके गतिज्ञ, मुक्तावत् बिचरणशील, सिद्ध, प्रशान्त, संयतेन्द्रिय ब्रह्मतेजसे दिप्यमान, सर्व्वत्रगामी और अन्तर्द्धान गतिज्ञ उस द्विजवरको यथार्थ रीतिसे जानकर तथा अन्तर्हित चक्रधर सिद्धगणके सहगामी, एकान्तमें सम्भाषमाण उन लोगोंके सङ्ग समासीन, पवनकी भांति यदृच्छाचारी धर्म्मकाम उस द्विजवरके वैसे अत्यन्त महत् अद्भुत कार्य्यको अवलोकन करके बिस्मित होकर महतो परिचर्य्याके सहारे उनका परितोष किया। हे परन्तप! काश्यपके बिशुद्ध चित्तसे शास्त्र और सच्चरित्रयुक्त सिद्ध द्विजवरको गुरुभक्तिके सहारे सन्तुष्ट करनेसे उसका वह कार्य्य युक्तियुक्त हुआ था। हे जनार्द्दन! वह सिद्ध द्विजवर शिष्य काश्यपकी परमा सिद्धिकी पर्य्यालोचना करते हुए उसपर परितुष्ट होकर प्रसन्नचित्तसे उससे जो विषय कहा था, उसे तुम मेरे समीप सुनो।

सिद्ध बोला, हे तात! मनुष्य बिविधकर्म्मोंके सहारे इस लोकमें गति और केवल पुण्ययोगके द्वारा देवलोकमें संस्थिति लाभ किया करते हैं। परन्तु उससे उन लोगोंको किसी प्रकारका अत्यन्त सुख वा शाश्वती स्थिति-लाभ नहीं होता, बल्कि दुःखसे प्राप्त हुए अत्युच्च स्थानसे बार बार उनका पतन ही होता है।

हे अनघ! मैंने विषयतृष्णासे मोहित, काम तथा मन्युयुक्त होकर बहुतसे पापकार्य्योंका अनुष्ठान करते हुए अनेक प्रकारकी कष्टाकरी अशुभगति पाई है; बार बार जन्म-मरणकी दुःख पीड़ा सही है, बिबिध आहार भोजन, अनेक प्रकारके स्तनपान, बिबिध माता और पृथग्विध पितादर्शन तथा बिचित्र सुख और दुःख भोग किये हैं। मैंने बहुतेरे प्रियजनोंके सहित बिवास तथा अप्रियजनोंके सहित संवास किया है, बहुत कष्टसे जो सब धन अर्ज्जन किया था, उसे भी नष्ट किया है। राजा और स्वजनोंसे अवमान, क्लेश, शारीरिक और मानसिक दारुण वेदना, अत्यन्त बिमानता तथा दारुण बधबन्धनको प्राप्त कर चुका हूं। मैं नरकगमन, यमगृहकी यन्त्रणा और मैंने इस लोकमें सदा जरा, रोग बिबिध व्यसन प्रभृति अनेक प्रकारके द्वन्द्वज दुःखोंको अनुभव किया है। उसके अनन्तर किसी समयमें मैंने दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर वैराग्य और निराकार ब्रह्मभाव अवलम्बन करते हुए इस लोकतन्त्रको परित्याग किया है। मैंने इस लोकमें सब बिषयोंको भोगकर अन्तमें इस योगमार्गका अनुष्ठान करते हुए मनके प्रसादसे ऐसी अन्तर्द्धान आदि सिद्धि लाभ की है; इसलिये अब मैं इसलोकमें न आऊंगा और सब लोकोंको अवलोकन करूंगा। हे द्विजश्रेष्ठ! समस्त प्रजाकी सृष्टिसे

मोक्ष पर्य्यन्त आत्माकी शुभगति प्राप्त होनेसे मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हुई है, इसके अनन्तर मैं ब्रह्माका परमपद पाऊंगा, इसमें तुम कुछ भी सन्देह मत करो। हे परन्तप! मैं अब इस लोकमें आके मर्त्यलोकका दर्शन न करूंगा। हे महाप्राज्ञ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये कहो, तुम्हारे निमित्त क्या करूं, यदि तुम्हें कुछ अभिलाष हो, तो वह सिद्ध होगी; उसका यही समय उपस्थित हुआ है। तुम जिस लिये मेरे समीप आये हो, उसे मैंने जाना है; मैं थोड़े ही समयके बीच चला जाऊंगा, इसी लिये तुम्हें आदेश करता हूं। हे विचक्षण! मैं तुम्हारे स्वभावसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं; इसलिये मैं यह वचन कहता हूं, कि तुम्हारी जिसमें कल्याणकामना हो, मुझसे तुम वही पूछो। हे काश्यप! जब तुम मुझे जान सके हो, तब मैं तुम्हारी बुद्धिकी बड़ाई और प्रशंसा करता हूं और तुम्हें ही मेधावी बोध करता हूं।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण ब्राह्मणसे बोले, अनन्तर धार्म्मिकप्रवर काश्यपने उस सिद्ध द्विजवरके दोनों चरण ग्रहण करके उनसे सुदुर्व्वच प्रश्न किया; तब उन्होंने उससे सब धर्म्म कहा था।

काश्यप बोले, आत्मा किस प्रकार शरीर परित्याग करता है? किस प्रकार शरीर पाता और कष्टकर संसारमें आगमन करते हुए किस प्रकार उससे मुक्त होता है? प्रकृतिको परित्याग करके किस प्रकार उस शरीरको छोड़ता है और शरीरसे छूटनेपर किस भांति दूसरा शरीर ग्रहण करता है? यह मनुष्य किस प्रकार शुभाशुभ कर्म्मोंको भोग करता है और जब मनुष्य देहरहित होता है, तब उसके कर्म्म कहां निवास करते हैं?

ब्राह्मण बोला, हे वार्ष्णेय! सिद्धने काश्यपके पूछनेपर इन प्रश्नोंका जो उत्तर दिया था, उसे बिस्तारपूर्व्वक तुमसे कहता हूं सुनो।

सिद्ध बोला, जीव वर्त्तमान शरीरसे आयु और कीर्त्तिकर जो सब कार्य्य करता है, अन्य शरीर ग्रहण करनेपर उन कार्य्योंके क्षय होनेसे क्षीणायु होकर बिपरीत कार्य्य करनेमें प्रवृत्त होता है और उसका बिनाश समय उपस्थित होनेपर बिपरीत बुद्धिके अनुवर्त्ती हुआ करता है; उस समय अपना सत्त्व बल तथा कालको न जानके आत्मज्ञानसे रहित होकर निजविरुद्ध कर्म्मोंका पूर्ण रीतिसे आचरण करता है। जब जीवको अनेक प्रकारके बहुतेरे क्लेश उपस्थित होते हैं, उस समय उसे उन क्लेशोंको पूर्ण रीतिसे भोगना पड़ता है, कदापि नहीं भी भोगना पड़ता। अत्यन्त जीर्ण न होनेपर दुष्ट अन्न, मांस पीनेकी वस्तु तथा अन्यान्य विरोधी गुरुतर वस्तुओंको अधिक परिमाणसे भोजन करता है। अधिक कसरत तथा व्यायाम सेवन करता है और सदा कर्म्मलोभसे उपस्थित वेगोंको धारण किया करता है। भोजन किये हुए अन्नका परिपाक समय उपस्थित न होनेपर रससे अभियुक्त अन्न तथा दिनमें स्वप्नकी सेवा करके स्वयं सब दोषोंको प्रकोपित किया करता है। इस ही प्रकार निज दोषोंको प्रकोपित करनेसे मरणान्तिक रोग लाभ करता तथा उद्बन्धन आदि बिपरीत कार्य्योंका अनुष्ठान किया करता है। इन्हीं कारणोंसे उस समय जीवके शरीरका नाश होता है, परन्तु जीवितका विषय मैं पूरीरीतिसे कहता हूं, उसे सुनो।

उष्मा तीव्र वायुके द्वारा सञ्चालित होकर शरीरमें प्रविष्ट होकर प्राणोंको रोध करती है, इसही प्रकार वह शरीरके बीच प्रकोपित और अत्यन्त बलवान होकर जीवस्थानके सब मर्म्मोंको भेद किया करती है; अनन्तर जीव उस समय पीड़ायुक्त होकर प्रकृतिसे च्युत

बीच ऐसा संशय उपस्थित हो, इसलिये उसे भी मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। सर्व्वलोक पितामह ब्रह्माने पहले आत्माके शरीरको कल्पना करके स्थावर और जङ्गमकेसहित जगत्‌की सृष्टि की। अनन्तर जिसके द्वारा यह समस्त जगत व्याप्त होरहा है, लोग जिसे श्रेष्ठ समझते हैं, देहधारियोंकी अभिव्यक्त स्थान देहादिके आकार स्वरूप उस प्रधान प्रकृतिको उन्होंने उत्पन्न किया। उस जड़स्वभाववाली प्रकृतिको लोग चर कहा करते हैं, परन्तु शुद्ध ब्रह्म चैतन्य उसमें प्रतिबिम्बित होकर जीव तथा ईश भावसे आक्रान्त होनेसे अमृत अचर कहके वर्णित होता है। वह चर अचर तथा शुद्धके बीच चर वा अचर प्रतिपुरुषोंसे मिथुनभावसे निवास करते हैं। इस प्रकार पुरातनी जनश्रुति है, कि प्रजापतिने स्थावर और जङ्गमोंके सहित सब प्राणियोंके विषयादि भूतोंकी सृष्टि की। अनन्तर उस प्रजापति पितामहने शरीर ग्रहणका समय और परिमाण निर्दिष्ट करके भूत गणके बीच सुर, नर और तिर्य्यगादि रूपसे परिवृत्ति तथा प्राणियोंकी पुनरावृत्ति सृजन की। जैसे कोई मेधावी मनुष्य इस जन्ममें परमात्माका दर्शन करनेसे पूर्व्वजन्मके वृत्तान्त और संसारकी अन्तवत्ताका विषय कहा करता है, वैसे ही मैं भी जातिस्मर होकर जो कहूंगा, वह सब यथावत् उत्पन्न होगा। जो लोग सुख और दुःखको पूरी रीतिसे अनित्य जानके बुद्धि-सञ्जात कर्म्मोंके सहित शरीरको विनष्टप्राय जानते हैं और थोड़े सुखको दुःखरूपसे स्मरण करते हैं, वेही घोर दुस्तर संसारसागरसे पार होसकते हैं। हे सत्तम! प्रधानवित् पुरुष जरा मृत्यु और रोगसे आक्रान्त होकर चेतनाविशिष्ट प्राणियोंके बीच चैतन्यका एकत्व अवलोकन करते हुए परमपद अन्वेषण करनेसे जिस प्रकार निर्व्वेद लाभ करता है, उस विषयमें यथावत् उपदेश वचन कहता हूं। हे विप्र! शाश्वत अव्यय ब्रह्मके विषयमें जो ज्ञान उत्तम है, वह मैं तुमसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो।

१८ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, जो मनुष्य पहलेके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करके सबके एकमात्र अधिष्ठानभूत परब्रह्ममें लीन होकर दूसरी किसी प्रकारकी चिन्ता न करते हुए मौनभावसे निवास करता है, वही संसार-बन्धनसे छूटता है। सब लोगोंका मित्र, सर्व्व-सह, चित्त निग्रहमें अनुरक्त जितेन्द्रिय पुरुष जबतक योग सिद्ध न हो, तबतक उस विषयमें दैन्य वा द्वेषरहित तथा जितचित्त होनेसे मुक्त होता है। जो मनुष्य संयत, पवित्र, अहङ्कार तथा अभिमानसे रहित होकर सब प्राणियोंके विषयमें आत्मवत् आचरण करता है, वह सब प्रकारसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग जीना, मरना, सुख, दुःख, लाभ, हानि, प्रिय और अप्रियमें समभावसे ज्ञान करते हैं, वे मुक्त होते हैं। जो मनुष्य निर्द्वन्द्व और निस्पृह होकर किसीके धनमें अभिलाष नहीं करता तथा किसीकी भी अवज्ञा नहीं करता, वह सब भांतिसे मुक्तिलाभ किया करता है। मनुष्य किसी प्रकारके शत्रुओंसे रहित, बन्धुविहीन, अनपत्य, धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंसे रहित तथा निराकांक्षी होनेसे मुक्त होसकता है। पुरुष धर्म्मसे रहित एकमात्र प्रारब्धकर्म्मका प्रापक शरीरात्मक धातुओंके चयनिबन्धनसे प्रशान्तचित्त और निर्द्वन्द्व होनेसे मुक्त हुआ करता है। निराकांक्षी सन्न्यासी पुरुष जगत्‌को अनित्य अश्वत्थ, अवश अचैतन्य और जन्म-मृत्यु तथा जरायुक्त देखता है। वैराग्य बुद्धियुक्त मनुष्य सदा आत्मदोषदर्शी होकर शीघ्र ही आत्माको बन्धनसे विमुक्त किया करता है। जो मनुष्य गन्ध, स्पर्श, रूप, रस, शब्द और परि-ग्रहरहित अनभिज्ञ आत्माका दर्शन करता है,

वही मुक्त होता है। पुरुष पञ्चभौतिक स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरसे रहित, निर्गुण तथा सत्त्व, रज, तमरूपसे विषयभोक्ता परमात्माका दर्शन करके मुक्ति लाभ करता है। मनुष्य ज्ञानपूर्व्वक शारीरिक और मानसिक सङ्कल्पोंको परित्याग करनेसे अग्निकी भांति धीरे धीरे निर्व्वाण लाभ किया करता है। जो मनुष्य सब संस्कारोंसे निर्म्मुक्त निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर तपस्याके सहारे इन्द्रियोंको निग्रह करता है, वही मुक्त होता है। योगी लोग योगयुक्त होकर चित्त निग्रहरूपी उपायके बीच चित्तको अन्तर्म्मुख करते हुए जिस प्रकार नित्यसिद्ध परमात्माका दर्शन करते हैं, इसके अनन्तर मैं उस अनुत्तम योगशास्त्र तथा उसका उपदेश तुम्हारे निकट यथावत् वर्णन करता हूं, सुनो। हे विप्र! पुरुष इन्द्रियोंको निज निज विषयोंसे निवृत्त करके चित्तको केवल जीवात्मामें धारण करे; अनन्तर तीव्र तपस्या करके मोक्षयोग आचरण करे। मनीषी तपस्वी सदा तपमें निष्ठावान होकर योगशास्त्राचरण करते हुए मनके द्वारा देहके बीच आत्माका दर्शन करें। परन्तु यदि वे साधु तपस्वी एकान्तचित्तसे आत्माको देहके बीच करनेमें समर्थ हों, तो वह शरीरमें आत्माका दर्शन पाते हैं। संयत, सदा योगयुक्त जित चित्त जितेन्द्रिय पुरुष पूरी रीतिसे प्रयुक्त होनेसे मनके सहारे आत्माका दर्शन करता है। जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें किसी अदृष्टगोचर पुरुषको देखकर जागनेपर फिर उसे देखनेसे 'यह वही पुरुष है,' ऐसा ही बोध करता है; उस ही प्रकार समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें आत्माको देखकर व्युत्थित होकर उसका विश्वात्मरूपसे दर्शन किया करता है। जैसे कोई मनुष्य मुञ्जसे सींक निकालकर लोगोंको दिखाता है, वैसेही योगी देहसे आत्माको निकालके दर्शन किया करता है। पण्डित लोग शरीरको मुञ्ज और आत्मनिष्ठ जगदाकारसे भासमान मायाको इषीका कहते हैं, योगवित् पण्डितजन भी ऐसा ही अनुत्तम् निदर्शन कहा करते हैं। मनुष्य देह धारण करके शरीरके बीच आत्माका पूरी रीतिसे दर्शन करनेसे इस लोकमें कोई पुरुष ही उसका प्रभु नहीं होसकता; ऐसा ही नहीं बरन त्रिलोकाधिपति भी उसके ईश्वर नहीं हो सकते। वह मनुष्य इच्छा करनेसे देव, गन्धर्व्व और मनुष्य प्रभृतिका शरीर धारण करनेमें समर्थ होता है; और जरामृत्युको अतिक्रम करके उससे शोकार्त्त वा हर्षित नहीं होता। चित्तको वशमें करनेवाला मनुष्य योगयुक्त होकर देवताओंका भी देवत्व विधान करनेमें समर्थ होता है और अनित्य देह परित्याग करके नित्य ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है। प्राणियोंके विनष्ट होनेसे वह भीत नहीं होता और प्राणियोंके किसीके सहारे क्लेशित होनेसे वह दुःखी नहीं होता। युक्तात्मा निष्पृह प्रशान्तचित्त मनुष्य सङ्ग और स्नेहसे उत्पन्न भयङ्कर भय, शोक तथा दुःखसे विचलित नहीं होता। समस्त शस्त्र ऐसे मनुष्यका विनाश करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये जगत्के बीच कहीं भी इस योगसे बढ़के सुखकर अन्य कुछ नहीं है तथा मृत्यु भी इसके निकट विद्यमान नहीं रह सकती; वा कुछ भी नहीं दिखाई देता। योगी पुरुष मनको आत्मामें पूरी रीतिसे नियुक्त करके निवास करते हैं और जरा, दुःख तथा सुख, इन सबसे विशेषरूपसे निवृत्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं। वे इच्छानुसार इस मनुष्य शरीरको परित्याग करके अन्य शरीर धारण कर सकते हैं, परन्तु जब वे योगबलसे ऐश्वर्य्योंको भोगेंगे, उस समय कदापि उससे विरत न होंगे। जिस समय वे मनको आत्मामें पूरी रीतिसे संयुक्त करके चित्तके बीच परमात्माका दर्शन करेंगे उस समय साक्षात् शतक्रतुके ऐश्वर्य्यको भी स्पृहा न करेंगे।

परन्तु पुरुष जिस प्रकार ध्यानशील होकर योग लाभ करता है, उसे सुनो। पुरुष वेदान्त सुनकर गुरुउपदिष्ट उपदेशको पर्य्यालोचना करके देहके बीच वास करे। मनको उस शरीरके बाहिरी भागमें न रखके अभ्यन्तरमें ही स्थापन करे। स्वयं उसके अभ्यन्तरमें रहके मूलधाराादि अन्यतम जिस किसी चक्रमें वास करते हुए उसके सहित मनकी धारणा रखे। जिस समय वह चक्रके बीच रहके सर्व्वात्मक ब्रह्मका ध्यान करेगा, उस समय उसका मन कदापि वहिर्मुख न होने पावेगा। निर्ज्जन, शब्दारहित वनके बीच इन्द्रियोंको निग्रह करते हुए एकाग्र होकर देहके बाहिर तथा भीतरमें परिपूर्ण ब्रह्मका ध्यान करे। और योगके साधनस्वरूप दांत, तालू, जिह्वा, गला, हृदय वा हृदयमें बंधी हुई नाड़ियोंका ध्यान करे अर्थात् दांतसे भोजनकी सब सामग्रियोंको शुद्ध करे, जिह्वाको तालूके सङ्ग संयुक्त करे, गला तथा ग्रीवांको भूख प्याससे निवृत्त करे और हृदय तथा हृदयस्थित नाड़ियोंको परिष्कृत कर रखे। हे मधुसूदन! वह मेधावी शिष्यने मेरे द्वारा इतनी कथा सुनके फिर मुझसे सुदुर्व्वच मोक्षधर्म्म पूछा।

शिष्य बोला, हे अनघ! कोष्ठके बीच किस प्रकार भोजन किया हुआ अन्न परिपाक होता है? किस प्रकार वह रसत्व तथा शोणितत्वको प्राप्त होता है और किस भांतिसे वह जीवोंके समस्त शरीर मांस, मेद स्नायु और हड्डियोंको पुष्ट करता है? बर्द्धमान वा बली-पुरुषोंके शरीर तथा बल किस प्रकार बर्द्धित होते और किस प्रकारसे निर्म्मल पुरुषके मल पृथक् पृथक् भावसे बाहिर होते हैं? यह पुरुष द्वारा निश्वास प्रश्वास करता है तथा यह आत्मा किस स्थानको अवलम्बन करके शरीरके बीच निवास करता है? जीव नाड़ीमार्गमें चेष्टमान होकर किस सूक्ष्म शरीरको वाहन करता है? नाड़ीमार्गका कैसा वर्ण है और उससे फिर किस प्रकार शरीर प्राप्त हुआ करता है। हे भगवन्! यह सब मेरे निकट आपको यथार्थ रीतिसे वर्णन करना उचित है।

हे महाबाहो माधव! मैंने उस ब्राह्मणका इस विषयमें प्रश्न सुनके उससे यह समस्त यथाश्रुत विषय कहा। जैसे पुरुष निज धन गृहके घड़ेमें डालकर घरमें प्रवेश करके विवेचनाके द्वारा घड़ेको खोजकर उसे पाता है, वैसे ही निज शरीरमें मनको डालकर प्रमाद परित्यागके अनिश्चल इन्द्रियोंके द्वारा उस शरीरके बीच आत्माको खोज करे। इस ही प्रकार सदा उद्योगी होकर प्रसन्नचित्तसे खोज करनेसे मनुष्य जिसके दर्शनसे प्रधानवित् होता है, थोड़े ही समयके बीच उस ब्रह्मको पाता है। नेत्रसे परमात्माको देखा नहीं जाता, वह किसी इन्द्रियसे भी ग्राह्य नहीं है; केवल मनरूपी दीपकके द्वारा ही मनुष्यके दृष्टिगोचर हुआ करता है। वह सर्व्वग्राही, सर्व्वत्रगामी सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन और सर्व्वश्रोता है; इसलिये समस्त जगतको परिपूरित करके निवास किया करता है। जब वह शरीरसे निकले, तब जीव उसका दर्शन कर सकता है। जीव सब लक्षणोंसे आक्रान्त सब वस्तुओंको परित्याग करके मनको निजरूपमें धारणा करनेसे मानो मनहीमन हंसते हुए निर्गुण परब्रह्मका दर्शन किया करता है। जीव इस ही प्रकार उस परमात्माको अवलम्बन करके मुझमें लीन होता है।

हे द्विजोत्तम! मैंने तुम्हारे निकट इस रहस्यको यथावत् वर्णन किया; अनन्तर मैं तुम्हें अनुमति प्रदान करता हूं, कि तुम यथासुखसे गमन करो, मैं तुम्हें साधन कराऊंगा। हे कृष्ण! मेरे शिष्य वह महातपस्वी संशितव्रती विप्रने मेरे ऐसे वचनको सुनके इच्छानुसार गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ! मोक्षधर्म्मावलम्बी वह द्विजवर मुझसे यह सब विषय पूरी रीतिसे

कहके अन्तर्हित हुए। हे पार्थ ! तुमने तो एकाग्रचित्तसे एक बार मेरे निकट यह विषय सुना था ; वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं होता। हे अर्ज्जुन ! इसमें मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि जो पण्डित पुरुष व्यग्रचित्त तत्त्वविद्याविहीन और अकृतात्मा है, वह इसे भली भांति नहीं जान सकता। हे भरतश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे जो कहा है, वह देवताओंके निकट भी गोपनीय है ; इस लोकमें किसीने कभी इसे नहीं सुना। हे अनघ ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य इसे सुननेके उपयुक्त नहीं है। जिसका अन्तरात्मा अत्यन्त व्यग्र है, वह पुरुष उत्तम रीतिसे इसे नहीं जान सकता। हे कुन्तीनन्दन! देखो क्रियावान मनुष्योंके द्वारा देवलोक समावृत है, मर्त्यरूप निवर्त्तन करना देवताओंकी अभिलषित नहीं है। मनुष्य देह परित्यागकर जिससे अमरत्व लाभ करके सर्व्वदा सुखभोग करता है, वह सनातन परब्रह्महो परम गति है।

हे पार्थ ! स्वधर्म्ममें रत, ब्रह्मलोकपरायण ब्राह्मण और बहुश्रुत क्षत्रियोंकी तो बात ही क्या है, पापयोनिमें उत्पन्न हुए पुरुष, स्त्री, वैश्य और शूद्र लोग भी इस मोक्षधर्म्मको अवलम्बन करनेसे परम गति पाते हैं। जिससे सिद्धि फल मोक्ष और दुःखका विनिर्णय होता है, मेरे द्वारा उस मोक्षधर्म्म साधनका उपाय और ऐसी हेतुयुक्त कथा कही गई। हे भरतश्रेष्ठ ! इससे बढ़के सुखकर और कुछ भी नहीं है। जो सब बुद्धिमान् श्रद्धावान् और पराक्रान्त मनुष्य इस ही उपायके सहारे इस लोकके सारभूत धनादिको तृणादिकी भांति परित्याग करते हैं, वे शीघ्र ही परम गति प्राप्त करते हैं। हे पार्थ ! मैं इतना कह सकता हूं, कि इसके अनन्तर और कुछ भी नहीं है ; क्यों कि जो पुरुष छः महीनेतक सदा इसमें नियुक्त रहता है, उसमें ही योग सम्यक्‌रूपसे प्रवृत्त होता है।

१९ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ ! इस प्रश्न विषयमें पण्डित लोग दम्पतीके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। कोई ब्राह्मणी ज्ञानविज्ञानपारग निज स्वामीको निर्ज्जन स्थानमें बैठे हुए देखकर बोली। हे स्वामी ! आप अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंसे विहीन मेरे सदृश भार्य्याके विषयमें निर्द्दय तथा मेरे अनन्य गतित्वमें अनभिज्ञ हैं ; तब मैं आपके सदृश पतिका आसरा करके किस लोकमें गमन करूंगी ? मैंने ऐसा सुना है, कि भार्य्या पतिकृत लोकोंको पाती है, मैं आपको पति पाकर कौनसी गति लाभ करूंगी ?

प्रशान्तचित्त ब्राह्मण भार्य्याका ऐसा वचन सुनके हंसके बोला, हे सुभगे पुण्यशीले ! मैं तुम्हारे इस वचनकी असूया नहीं करता। दीक्षा और व्रतादिग्राह्य दृश्य तथा सत्य प्रभृति जो सब कर्म्म विद्यमान हैं, कर्म्म करनेवाले इसे ही कर्त्तव्य कर्म्म कहके व्यवहार किया करते हैं। परन्तु ज्ञानहीन मनुष्य इस लोकमें शरीरायास साध्य कर्म्मके द्वारा केवल मोहका निग्रह करते हैं, एक मुहूर्त्तके लिये नैष्कर्म्म लाभ नहीं कर सकते। कर्म्म, मन और वचनसे सञ्चित शुभाशुभ, जन्मास्थित भङ्ग और अनेक योनियोंमें भ्रमणरूपी कर्म्म सर्व्व भूतोंमें विद्यमान हैं। दृश्य वस्तु सोम तथा घृतादिविशिष्ट सब कर्म्ममार्ग दुर्ज्जनोंके द्वारा श्रेष्ठ कहे गये हैं ; मैं उन कर्म्ममार्गोंसे विरत होकर निज शरीरस्थ भौं और नासिकाके मध्यवर्त्ती पवित्राख्य स्थानका दर्शन किया करता हूं। जिस स्थानमें वह अद्वैत ब्रह्म विद्यमान रहता है और जहां ईड़ा तथा पिङ्गलानाड़ी निवास करती हैं, वहां बुद्धिप्रेरक घोर वायु सब भूतोंको धारण करते हुए सदा सञ्चार किया करता है। ब्रह्मादियुक्त योगीगण और सुव्रत प्रशान्तचित्त, जितेन्द्रिय विद्वान् मनीषीवृन्द जिस ब्रह्मकी उपासना करते हैं ; उस अक्षर ब्रह्मको

नासिकासे सूंघा नहीं जाता, जीभसे आस्वादन नहीं किया जाता और त्वचासे स्पर्श नहीं किया जाता ; केवल मनसे ही जाना जाता है। वह दर्शन तथा श्रवणेन्द्रियसे अतीत है ; गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शब्द और लक्षणविहीन है। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान प्रभृति सृष्टि व्यापार जिससे प्रवर्त्तित होकर जिसमें प्रतिष्ठित हुआ करता है, वे प्राणादि वायु उससे प्रवर्त्तित होकर उसमें ही प्रवेश करते हैं। प्राण, अपान, समान और व्यानके बीच विचरण किया करता है। उस अपानके सहित प्राणके प्रसुप्त अर्थात् भौं और नासिकाके बीच निरुद्ध होनेपर समान और व्यान विलीन होते हैं और उदान, अपान तथा प्राणके बीच निवास करते हुए दोनोंमें व्याप्त रहता है, इसीसे प्राण अपान सोये हुए पुरुषको परित्याग नहीं कर सकते, प्राणादिके अधिकारत्व तथा चेष्टाजनकत्व निबन्धनसे पण्डित लोग उसे उदान कहा करते हैं ; उस एकमात्र उदानमें प्राणादिका अन्तर्भाव होता है, इसीसे ब्रह्मादि विप्रगण सहत परात्मप्रापक तपस्याका निश्चय किया करते हैं। परस्पर भक्षक शरीरमें रहनेवाले प्राणादि वायुके बीच समान वायुके निवासस्थान नाभिमण्डलमें वैश्वानर नाम अग्नि निवास करती है, वह अग्नि सात हिस्सेमें बटके उसके बीच प्रकाशित हुआ करती है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये सातो उस वैश्वानर अग्निकी जिह्वा हैं। सूंघना, देखना, पीना, सुनना, मनन और बोध करना, ये सातो समिध हैं। सूंघनेवाला, खानेवाला, देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला और बोद्धा—ये सात ऋत्विक हैं। हे सुभगे ! घ्रेय, पेय, दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, मन्तव्य और बोधव्य, इन सात विषयोंकी सर्व्वदा हवि बोध करनी चाहिये। पहले कहे हुए सात प्रकारके विद्वान् होतागण सात प्रकारकी ब्रह्माग्निमें सात भांतिके हवि डालकर पृथिव्यादि उत्पन्न किया करते हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन और बुद्धि, ये सात योनि कहके वर्णित हुई हैं। हविर्भूत गुण घ्रेयादि विषय अग्निके गुणगन्धादि ज्ञानरूप धीवृत्तिमें प्रविष्ट होकर संस्कारात्मक अन्तर्व्वास चित्तके बीच वास करते हुए निज योनिभूत घ्राणादिमें उत्पन्न होता और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर भीतर ही लीन हुआ करता है। अनन्तर उस अन्तर्व्वाससे गन्ध, गन्धसे रस, रससे रूप, रूपसे स्पर्श, स्पर्शसे शब्द, शब्दसे मन और मनसे बुद्धि उत्पन्न होता है ; पण्डित लोग इस ही प्रकार सात भांतिकी उत्पत्तिको मालूम किया करते हैं। प्राचीन पण्डितगण इस ही प्रकार वेदसे घ्राणादिरूप ग्रहण करते हैं ; सब लोग प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता इस त्रिविध पूर्णाहुति अर्थात् पूर्ण यज्ञके व्यापक आह्वानके द्वारा परिपूर्ण होकर निज तेजके सहारे परिपूर्ण हुआ करते हैं।

२० अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भामिनि ! इस स्थलमें पण्डित लोग दश प्रकारके होता-विधानसंयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसे तुम सुनो। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पाव, पायु और उपस्थ, ये दश होता हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्य, क्रिया, गति, रेत, मूत्र-पुरीषका त्याग,—ये दश हवि हैं। दिशा, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और मित्र,—ये दश अग्नि हैं। हे भामिनि ! पहले कहे हुए श्रोतादि दशेन्द्रिय रूप होतागण इन्द्रियोंके अधिष्ठात देवता दिगादि रूप दश प्रकारकी अग्निमें हवनीय शब्दादि दश प्रकारके विषयरूप समिधकी आहुति प्रदान किया करते हैं। उस यज्ञमें चित्तरूप स्रुवाके सहारे हुतरूप इन्द्रियार्थोंको

आहुति देकर दक्षिणार्थं अग्निमें चित्तरूप स्रुवा और सुकृत दुष्कृतको डालनेपर केवल पवित्र उत्तम ज्ञान शेष रहता है ; मैंने ऐसा सुना है, कि यह जगत् उस ज्ञानसे पृथक् भूत होकर स्थित है । सब ज्ञेय वस्तु ही चित्त है, ज्ञान उस चित्तको केवल प्रकाश करता है, उसमें संसक्त नहीं होता । जीव बीर्य्य हेतुसे स्थूल शरीरधारी षाट्कौशिक शरीरमें ही सूक्ष्म शरीराभिमानी होकर निवास करता है । वह सूक्ष्म शरीराभिमानी जीव गार्हपत्य और उससे अन्यमन आवहनीय नामसे विख्यात् होता है ; उसमेंही हवि डाली जाती है । उससे पहले वाचस्पति वेद उत्पन्न होता है, तिसके अनन्तर मन उत्पन्न होकर उस वाचस्पतिको पर्य्यवेक्षण करता है, अनन्तर काला पीला प्रभृति वर्णविहीनरूप अर्थात् प्राणवायु उत्पन्न होकर मनका अनुगामी हुआ करता है ।

ब्राह्मणी बोली, जब वचन मनके द्वारा सोचके कहा जाता है, तब किस निमित्त पहले वचन और पीछे मन उत्पन्न हुआ ? किस प्रमाणके अनुसार प्राण मनका अनुगामी होता है और सुषुप्ति समयमें उदित होकर विषयभोग न करनेपर भी कौन उसकी ज्ञानशक्तिको हरण करता है ।

ब्राह्मण बोला, अपान प्राणका प्रभु होकर उस प्राणको मनका अनुगामी करता है ; इस ही हेतु पण्डित लोग प्राणकी उस अपानता गतिको मनकी गति कहा करते हैं । और तुमने मुझसे मन तथा वचन विषयमें प्रश्न किया है, मैं तुमसे उस वाक्य और मनका सम्वाद कहता हूं, सुनो ।

एक बार वाक्य और मन दोनों ही भूतात्माके निकट जाकर उससे बोले, हे विभु ! हम दोनोंके बीच श्रेष्ठ कौन है ; आप उसे कहके हमारा सन्देह दूर करिये । मन भगवान वाग्देवी सरस्वतीसे बोले, मैंही श्रेष्ठ हूं ; अनन्तर वाग्देवीने उनसे कहा, कि तुम जो सोचते हो, मैं उसे प्रकाश करती हूं ; तब मैं तुम्हारी कामधुक् हुई इसलिये तुमसे मैं श्रेष्ठ हूं । वाक्य और मन जब इसी भांति आपसमें विरोध करने लगे, तब मन ब्राह्मणीरूपी होकर दोनोंके विषय विभाग द्वारा समता सम्पादन करते हुए कहने लगा ।

ब्राह्मणीरूपी मन बोला, स्थावर बाह्य इन्द्रियोंके विषय तथा जङ्गम अतीन्द्रिय स्वर्गादि विषय, दोनोंको ही मेरा मन जानो ; परन्तु स्थावर मेरे निकट और जङ्गम तुम्हारे समीप विद्यमान रहते हैं । इसके अतिरिक्त मन्त्र वर्ण और स्वरके द्वारा प्रकाशित वह जङ्गम स्वर्गादि विषय मनको प्राप्त होकर जङ्गम हुआ करते हैं ; उस ही निमित्त तुम मनसे श्रेष्ठ हो । हे शोभने ! जब वाग्देवी स्वयं कामधुक् होकर मनके निकट आती हैं, तब मन उच्छ्वासको प्राप्त होकर वाक्य कहा करता है । हे महाभागे ! वाग्देवी प्राणके द्वारा प्रेरित होकर मनोवृत्ति विशेष प्राण और अपानके भीतर सदा निवास किया करती है ; परन्तु जब वह प्राणकी सहायताके विना अत्यन्त नीच होती है, तब प्रजापतिके निकट जाकर ऐसा वचन कहा करती है, कि "हे भगवन् ! मुझपर प्रसन्न होइये ।" अनन्तर जब प्राण वाक्यको अप्यायित करके प्रकट होता है, तब वाग्देवी प्राणसे उच्छ्वास लाभ करके मौनावलम्बन किया करती है । घोषिणी और अघोषा वाक्य सदा प्रवर्त्तित होती है, उसके बीच घोषिणी वाग्देवी प्राणके अप्यायनकी अपेक्षा करती है ; इस मन्त्रस्वरूपिणी अघोषा वाग्देवी प्राणके अप्यायनकी अपेक्षा नहीं करती, इस ही निमित्त वह घोषिणीसे श्रेष्ठ है । जैसे गऊ उत्तम रस प्रदान करती है, वैसे ही उत्तम अक्षरशालिनी ब्रह्मवादिनी घोषिणी वाग्देवी सदा शाश्वत मोक्ष और सब अर्थोंको प्रकट किया करती है । हे

शुचिस्मिते ! गोरूपी वाग्‌देवी दिव्य देवताद्याकर्षण और अदिव्य व्यवहार प्रकटरूप दोनों भांतिके प्रभावसे प्रकाशित होती है, सूक्ष्म और स्पन्दमान इन दोनों भांतिके वाक्योंका इतना ही अन्तर जानो।

ब्राह्मणी बोली, वाक्य उत्पन्न न होनेपर विवक्षासे प्रेरित वाङ्मयी सरस्वती देवी उस समय कैसी अवस्थामें निवास करती है ?

ब्राह्मण बोला, वह वाग्‌देवी शरीरके बीच प्राणवायुके सहयोगसे प्रस्फुरित होकर प्राणसे अपानको प्राप्त होती है; अनन्तर उदानभूत होकर प्राण छोड़के व्यानके सहित सारे आकाशकी आवरण किया करती है। तिसके अनन्तर वह समानमें प्रतिष्ठित होकर पहलेकी भांति सबको विदित होती है। उक्त कारणसे स्थावरत्व निबन्धन मन विशिष्ट और जङ्गमत्व निबन्धनसे वाग्‌देवी श्रेष्ठ होती है।

२१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे ! इस वाक्य और मनके सम प्राधान्य विषयमें पण्डित लोग जिस प्रकार सप्तहोताके विधानसंयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो। नासिका, नेत्र, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि,—येही सात होता हैं, ये पृथक् पृथक् स्थानमें निवास किया करते हैं। हे शोभने ! ये सातो होता सूक्ष्म अवकाशमें निवास करते हुए परस्परमें परस्परका दर्शन नहीं करते तुम इन स्वभावसिद्ध सातों होताओंको विशेष रीतिसे मालूम करो।

ब्राह्मणी बोली, हे भगवन् ! वे सातो होता सूक्ष्म अवकाशमें निवास करते हुए किस निमित्त परस्परमें परस्परका दर्शन नहीं करते और उनका स्वभाव कैसा है ? यह विषय आप विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोला, घ्राण आदि सातों होताओंको निज निज गुणको ग्रहण करनेकी अनभिज्ञता है, इसलिये वे परस्परमें परस्परके गुण कदापि नहीं जान सकते। जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये गन्धको ग्रहण नहीं करते, केवल नासिका ही गन्धको ग्रहण किया करता है। नासिका, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रसको नहीं जानते, केवल जिह्वासे ही उसका बोध होता है। नासिका, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रूपको ग्रहण नहीं करते, केवल नेत्र ही रूपको ग्रहण किया करता है। नासिका जिह्वा, नेत्र, कान, मन और बुद्धि, ये स्पर्शगुणको ग्रहण नहीं करते, केवल त्वचा ही उस स्पर्शगुणको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, मन और बुद्धि, ये शब्दगुणको ग्रहण नहीं करते, केवल कान ही उस शब्दगुणको ग्रहण किया करता है, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और बुद्धि, ये संशय गुणको ग्रहण नहीं करते, केवल मन ही उस संशयगुणको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और मन ये निष्ठागुणको ग्रहण नहीं करते; केवल बुद्धि ही उस निष्ठागुणको ग्रहण किया करती है। हे भामिनि ! इस विषयमें पण्डित लोग मन और इन्द्रियोंके सम्वाद युक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो।

मन बोला, मेरे बिना नासिका गन्ध, नेत्ररूप, जिह्वा, रस, त्वचा स्पर्श और कान शब्दको ग्रहण करनेमें किसी प्रकार समर्थ नहीं होते; इसलिये सब भूतोंके बीच मैं ही प्रधान तथा नित्य हूं। इन्द्रियां मुझसे रहित होनेपर शून्य गृह तथा शान्तार्च्चिष अग्निकी भांति प्रकाशित नहीं होतीं। सब जन्तु मुझसे रहित होनेसे यत्नमान इन्द्रियोंके द्वारा आर्द्र तथा सूखे हुए काष्ठकी भांति गुणार्थोंको ग्रहण नहीं कर सकते।

इन्द्रियोंने कहा, आप जैसा समझते हैं, यदि सत्य ही यह इसी प्रकार हो, यदि आप हम लोगोंके बिना हमारे विषयोंको भोग कर सकें,

हमारे प्रलीन होनेपर यदि आप तर्पण प्राण धारण तथा अपनी इच्छानुसार विषयोंको भोग करें, अथवा हमारे प्रलीन होने तथा विषयोंके विद्यमान रहनेपर यदि आप यथार्थमेंही सङ्कल्प मात्रसे विषयोंको भोगकर सकें और हमारे विषयमें आप अपने मनकी अभिलाष सिद्ध करनेमें समर्थ हों ; तो आप नासिकासे रूप, नेत्रसे रस, कानसे गन्ध, जिह्वासे स्पर्श, त्वचासे शब्द तथा बुद्धिसे स्पर्श ग्रहण करिये। निर्व्व-लोंके पक्षमें ही नियम निर्द्धारित होता है बल-वान लोगोंमें कुछभी नियम विहित नहीं होता, आप जूठे भोजनके योग्य नहीं हैं, इसलिये आप यह सब अपूर्व्व भोग ग्रहण करिये।

जैसे शिष्य वेदका अर्थ जाननेके लिये गुरुके समीप जाकर उसके निकट श्रुतिको ग्रहण करके उसके अर्थको अनुभव करता है, वैसे ही स्वप्न और जाग्रत अवस्थामें अतीत और अनागत विषय हम लोगोंके द्वारा दर्शित होनेपर आप उन विषयोंको अनुभव किया करते हैं। और ऐसा देखा जाता है, कि हम लोगोंके निज निज अर्थ शब्दादि ग्रहण करनेपर अल्पचित्त वैमनस्य जन्तुओंका प्राणधारण होता है। जन्तुगण सङ्कल्पनिबन्धन बहुतसे स्वप्नोंकी अन-नपूर्व्वक उसकी उपासना करते हुए बुभुक्षासे पीड़ित होकर विषयोंकी ओर दौड़ते हैं। प्राणिगण द्वाररहित गृहकी भांति विषयोंसे निबद्ध सङ्कल्प भोग समूहमें प्रवेश करते हुए जिस प्रकार काष्ठ क्षय होनेसे प्रज्वलित अग्नि शान्त होजाती है, उस ही प्रकार प्राण क्षय होनेसे शान्तिको प्राप्त हुआ करते हैं। इच्छा-नुसार हम लोगोंको निज निज गुणोंमें आसक्ति होती है, परन्तु परस्परके गुणोंकी उपलब्धि नहीं होती और तुम्हारे अतिरिक्त हम लोगोंको हर्ष उत्पन्न नहीं होता।

२२ अध्याय समाप्त।

—— ——

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे ! इस विषयमें पण्डित लोग पञ्च-होताके सम्वादयुक्त यह पुरा-तन इतिहास कहा करते हैं। बुद्धिमान लोग प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—इस पञ्च वायुको पञ्चहोता समझते तथा इनके परम तत्वको जानते हैं।

ब्राह्मणी बोली, पहले मैंने आपके समीप स्वभाव सिद्धसप्तहोताओंका विवरण मालूम किया है। अब इस समय पञ्च होताओं और उनके परम तत्वोंको विस्तारपूर्व्वक कहिये।

ब्राह्मण बोला, वायु प्राणसे उत्पन्न होनेपर अपानरूपसे परिणत होता है, अनन्तर अपा-नसे प्रकट होके व्यान और व्यानसे उत्पन्न होकर उदान तथा उदानसे उत्पन्न होके समान रूपसे परिणत हुआ करता है।

एक समय उन प्राणादि पञ्चवायुने एकत्रित होकर पूर्व्वजात पितामह ब्रह्मासे इस प्रकार पूछा। हे ब्रह्मन् ! आप बताइये, हम लोगोंके बीच श्रेष्ठ कौन है ? आप जिसे श्रेष्ठ कहेंगे, वही हम लोगोंमें श्रेष्ठ होगा।

ब्रह्मा बोले, प्राणियोंके शरीरमें जिस प्राणके प्रलीन होनेसे सब प्राणोंही प्रलयको प्राप्त होते हैं और जिस प्राणके प्रचीर्ण होनेसे फिर प्रकाशित होते हैं, वही तुम लोगोंमें श्रेष्ठ है, इस समय तुम लोगोंकी जहां अभिलाष हो, वहां जाओ।

प्राण बोला, प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राण ही प्रलीन होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं। इसलिये मैं ही श्रेष्ठ हूं, इस समय मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब कोई अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, हे शुभे ! प्राण प्रलीन होके पुनर्व्वार प्रचीर्ण होनेपर समान और उदान कहने लगे। हे प्राण ! तुम हमारी भांति इस शरीरमें सर्व्वत्र व्याप्त रहनेमें अक्षम हो, इसलिये हमसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते, अपान तुम्हारे वशमें है, इसलिये अपानके ही प्रभु हो सकते

हो। प्राण इतनी बात सुनके फिर प्रचीर्ण हुआ, तब अपान उससे कहने लगा।

अपान बोला, प्राणियोंके शरीरमें मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान और उदान अपानसे बोले, हे अपान! तुम हम लोगोंसे श्रेष्ठ नहीं हो; प्राणही तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम प्राणहीके निकट श्रेष्ठ हो सकते हो। अनन्तर अपानके प्रकाशित होनेपर व्यान उससे फिर कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं; अब मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब कोई अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान प्रलीन होके पुनर्व्वार प्रकाशित हुआ, तब प्राण, अपान, उदान और समान उससे कहने लगे। हे व्यान! तुम हमारे प्रभु नहीं हो सकते, परन्तु समान तुम्हारे वशमें है, इसलिये तुम उसके हो प्रभु हो। व्यान ऐसा सुनके फिर प्रकाशित हुआ, तब समान कहने लगा, जिस लिये मैं सबसे श्रेष्ठ हूं उसे तुम लोग सुनो।

प्राणियोंके शरीरके बीच जब मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सभी प्रादुर्भूत होते हैं, तब मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, इस समय मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग अवलोकन करो। अनन्तर समानके प्रकाशित होनेपर उदान उससे कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सब फिर प्रादुर्भूत हुआ करते हैं, इसलिये मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग देखो। तिसके अनन्तर उदानके प्रलीन होकर फिर प्रकट होनेपर प्राण, अपान, समान और व्यान उससे बोले, हे उदान! व्यान तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम व्यानके हो प्रभु हो, हम लोगोंके प्रभु नहीं हो सकते।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर प्रजापति ब्रह्मा उन प्राणादि वायुसे बोले, कि तुम सब निज निज विषयमें श्रेष्ठ हो और परस्परमें परस्परके धर्म्मावलम्बी हो; परन्तु परस्परमें कोई किसीसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। जैसे एक प्राणही स्थिर और अस्थिर होकर आत्माको अधिकार करते हुए उपाधिभेदसे पञ्चवायु रूपसे परिणत होता है, उसही भांति एक आत्मा ही उपाधिभेदसे बहुरूपी हुआ करता है। परस्परमें परस्परके सुहृत होकर परस्परको धारण करनेसे तुम लोगोंका मङ्गल है; तुम लोग इस समय आपसका विरोध त्यागके गमन करो, तुम लोगोंका मङ्गल हो।

२३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, इस विषयमें पण्डित लोग देवमत ऋषि और नारदके सम्वाद युक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

देवमत बोले, हे नारद! उत्पन्न होनेवाले, जीवके विषयमें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान, इन पञ्चवायुके बीच प्रथम कौनसा प्रवृत्त होता है?

नारद मुनि बोले, जीव जिस कारणसे उत्पन्न होता है, उत्पत्तिके पहले उसी कारणसे अन्य कोई वस्तु संयुक्त होती है, इसही निमित्त तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध और प्राणद्वन्द्वको विशेष रीतिसे जानना उचित है।

देवमत बोले, जीव कहांसे उत्पन्न होता है उससे भिन्न कौन पहले प्राप्त होता है और

तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध इन सबका रूप तथा प्राण-द्वन्द्व क्या है? यह तुम सब मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

नारद मुनि बोले, ईश्वरके आलोचनार्थ ध्यानसे जीव प्रकट होनेपर पहले भूतसृष्टि होती है, फिर वैदिक शब्दके अनुसार रसरूप अर्थात् तत्व विषयिणी वासनासे प्रजापतिके द्वारा भौतिकसृष्टि होती है। अनन्तर शोणित संसृष्ट अर्थात् वासनामिश्रित शुक्ररूप अदृष्टसे पहले प्राण प्रवृत्त होता है, फिर शुक्ररूप अदृष्टके प्राणसे विकृत होनेपर अपान प्रवृत्त होता है। इस स्वरूप वासना संसृष्ट शुक्ररूप अदृष्टसे हर्ष-स्वरूप उदानका रूप उत्पन्न होता है; इस हर्षरूप और कार्य्यके बीच आनन्द स्वरूप ब्रह्म निवास करता है। कामसे शुक्ररूप अदृष्ट और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। सामान्य शुक्र तथा शोणित समान और व्यानसे उत्पन्न हुआ करते हैं। प्राण और अपान इस काम प्रवृत्याख्य द्वन्द्वको प्राप्त होकर जीव उपाधि ग्रहण करते हुए ऊपर और नीचे गमन करते हैं, उक्त रीतिके अनुसारही व्यान और समान तिर्य्यक् भाव तथा द्वैतभावको प्राप्त होते हैं। वेदवाक्यानुसार अग्निही सर्व्वदेवता है, उस परमात्मरूप अग्निसे ब्राह्मणीय बुद्धियुक्त ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। उस उत्तम तेजयुक्त अग्निका तमोरूप धूम और रजोरूप भस्म, जिसमें हविरूपी भोग वस्तुएं डाली जाती हैं, उसही अग्निसे सबकी उत्पत्ति हुआ करती है। समान और व्यान बुद्धिसत्वसे उत्पन्न होते हैं, यह यशस्वी ऋषियोंका अनुभवसिद्ध है। प्राण और अपान आज्यभाग हैं, उस प्राणापानके बीच वह परमात्मरूप अग्नि विद्यमान रहती है। ब्राह्मण लोग उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं, परन्तु यह जो अद्वैत है, उसे मैं कहता हूं, तुम सावधानतासे मेरे निकट सुनो। विद्या और अविद्यारूपी यह अहोरात्र ही द्वन्द्व है, उसके बीच वह परमात्मारूप अग्नि विद्यमान रहती है; ब्राह्मणगण उस उदानके रूपको परब्रह्म बोध करते हैं। (सत्) कार्य्य, (असत्) कारणरूप द्वन्द्व इसके बीच परमात्मारूपी अग्नि विद्यमान रहती है, ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं। वह ऊर्द्धब्रह्म जो सङ्कल्पाख्य हेतुके द्वारा समान और व्यानरूपसे उत्पन्न होता है, उस सङ्कल्पसे ही सब कर्म्म विस्तृत हुआ करते हैं; तृतीय सुषुप्तिरूप समान और व्यानके द्वारा फिर निश्चित होता है। शान्तिके निमित्त समान, व्यान, सनातन ब्रह्म ये तीनों एक मात्र शान्ति-शब्दसे वर्णित होते हैं; ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म कहके बोध किया करते हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! इस विषयमें पण्डित लोग चातुर्होत्र विधानकी विधि संयुक्त पुराने इतिहासको जिस प्रकार कहा करते हैं, मैं वह सब विधान विधिपूर्व्वक वर्णन करता हूं, तुम मेरे समीप यह अद्भुत रहस्य सुनो। हे भामिनि! कर्त्ता, कर्म्म, करण और मोक्ष, ये चारों होता हैं, इनके द्वारा यह जगत् आवृत्त होरहा है। पहले घ्राणादि यद्यपि दश और सात होताओंके बीच वर्णित हुए हैं, परन्तु उनके बीच कौन किसके हेतु हैं, वह नहीं कहा गया है; इस समय युक्तिबल अवलम्बन करके हेतुओंके साधनको विशेषरूपसे कहता हूं, सुनो। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि इन सातोंका हेतुगुण अर्थात् अविद्या है। गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श मन्तव्य और बोधव्य, ये सात हेतुकर्म्म है। घ्राता भक्षयिता, द्रष्टा, वक्ता, श्रोता, मन्ता और बोद्धा, ये सात कर्त्तृत्वादिके हेतु हैं। ये घ्राता प्रेरित सातों उपाधिरूप घ्रातृत्वादि धर्म्मविशिष्ट होकर

निज निज गन्ध आदि गुणोंको भोग किया करते हैं; परन्तु गन्धादिका प्रमाता अखण्ड शब्द वाच्यमें निर्गुण और अनन्त हूं, और ये घ्राणादि निजनिज उपाधि तथा घ्रातृत्वादि अभिमान परित्याग करके चिन्मात्ररूपसे स्थित होनेपर मोक्षके हेतु होते हैं। बुद्धिमान तत्वज्ञानियोंके नासिका प्रभृति इन्द्रियोंके निज निज अधिष्ठान अविद्या आदि सर्व्व देवताभूत होकर नियमानुसार सदा घ्रेयादि विषयोंको भोग किया करते हैं। जैसे पुरुष अपने लिये अन्नपाक करानेकी ममतासे नष्ट होता है, वैसेही अन्न पुरुष घ्रेय आदि विषय-भोगमें लिप्त होकर ममतासे विनष्ट हुआ करते हैं, अभक्ष्य भक्षण और मद्यपानके विषय वैसेही पुरुषको नष्ट किया करते हैं, जो विद्वान् इस अन्न अर्थात् घ्रेयादि विषयोंको भोग करता है, वही ईश्वर होकर फिर उन्हें उत्पन्न किया करता है, यथार्थमें वह उक्त अन्नोंसे उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि वह यदि अन्नसे उत्पन्न हो, तो उसमें कार्य्य कारणभाव विपरीतता होजाय। मन आदि छः इन्द्रियोंको निग्रह करनेपर जो मनसे जाना जाता है, जो वाक्यसे प्रकाशित होता, जो कानसे सुनाजाता है, जो नेत्रसे देखा जाता, जो स्पर्शसे स्पृष्ट होता और जो नासिकासे सूंघा जाता है, वह सभी हवि अर्थात् अन्नरूपसे परिगणित हुआ करता है। गुणविशिष्ट पावक कारण ब्रह्म मेरे शरीरके बीच प्रकाशित है। योग ही मेरा यज्ञ, ज्ञान अग्नि, प्राण स्तोत्र, अपान शस्त्र और सर्व्वस्वत्याग ही दक्षिणा है। योगियोंका कर्त्ता (अहङ्कार) अनुमन्ता (मन) और आत्मा (बुद्धि) ये तीनों ब्रह्म होकर क्रमसे होता, अध्वर्य्यु और उद्गाता हुआ करते हैं; सत्यवाक्य ही उनका शास्त्र और कैवल्य-दक्षिणा हुआ करती है। नारायणवित् पुरुष इस ही यज्ञमें ऋक् पाठ करते हैं, और नारायण, देवके उद्देश्यसे घ्रेयादि अन्न तथा सब विषयोंको पशुरूपसे प्रदान किया करते हैं। हे भीरु! इस यज्ञमें योगी लोग जिसके उद्देश्यसे सामगान करते हैं और जिसमें दृष्टान्तस्वरूपसे जिसका कीर्त्तन करते हैं, उस सर्व्वात्मा नारायणदेवको तुम मालूम करो।

२५ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भामिनि! जो प्राणियोंके हृदयके बीच अन्तर्य्यामी रूपसे वास करता है, वह नारायणदेव ही एक मात्र शास्ता है, उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई भी शास्ता नहीं है, मैं उसका ही विषय तुमसे कहता हूं। जैसे जल प्रवणभूमिमें गमन करता है, वैसे ही मैं उस नारायणदेवके द्वारा जिस प्रकार उक्त तथा नियुक्त होता हूं, वैसा ही किया करता हूं। जो जीवोंके हृदयके बीच वास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र गुरु है, उसके अतिरिक्त दूसरा गुरु और कोई भी नहीं है; मैं उसका ही विषय तुमसे कहता हूं, उस गुरुसे ही सब कोई शिक्षित होवें, जो लोग लोकद्वेषी हैं, वे सर्पसदृश हैं। जो प्राणियोंके हृदयकमलमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र बन्धु हैं, जिसके अतिरिक्त दूसरा बन्धु और कोई भी नहीं है, मैं उसहीका विषय तुमसे कहता हूं। हे पार्थ! बन्धुवन्त बान्धव, सप्तर्षि तथा सभी उसके द्वारा शिक्षित होकर आकाश मण्डलमें प्रकाशित हुआ करते हैं, जो सब भूतोंके हृदयकमलमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एक मात्र श्रोता है, उसके अतिरिक्त दूसरा श्रोता और कोई भी नहीं है, मैं उसका ही विषय तुम्हारे समीप कहता हूं। इन्द्रने उस गुरुके निकट सदा वास करके सब लोगोंके बीच अमरत्व लाभ किया है। जो सब प्राणियोंके अन्तरमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र द्वेष्टा है, उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई भी द्वेष्टा नहीं है, मैं उसहीका विषय तुमसे कहता हूं; उस गुरुके

द्वारा सब कोई सदा शिक्षित होवें, जगत्में दोषवान् पुरुष सर्पतुल्य कहके परिगणित हुआ करते हैं।

पन्नग और देवर्षियोंने प्रजापतिके निकट जो कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें उस ही सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। देवता, ऋषि, नाग और असुरवृन्द प्रजापतिके निकट जाकर बैठके उनसे बोले। हे भगवन्! हम लोगोंका जिससे कल्याण हो, आप हमारे लिये वही विषय कहिये।

भगवान् प्रजापति कुशल पूछनेवाले उन आदिदेव असुरोंसे बोले, कि ओंकार स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ही एकमात्र कल्याणकारी है; वे लोग इतना वचन सुनके अनेक दिशामें भाग गये। निज उपदेश ओंकारात्मक एकाक्षर ब्रह्मका यथार्थ अर्थ ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर भागनेवाले उन आदिदेव असुरोंके बीच पहले सर्प वृन्द ओंकार उच्चारणसे निज मुख उन्मीलन और निमीलन होनेसे अपने स्वभावज मुखोन्मीलन साध्य दंशनको ही कल्याणकारी समझकर दंशन विषयमें ही प्रवृत्त हुए। अनन्तर दानवदल ओंकार उच्चारणमें ओष्ठचालन होनेसे दम्भको ही कल्याणकारी समझके दम्भभाव; देवताओंने ओंकारका अर्थ प्रार्थित वस्तुका स्वीकार जानके दान व्यवसाय और महर्षियोंने ओंकारके उच्चारणमें ओष्ठ प्रभृत्तिका उपसंहार देखकर सब प्रवृत्तियोंके उपसंहारके हेतु दमको कल्याणकारी जानके दमको ही अवलम्बन किया, देव, ऋषि, दानव और सर्प वृन्दने एक मात्र गुरु पाके एक शब्दसे उपदिष्ट होकर अनेक व्यवसायमें प्रवृत्त हुए। शिष्यगण इस गुरुसे जो पूछते हैं, यह उस विषयको शिष्योंको सुनाता तथा यथार्थ रीतिसे ग्रहण कराता है; इसीसे इनके अतिरिक्त दूसरा गुरु और कोई भी विद्यमान नहीं है; इसलिये इसकी आज्ञानुसार सब कर्म्म प्रवृत्त तथा सम्पादित हुआ करते यह गुरु ही बोद्धा, श्रोता और द्रष्टा है, यही सबके हृदयके बीच निवास किया करता है। यह गुरु इस लोकमें पापपथसे विचरनेसे पापाचारी शुभमार्गसे चलनेपर शुभाचारी इन्द्रियसुखमें रत होकर कामपथसे विचरनेपर कामचारी और इन्द्रियोंको जीतनेमें रत होकर ब्रह्मपथसे विचरनेसे ब्रह्मचारी हुआ करता है। जो लोग इस लोकमें व्रतादि कर्म्मोंको परित्याग कर केवल ब्रह्ममार्गमें निवास करते हुए ब्रह्मचारी और ब्रह्मभूत होकर जगत्के बीच विचरते तथा ब्रह्ममें समाहित होते हैं; उनके लिये ब्रह्म ही समिध, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म ही जल और ब्रह्म ही गुरु हुआ करता। पण्डित लोग ऐसे कार्य्यको ही सूक्ष्म ब्रह्मबोध करते हैं और वे तत्त्वदर्शी गुरुके द्वारा इस ही प्रकार शिक्षित होकर ब्रह्मज्ञान लाभ करके ब्रह्मको पाते हैं।

२६ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे! सङ्कल्प जिस पथमें देश और मशक है, शोक और हर्ष जिसमें शर्द्दी तथा गर्म्मी है, मोह जिसमें अन्धकार, लोभ और व्याधि जिसमें सर्प, विषय जिसमें एकमात्र नाशक और काम क्रोध जिसमें प्रतिबन्धक हैं; मैं उस संसारमार्गको अतिक्रम करके महादुर्गम ब्रह्मरूपी महावनमें प्रविष्ट हुआ हूं।

ब्राह्मणी बोली, हे महाप्राज्ञ! वह वन कहां है और उस बनके वृक्ष, नदी, गिरि, पर्व्वत और पथ कितने हैं।

ब्राह्मण बोला, वह बन स्वतन्त्र वा अस्वतन्त्र रूपसे कहीं भी नहीं है, उसकी अपेक्षा दूसरा और कुछ भी सुख नहीं है और उससे बढ़के दूसरा कोई दुःखतारक कर्म्म भी नहीं है। इससे सूक्ष्म, महत् वा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म

कुछ नहीं है और उसके समान दूसरा कोई सुख नहीं है। द्विजगण उस बनके बीच प्रविष्ट होनेपर शोकार्त्त, नष्ट वा किसीसे भीत नहीं होते और दूसरे किसीको उनके समीप भय प्राप्त नहीं होता। उस बनके बीच महत् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र, ये सात महावृक्ष हैं, यागादि अपूर्व्व सात फल हैं, यज्ञकर्म्मके देवता सात अतिथि हैं, उस यागक्रियाका कर्त्ता सप्ताश्रम है, रागादि सात समाधि और धर्म्मान्तर परिग्रह लक्षणादि सप्तदीक्षा हैं, येही अरण्यरूपसे विद्यमान हैं; जीव और वृत्तिभेदसे अनेक प्रकार मलरूपी प्रीति प्रभृति वृक्ष, उस बनमें शब्दादि पञ्चरूपसेयुक्त मनोहर पुष्प और शब्दादि अनुभवरूपी पांच प्रकारके फलोंको उत्पन्न करते हुए वह बन व्याप्त होकर स्थित है। नेत्र प्रभृति सब वृक्ष उस बनके बीच श्वेत, पीत, उत्तम वर्ण तथा सुख दुःखरूपी दोनों वर्णोंसे युक्त फूल और विधिपूर्व्वक फलोंको उत्पन्न करतेहुए व्याप्त होकर स्थिति करते हैं। यज्ञादि वृक्ष उस महा बनके बीच स्वर्गादि रूप सुरभि और सुख दुःखरूपी दोनों वर्णोंसे युक्त सब फलोंको उत्पन्न करते हुए वह बन व्याप्त होकर विद्यमान है। ध्यानादि वृक्ष उस बनके बीच स्वर्गादि रूप सुरभि और सुखरूपी एक वर्णयुक्त अनेक फूल तथा फलोंको उत्पन्न करते हुए उस बनमें व्याप्त हैं। बुद्धि और मनरूपी दो महावृक्ष अतीत, अनागत और वर्त्तमान स्वरूप अव्यक्त वर्ण, पुष्प तथा फलोंको परित्याग करते हुए उस बनमें व्याप्त हैं। उस बनमें उत्तम मनवाला ब्राह्मण, एक मात्र परमात्मारूपी अग्निमें मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय समाधि होमके काष्ठ होम करता है; उस हवनीय काष्ठरूप पञ्चइन्द्रियोंसे मुक्ति होती है; मुक्त पुरुषोंके उपदेश दीक्षागुणभूत अपूर्व्व रूपवाले फल उत्पन्न होते और देवतारूपी अतिथि उन फलोंको भोजन किया करते हैं। इन्द्रियोंके अधिष्ठात्र देवतारूपी महर्षिवृन्द उस बनमें आतिथ्य प्रतिग्रह किया करते हैं; उन लोगोंके आतिथ्यसे सत्कृत होकर प्रलीन होनेपर वह अद्वैतरूप प्रतिभासमान हुआ करता है। जो साधु लोग प्रज्ञारूपी वृक्ष, मोक्षरूपी फल, शान्तिरूपी छाया, ज्ञानरूपी आश्रय, तृप्तिरूपी जल और अन्तःक्षेत्रज्ञरूपी सूर्य्यसे युक्त उस बनको जानके प्रज्ञावृक्षपर आरूढ़ होते हैं, उन्हें भय नहीं होता; क्योंकि उस प्रज्ञावृक्षका ऊपर नीचे और तिर्य्यक् किसी दिशामें भी अन्त नहीं मिलता। मन और बुद्धिके सहित नासिका प्रभृति इन्द्रियोंका वृत्तिरूप, पुरुषोंको वशमें करनेमें असमर्थ होनेसे अधोमुखी चिज्ज्योतिर्म्मयी सङ्कल्पादिक सात स्त्रियें उस प्रज्ञावृक्षपर वास करती हुई प्रजासमूहके लिये अनित्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट नित्यकी भांति, विषयज्ञानजनित आनन्दरूप अत्यन्त उत्कृष्ट समस्तरस भोग किया करती हैं और उस वृक्षपरही मन और बुद्धिके सहित पञ्चइन्द्रिय रूपी सिद्ध सप्तर्षि वशिष्ठ प्रभृति ऋषियोंके सहित अर्थात् अत्यन्त तेजके सहित उन्नतभावसे वास करते हैं। वहां यश, वर्च्च, भय, विजय, सिद्धि और तेज प्रभृति सातों ज्योति क्षेत्रज्ञ सूर्य्यको अनुवर्त्ती हुआ करती है। वहां गिरि तथा समस्त पर्व्वत एकत्र निवास करते हैं और नदियें ब्रह्मसे उत्पन्न हुए जलसे युक्त होकर बहा करती हैं। जहांपर सब नदियोंका सङ्गम होता है, उस अत्यन्त गूढ़ हृदयाकाशके बीच स्वभाविक सन्तुष्टचित्त सिद्ध यतियोंको पितामहका दर्शन मिला करता है। वहांपर कृशाश, सुव्रताश और तपस्याके सहारे पापोंको जलानेवाले सिद्ध यतिवृन्द हृदयाकाशमें परमात्मा ब्रह्माको संस्थापित करके उपासना किया करते हैं। विद्यारण्यवित् ब्रह्मज्ञ पुरुष धीरकी भांति उस बनको पाके शमगुणहीको प्रशंसा करते हैं। ब्राह्मण लोग ऐसे बनको पुण्यरूपसे

बोध करते और चेत्रज्ञके द्वारा शिचित होकर उस स्थानमें निवास किया करते हैं।

२७ अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मण बोला, मैं न गन्धको सूंघता, न रसको चखता, न रूपको देखता, सर्दी गर्म्मी आदि स्पर्श नहीं करता, किसी प्रकारके शब्दको नहीं सुनता और मनके बीच किसी प्रकार सङ्कल्पभी नहीं करता। जैसे प्राण और अपान वायु इच्छा अनिच्छाके वशमें न होकर स्वाभाविक जीवोंके शरीरमें प्रविष्ट होकर निज कार्य्य अन्नादि पाकक्रिया सम्पादन करती हैं, वैसेही मेरे इष्टवस्तुमें इच्छा और अनिष्ट वस्तुमें अनिच्छा न करनेपर भी बुद्धि स्वभावके वश-वर्त्ती होकर इष्ट वस्तुमें इच्छा और अनिष्ट वस्तुमें अनिच्छा किया करती है। योगी लोग बाह्य घ्राण घ्रेयादि विषयोंसे बिभिन्न स्वप्नज-नित बासनामय घ्राण घ्रेयादि विषयोंमें नित्य अनुगत जो सब विषय हैं, उनसे भी अतिरिक्त जिस भूतात्माको शरीरके बीच लक्ष्य किया करते हैं, मेरे उसही भूतात्मामें निवास करनेसे काम, क्रोध, जरा और मृत्यु किसी प्रकारभी आक्रमण नहीं कर सकती इसलिये मैं असङ्ग-स्वरूपसे निवास करता हूं। मैं सब प्रकारसे काम्य बस्तुओंमें कामना और दूषित बस्तुओंमें द्वेष नहीं करता, इसीसे पद्मपत्रमें निर्लिप्त जलकी बूंद समान काम और द्वेष मुझमें स्वाभा-विक लिप्त नहीं हो सकते। यह नित्य परि-दृश्यमान असङ्ग पुरुषको सब कामना नित्य है, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें लिप्त नहीं होती, वैसेही पुरुषके कृतकर्म्मोंके भोग समूह ज्ञात्रादिके स्वभावभूत होकर पुरुषमें संसक्त नहीं हो सकते।

हे यशस्विन! परम पुरुष परमात्माके असङ्ग विषयमें पण्डित लोग अध्वर्य्यु और यतिके सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं, उसे तुम सावधान होकर सुनो। यज्ञस्थलमें बैठे हुए किसी यतीने अध्वर्य्युको पशुप्रोक्षण करते देखकर निन्दा उसकी करते हुए बोला, कि "आप ऐसे हिंसा कार्य्यमें प्रवृत्त हुए हैं?" ऐसा बचन सुनके अध्वर्य्यु उससे बोला, वेदके अनुसार यज्ञकर्म्ममें जन्तु हिंसित होनेसे कल्याणयुक्त होते हैं; इसलिये बकरा बिनष्ट न होगा। यह बकरा यज्ञमें हिंसित होनेसे इसका जो पार्थिवभाग है, वह पृथ्वीमें मिल जायगा, जलीयअंश जलमें प्रविष्ट होगा, नेत्रके तैजस अंश सूर्य्यमें शब्द आकाशभाग दिशाओंमें और प्राणवायु आकाशमें प्रविष्ट होगा; इसलिये इसमें मुझे कुछ दोष नहीं है।

यति बोला, यदि यज्ञकर्म्ममें जन्तुओंके प्राण वियोग होनेसे उनका मङ्गल देखते हो, तो बक-रेके निमित्तही यज्ञ बर्त्तमान है, उसमें तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है? और इस यज्ञमें बकरा आपको पिता, माता, भ्राता तथा सखा जाने और आपभी इस परोधान बकरेको ऊर्द्ध्वगामी करनेको उपाय करिये; जब जन्तुगण आपको पित्रादिरूपसे बोध करेंगे, तब आप उनको रक्षा करनेमें समर्थ होंगे, तथा उनका मत सुनके विचार करेंगे। परन्तु मुझे ऐसा बोध होता है, कि यह बकरा यज्ञमें बिनष्ट होनेसे इसका प्राण छागयोनिमें प्रबिष्ट होगा, केवल अचेतन शरीर मात्र अवशिष्ट रहेगा। जो लोग चेतनाबिहीन काष्ठसदृश शरीरके द्वारा हिंसा-मय यज्ञ करनेके अभिलाषी होते हैं, पशु ही उनके यज्ञीय काष्ठ हुआ करते हैं। वृद्धोंकी ऐसी आज्ञा है, कि सब धर्म्मोंमें अहिंसा ही प्रशंसनीय है; परन्तु हम लोग ऐसी बिवेचना किया करते हैं, कि यदि कर्म्म हिंसायुक्त हो, तो वह कर्त्तव्य है। इसके अनन्तर यदि कहना पड़े, तो कदापि मैं हिंसा करनेको नहीं कह सकता; क्योंकि अहिंसा ही हमारा प्रतिश्रुत धर्म्म है, जो मैं हिंसा करनेके लिये कहूंगा,

तो आप अनेक प्रकारके दूषित कर्म्म करनेमें उद्यत होंगे। सब भूतोंको अहिंसा ही हम लोगोंकी चिर अभिलषित है, हम लोग प्रत्यक्ष वस्तुको ही साधन किया करते हैं, अप्रत्यक्षको उपासना नहीं करते।

अध्वर्य्यु बोला, हे द्विज! आप जो भूमिके गन्धगुणको भोजन करते जलके रस गुणको पीते, अग्निके रूप गुणको देखते, वायुके स्पर्श-गुणको स्पर्श करते और आकाशके शब्दगुणको सुनते हैं तथा मनके द्वारा मनन करते हैं, इन सब भूतोंको ही प्राण बोध करते हैं; तो आप किस प्रकार प्राणदानसे निवृत्त होंगे? आप तो हिंसामें ही नियुक्त होरहे हैं; क्यों कि बिना हिंसाकी चेष्टा नहीं हो सकती; इसलिये आप अहिंसा किस प्रकार समझते हैं?

यति बोला, आत्माकी चर और अचर दो प्रकारकी अवस्था है, उसके बीच सद्भाव अचर और स्वभाव चर कहके वर्णित हुआ है। मायाके सहित अवस्थित प्राण, जिह्वा, मन और सत्त्व, ये सद्भाव कहाते हैं; आत्मा इन सब भावसे विमुक्त होनेसे निर्द्वन्द्व और आशावर्जित है। जो पुरुष सर्व्वभूतोंमें समभाव, निर्म्मम, जितात्मा और सब भांतिसे मुक्त है, वह कहीं भी भयभीत नहीं होता। अध्वर्य्यु बोला, हे द्विजवर! आपका मत सुनके मुझे ऐसा बोध होता है, कि इस लोकमें साधुओंके सङ्ग सहवास करना ही उचित है। हे भगवन्! मैं भागवतबुद्धिसे युक्त होकर कहता हूं, कि मैं मन्त्रकृत व्रत किया करता हूं; इसलिये इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर यतिने उपपत्तिके अनुसार मौनावलम्बन किया और अध्वर्य्यु भी मोहविहीन होकर महायज्ञका प्रचार करने लगा। ब्राह्मण लोग इसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म मोक्षको जानके अर्थदर्शी चक्षुके सङ्ग निवास करते हैं।

२८ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भाविनि! इस विषयमें पण्डित लोग कार्त्तवीर्य्य अर्जुन और समुद्रके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, जिन्होंने शरासनके सहारे समुद्रके सहित वसुन्धराको औरसे छोरतक जीता था, वह कार्त्तवीर्य्य अर्जुन नाम विख्यात राजा था। हमने सुना है, कि उसने किसी समय निज तेजसे दर्पित होकर समुद्रके तीर विचरते हुए एक ही बाणोंसे समुद्रको समाच्छन्न किया, तब समुद्र हाथजोड़के उन्हें नमस्कार करके बोला, हे वीर! आप मुझपर बाण न चलाइये। कहिये मुझे आपका कौनसा कार्य्य करना होगा। हे राजेन्द्र! मेरे आश्रित प्राणिवृन्द आपके द्वारा छोड़े हुए महाशरोंसे मर रहे हैं। हे विभु! आप उन्हें अभय प्रदान करिये।

अर्ज्जुन बोले, यदि युद्धमें मेरे समान शरासनधारी कोई विद्यमान हो और वह मेरे सङ्ग युद्धमें खड़ा होनेमें समर्थ हो; तो मुझसे तुम उसका वृत्तान्त कहो।

समुद्र बोला, हे महाराज! यदि आप जमदग्नि महर्षिको विशेष रीतिसे जानते हैं, तो उनके पुत्रके निकट जाइये; वह विधिपूर्व्वक आपका आतिथ्य करनेमें समर्थ होंगे।

तिसके अनन्तर राजा कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके आश्रममें जाकर उस परशुरामके निकट उपस्थित हुआ। राजाने बान्धवोंके सहित महात्मा रामके प्रतिकूल कार्य्य करके उन्हें क्रोधित किया। हे कमललोचन! उस समय वह अमित तेजस्वी रामकी क्रोधाग्नि शत्रुसेनाको जलाती हुई प्रज्वलित हुई। अनन्तर रामने सहसा परशु लेकर बहुतसी शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भांति सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनको काट डाला। बान्धवगण राजाको मरके गिरा हुआ देखकर सब कोई इकट्ठे होकर तलवार और शक्ति ग्रहण करके भृगुनन्दन रामकी ओर दौड़े। इधर रामने भी

धनुष लेकर रथपर चढ़के बाण बरसाते हुए राजाके समस्त बलको व्यथित किया। अनन्तर कितनेही क्षत्रिय जमदग्निपुत्र रामके भयसे भीत होकर सिंहार्द्दित मृगकी भांति गिरिकन्दरामें प्रविष्ट हुए। क्रमसे क्षत्रियोंकी रामके भयसे निज विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान न करनेपर उनके पुत्रगण वेदज्ञानसे रहित होकर शूद्रत्वको प्राप्त हुए। इसही प्रकार क्षत्रधर्म्मावलम्बी शवरके सहित द्रविड़, आभीर और पुण्ड्र येभी निज धर्म्मका अनुष्ठान न करनेसे शूद्रत्वको प्राप्त हुए अनन्तर ब्राह्मणोंके द्वारा हतवीरा विधवा क्षत्रिय स्त्रियोंसे जो सब क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न होने लगे, जमदग्निपुत्र राम उनकाभी वध करने लगे। रामने इसी भांति इक्कीस बार युद्धयज्ञ पूरा किया; अन्तमें वह सर्व्वजन परिश्रुत मधुर अशरीरिणी देववाणीने उनसे कहा। "हे राम! तुम बार बार इन क्षत्रबन्धुओंको विनष्ट करके कौनसा गुण अवलोकन करते हो? हे तात! तुम इस निठुर कार्य्यसे निवृत्त हो जाओ"। हे महाभागे! उस समय ऋचीक आदि पितामहोंने भी उस महात्मा रामको निवृत्त किया। परन्तु राम पितृवधसे शान्त न होकर ऋषियोंसे बोले। हे पितामहगण! इस विषयमें मुझे निवारण करना आप लोगोंको उचित नहीं है।

पितृगण बोले, हे विजयप्रवर! वे सब क्षत्रबन्धु तुम्हारे बधके योग्य नहीं हैं, विशेष करके ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंको मारना तुम्हारे पक्षमें युक्तियुक्त नहीं होता है।

२६ अध्याय समाप्त।

पितृगण बोले, हे द्विजसत्तम! इस अहिंसा विषयमें पण्डित लोग जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं, उसे सुनकर तुम्हें वैसाही करना योग्य है। पहले समयमें महातपस्वी धर्म्मज्ञ सत्यवादी महात्मा दृढ़व्रती अलर्क नाम एक राजर्षि थे। उन्होंने शरासनसे समुद्रके सहित इस वसुन्धराको जीतते हुए अत्यन्त दुष्कर कर्म्म करके सूक्ष्म विचारमें मन लगाया, हे महाप्राज्ञ! वह एक बार निज उत्तम महत् कर्म्मोंको परित्याग करके वृक्षके मूलमें बैठकर सूक्ष्म परब्रह्मका विचार करने लगे। अलर्क मनही मन चिन्ता करके बोले, कि मेरे मनका बल अत्यन्त प्रबल होगया है; इसलिये मनको जीतनेसे मुझे नित्य जय प्राप्त होगी; इस समय मैं इन्द्रियरूपी शत्रुओंसे घिरा हुआ हूं; इन वाह्य इन्द्रियरूपी शत्रुओंके विषयमें हठयोगरूपी बाण चलाऊंगा। जब मनको चपलतासे ही ये कर्म्म मनुष्यको गिरानेकी इच्छा करते हैं, तब मनकी ओर ही मैं हठयोगरूपी इन बाणोंको छोड़ूंगा।

मन बोला, हे अलर्क! ये बाण मुझे कदापि छेदन न कर सकेंगे, ये तुम्हारेही मर्म्मोंको बेधेंगे, तब तुम मर्म्मोंके काटनेसे दुःखी होगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे मारोगे उसका अनुसन्धान करो।

अलर्क ऐसा सुनके सोचकर बोले, नासिका अनेक प्रकार गन्धको सूंघती हुई सुगन्धको ही अभिलाष किया करती है; इसलिये उस नासिकाके विषयमें मैं इन शाणित बाणोंको छोड़ूंगा।

नासिका बोली, हे अलर्क! तुम मेरी ओर जिन बाणोंको छोड़ोगे, वे कदापि मुझे भेद न कर सकेंगे। बल्कि वे बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करेंगे, तब तुम ही भिन्नमर्म्मा होकर मृत्युमुखमें पतित होगे। इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे नष्ट कर सकोगे, उसका अनुसन्धान करो।

अलर्क ऐसा वचन सुनकर क्षणभर सोचके बोले, कि यह जिह्वा सुस्वादु रसको भोजन करके उस रसकी ही अभिलाष किया करती है, इसलिये मैं जिह्वाके विषयमें ही यह शाणित बाण छोड़ूंगा।

जिह्वा बोली, हे अलर्क! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंको चलानेकी इच्छा करते हो, वे बाण कदापि मुझे स्पर्श न कर सकेंगे, वरन तुम्हारे ही मर्म्मोंको भेदकर तुम्हें नष्ट करेंगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणके सहारे तुम मुझे विनष्ट कर सकोगे, उसका ही अनुसन्धान करो। अलर्क ऐसा सुनकर चणभर सोचके बोले, कि त्वचा विविध स्पर्शको स्पर्शन करके उस स्पर्शकी ही आकांक्षा किया करती है; इसलिये मैं कङ्कपत्रयुक्त विविध बाणोंसे त्वचाको नष्ट करूंगा।

त्वचा बोली, हे अलर्क! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंके चलानेकी इच्छा करते हो, वे कदापि मुझे भेद न कर सकेंगे, वे तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें विनष्ट करेंगे, इसलिये तुम इसके अतिरिक्त जिस बाणसे मुझे नष्ट कर सकोगे, उसकी खोज करो।

अनन्तर अलर्क ऐसा वचन सुनकर चणभर चिन्ता करके बोले, कि कान विविध शब्द सुनके शब्दकी ही आकांक्षा किया करता है; इसलिये मैं इन शाणित बाणोंको कानके ऊपर चलाऊंगा।

कान बोला, हे अलर्क! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंको छोड़नेकी इच्छा करते हो, वे शर कदापि मुझे भेदित न कर सकेंगे। बल्कि वे तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हारा जीवन नष्ट करेंगे, इसलिये इनके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे विनष्ट करोगे, उसको खोज करो।

अलर्क इतना वचन सुनके चणभर चिन्ता करके बोले, नेत्र अनेक भांतिके रूपको देखकर उस रूपकी ही आकांचा किया करता है, इसलिये मैं इन शिकल किये हुए बाणोंसे नेत्रको नष्ट करूंगा।

नेत्रने कहा, हे अलर्क! तुम इन बाणोंसे किसी प्रकार मुझे विनष्ट न कर सकोगे, बल्कि ये बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें विनष्ट करेंगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणके सहारे तुम मुझे विनष्ट कर सकोगे, उस ही बाणको खोज करो।

अनन्तर अलर्क ऐसा वचन सुनकर चणभर चिन्ता करके बोले, यह बुद्धि प्रज्ञाके द्वारा अनेक प्रकारकी निष्ठा निष्पन्न किया करती है, इसलिये मैं शाणित बाणोंको बुद्धिके ऊपर छोड़ूंगा।

बुद्धि बोली, हे अलर्क! तुम इन बाणोंसे मुझे कदापि विनष्ट न कर सकोगे; वरन ये बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें नष्ट करेंगे; यदि मेरे विनाश करनेके लिये तुम्हें अत्यन्त अभिलाष हुई हो; तो तुम इसके अतिरिक्त और कोई बाण खोजो।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर अलर्क उस स्थानमें घोर दुष्कर तपस्या करके भी पूर्व्वोक्त सातों इन्द्रियोंके विषयमें बलपूर्व्वक बाण न छोड़ सके। हे द्विजसत्तम! अनन्तर प्राज्ञवर प्रभु अलर्क समाहित चित्तसे बहुत समयतक सोचकर परम कल्याण लाभ न कर सकनेसे एकाग्रचित्त होकर निश्चलभावसे योगमार्ग अवलम्बनपूर्व्वक एक बाणसे शीघ्र ही उन इन्द्रियोंको विनष्ट किया और योगबलसे परमात्मामें प्रविष्ट होकर परम सिद्धि प्राप्त की। अनन्तर राजर्षि अलर्कने विस्मित होकर यह गाथा गाया, कि ओहो! कैसा कष्ट है!! क्यों कि पहले मैं भोगतृष्णासे आक्रान्त होकर उन बाह्यवस्तु राज्यादिकी उपासनामें नियुक्त था, अब मैंने निश्चय जाना, कि योगसे बढ़के सुखदायक और कुछ भी नहीं है।

हे राम! तुम इसी विशेष रीतिसे जानके चत्रियोंके बधसे निवृत्त होकर घोर तपस्याचरण करनेसे कल्याण लाभ कर सकोगे। महाभाग जमदग्निपुत्र रामने पितामह गणोंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कठोर तपस्याका अनुष्ठान करते हुए दुर्गम सिद्धि प्राप्त की।

३० अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, सतोगुणसे उत्पन्न प्रहर्ष, प्रीति और आनन्द ये तीनों ही लोकके बीच शत्रुरूपसे गिने गये हैं; येही वृत्तिभेदसे नव प्रकार हुआ करते हैं। तृष्णा, क्रोध तथा संरम्भ, ये तीनों रजोगुणसे और श्रम, तन्द्रा तथा मोह, ये तीनों तमोगुणसे उत्पन्न हुए हैं। धृतिमान, जितेन्द्रिय प्रशान्तचित्त पुरुष इन सबको छेदन करके तन्द्राविहीन होकर शरसमूहसे शत्रुओंको जीतनेके लिये उद्यत होवे। पहिले समयमें प्रशान्तचित्त राजा अम्बरीषने जिस गाथाको गाया था, पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें वही गाथा कहा करते हैं; शमगुण अन्तर्हित और रजोगुणके पूरी रीतिसे उदित होनेपर महायशस्वी राजा अम्बरीषने सहसा राज्य ग्रहण किया। अनन्तर वह आत्माके रजोगुणको निग्रह करके शमगुणकी सम्मानना करनेसे महती श्री लाभ करके यह गाथा गाने लगे। मैंने शत्रुओंको जीता और दोषोंको विनष्ट किया है; परन्तु अवश्य बध्य एक महान् दोष है, उसे नष्ट नहीं कर सका। इस ही लिये इस जन्ममें प्रयुक्त होकर वैतृष्ण्य लाभ नहीं कर सका, तृष्णार्त्त होकर मूर्खकी भांति नीचकर्म्मोंकी ओर दौड़ रहा हूं। मनुष्य इसलोकमें इसहीके द्वारा प्रयुक्त होकर अकार्य्योंकी सेवा किया करता है, उसहीको तीक्ष्ण तलवारके सहारे नष्ट करे; क्योंकि लोभसे तृष्णा उत्पन्न होती है और उससे चिन्ता प्रवृत्त हुआ करती है; मनुष्य लिप्समान होकर प्रचुर परिमाणसे राजसगुण लाभ करता है परन्तु राजसगुण प्राप्त न होनेसे तामसगुण प्राप्त हुआ करता है। देहबन्धन उन गुणोंके सङ्ग मिलित होनेसे पुरुष बार बार जन्म ग्रहण करके कर्म्मकी आकांक्षा किया करता है और जीवन नष्ट होनेसे भिन्न तथा विक्षिप्त देह होकर जन्मके सहित मृत्युको प्राप्त हुआ करता है। इसलिये पूरी रीतिसे पर्य्यालोचना करते हुए लोभको देहके बीच रोकके राज्यकी इच्छा करे। आत्मा ही राजा और इसलोकमें लोभका रोकना ही राज्य है, इससे बढ़के अन्य राज्य और कुछ भी नहीं है; इस ही भांति यथावत जानना चाहिये। लोभको निग्रह करनेवाले राजा अम्बरीषने अधिराज्यके उपलक्ष्यमें यह गाथा गाई थी।

३१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भाविनि! इस लोभनिग्रह विषयमें पण्डित लोग ब्राह्मण और जनकके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। राजा जनक किसी अपराधी ब्राह्मणको अनुशासन करनेके लिये बोले, कि तुम मेरे राज्यमें बास न करने पाओगे।

ब्राह्मण राजाका ऐसा बचन सुनके बोला, हे महाराज! जो आपके बशवर्त्ती हो, वही विषय आप मुझसे कहिये। हे विभु! मैं आपकी आज्ञानुसार अन्य राज्यमें बास करके शास्त्रके अनुसार आपके बचनको प्रतिपालन करनेकी इच्छा करता हूं। उस समय राजा यशस्वी ब्राह्मणका ऐसा बचन सुनके बार बार गर्म्म सांस छोड़ते हुए कुछ भी उत्तर न दे सके। अमित तेजस्वी राजा जनक बैठके चिन्ता करते हुए राहुग्रस्त सूर्य्यकी भांति सहसा मोहग्रस्त हुए। अनन्तर थोड़े समयके बाद आश्वासित होकर मुहूर्त्तभरके बीच मोह रहित होकर उठके उस ब्राह्मणसे कहने लगे।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम! पितृपितामहराज्य और समस्त जनपद बशीभुत होनेपर भी मुझे पृथ्वीमें खोजनेपर यह विषय प्राप्त न हुआ, तब मिथिलामें खोजा, मिथिलामें भी न पाकर प्रजाके बीच अन्वेषण किया; फिर जब प्रजाके बीच भी न पाया, तब मुझे मोह उपस्थित हुआ। अनन्तर मोह शान्त होनेसे बुद्धि उदित होनेपर मुझे ऐसा बोध हुआ, कि कोई विषय

भी मेरा नहीं है और सब विषय ही मेरे हैं; आत्मा मेरा नहीं है और सारी पृथ्वी मेरी है। ये सब विषय जैसे मेरे हैं, वैसे ही दूसरोंके भी हैं। हे द्विजवर! इसलिये जहां आपकी इच्छा हो, वहां वास करो और जो अभिरुचि हो, वह भोग करो।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! पितृपितामह राज्य और जनपदके वशीभूत रहनेपर भी आपने कौनसी बुद्धि अवलम्बन करके उसकी ममता परित्याग की? और किस बुद्धिके सहारे ऐसी विवेचना की, "कि सब विषय मेरे तथा मेरे नहीं है।"

जनक बोले, इस लोकमें आढ्यत्व और दरिद्रत्व प्रभृति सब अवस्था नश्वर हैं, यह सब कर्म्म ही मुझे विदित है, इस ही निमित्त ऐसा नहीं समझता, कि 'यह मेरी होगी' यह विषय, यह धन किसीका भी नहीं है, इस वेद वाक्यके अनुसार मैं इसे अपना नहीं समझता हूं; इस ही बुद्धिको अवलम्बन करके मैंने ममता परित्याग किया है और जिस बुद्धिके सहारे मैं सब विषयोंको अपना कहा करता हूं, उसे सुनो। मैं अपने निमित्त नासिकामें गई हुई सुगन्धिको भी नहीं सूंघता, इसहीसे यह भूमि मेरे द्वारा परित्यक्त होकर सदा मेरे वश-वर्त्ती होकर निवास करती है, मैं मुखमें गये हुए रसको भी नहीं पीता, इस ही निमित्त जल मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर सदा निवास करता है। मैं अपने निमित्त नेत्रकी ज्योतिरूपको ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता, इसीसे ज्योति मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर सदा मेरे वशवर्त्ती होरही है। मैं अपने लिये त्वग्गत स्पर्शको स्पर्श करनेकी इच्छा नहीं करता, इसीसे वायु मुझसे निर्ज्जित होकर मेरे वश-वर्त्ती होरहा है। मैं अपने निमित्त कानमें गये हुए शब्दको नहीं सुनता, इसलिये शब्द मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर निरन्तर मेरे वशवर्त्ती होरहा है। मैं अपने निमित्त अन्तरस्थित मनको मनन करनेकी इच्छा नहीं करता इस हेतु मन मुझसे निर्ज्जित होकर सदा मेरे वश-वर्त्ती है। मैं देवताओं, पितरों, प्राणियोंके और अतिथियोंके लिये समस्त द्रव्यादि संग्रह किया करता हूं। अनन्तर ब्राह्मण जनकसे हंस करके फिर बोले, कि आज मैं तुम्हें जाननेकी इच्छासे आया था, तुम मुझे धर्म्म कहके मालूम करो। तुम ही इस सत्त्वरूपनेमिसे निरुद्ध चक्र-स्वरूप अनिवर्त्ती दुर्व्वार ब्रह्मलाभके एकमात्र प्रवर्तक हुए हो।

३२ अध्याय समाप्त।

———

ब्राह्मण बोला, हे भीरु! तुम निज बुद्धिके अनुसार मुझे जैसा समझके तर्ज्जन करती हो, मैं जगत्के बीच उस प्रकार विचरण नहीं करता, मैं बनचारी, गृही व्रतवान ब्राह्मण जीवन्मुक्त हूं। हे सुन्दरि! तुम मुझे जैसा देखती हो, मैं वैसा नहीं हूं, इस जगत्में शुभ और अशुभ जो कुछ देखा जाता है, वह सब मेरे द्वारा व्याप्त होरहा है। इस जगत्के बीच स्थावर जङ्गम प्रभृति जितने जन्तु हैं, काष्ठको जलानेवाली अग्निकी भांति मुझे उनका अन्तक जानो। समस्त पृथ्वी और स्वर्गका जैसा राज्य है, वह इस बुद्धिके द्वारा विदित है; परन्तु बुद्धि ही मेरा राज्यधन है। ब्राह्मणोंके लिये ज्ञान ही एकमात्र पथ है, ब्रह्मवित् ब्राह्मण लोग उस पथसे ही गृह, बनवास गुरुवास और भिक्षु-वासके लिये गमन किया करते हैं। वे लोग अचञ्चल अनेक प्रकारके चिन्ह धारण करते हुए एकमात्र बुद्धिकी उपासना किया करते हैं, अनेक लिङ्ग तथा अनेक आश्रमवालोंकी बुद्धि शमगुणावलम्बिनी होनेसे एक ही समुद्रमें गमन करनेवाली नदियोंकी भांति वे लोग एक ही भावको प्राप्त होते हैं। यह पथ बुद्धिके द्वारा प्राप्त होता है, शरीरके द्वारा नहीं प्राप्त हो

सकता ; सब कर्म्म आदि और अन्त विशिष्ट हैं, शरीर कर्म्मके द्वारा बद्ध होता है। हे सुभगे! तुम्हें परलोकका भय नहीं है, मेरे भावमें रत होनेसे तुम्हें मेरा ही देह प्राप्त होगा।

३३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणी बोली, इस विषयको अल्पात्मा तथा अकृतात्मा पुरुष जाननेमें समर्थ नहीं होता; मेरा मत बहुत थोड़ा, संक्षिप्त और विप्लुत है। जिसके सहारे यह बुद्धि प्राप्त होती है, आप मुझसे उसका उपाय कहिये। परन्तु चाहे किसीके द्वारा यह बुद्धि क्यों न प्रवृत्त होवे, आपको ही मैं उसका कारण समझती हूं।

ब्राह्मण बोले, ब्राह्मणी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठा बुद्धि अध अरणी और ब्रह्मज्ञानको गुरु उत्तर अरणी जानो; दोनों अरणी मनन निदिध्यासन और वेदान्त सुननेपर मथित होनेसे उनसे ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है।

ब्राह्मणी बोली, क्षेत्रज्ञ नामक यह ब्रह्म-लिङ्ग जिसके द्वारा जाना जाता है, उसका लक्षण क्या है?

ब्राह्मण बोला, ब्रह्म अलिङ्ग और निर्गुण है, इसलिये उसका कारण मालूम नहीं होता, तब जिसके द्वारा वह गृहीत हो, वा न हो, उसका उपाय कहता हूं। जैसे ऊपरमें उड़नेवाले भौरोंके द्वारा सुरभिगन्ध मालूम होते हैं, वैसे ही पूर्व्वोक्त श्रवण आदि उपाय पूरी रीतिसे मालूम होते हैं। जिसकी बुद्धि कर्म्मके द्वारा परिशोधित नहीं होती, वह पुरुष अबुद्धिसे असङ्ग ब्रह्मको भी बुद्धिके आश्रित ससङ्ग कहके बाध किया करता है। मोक्ष विषयमें "यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है,"—ऐसा उपदेश नहीं होसकता, क्यों कि देखने तथा सुननेवाले आत्माकी बुद्धि स्वयं ही मोक्षविषयमें उत्पन्न होती है। इस संसारमें मोक्षका अंश अनेक अर्थयुक्त समस्त पदरूपी, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणरूपी, अव्यक्त माया अविद्यारूपी और व्यक्त शब्दादिरूपसे सैकड़ों सहस्रों प्रकारका है; इतना ही नहीं बरन जितने प्रकारके अंशोंकी कल्पना हो सके, उतने प्रकारके अंशोंकी कल्पना करे; परन्तु शम आदि पूरी रीतिसे अभ्यस्त होनेपर जिसके अनन्तर और कुछ भी नहीं है, वह वस्तु प्राप्त होगी।

श्रीभगवान् बोले, उसके अनन्तर क्षेत्रजीवके परमात्मामें लीन होनेपर उस ब्राह्मणीकी बुद्धि क्षेत्रज्ञानके अनन्तर क्षेत्रज्ञस्वरूपमें प्रवृत्त हुई।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! जिन्होंने यह सिद्धि प्राप्त की है, वह ब्राह्मण और ब्राह्मणी कहां हैं।

श्रीभगवान बोले, हे धनञ्जय! मेरे मनको ब्राह्मण और मेरी बुद्धिको ब्राह्मणी जानो और जिसका क्षेत्रज्ञरूपसे वर्णन हुआ है, वह मैं हूं।

३४ अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! जो परब्रह्म ज्ञेय है, उसकी तुम मेरे समीप व्याख्या करो, तुम्हारे ही प्रसादसे मेरी बुद्धि सूक्ष्म विषयोंमें रमण करती है।

श्रीकृष्ण बोले, इस विषयमें पण्डित लोग मोक्षसंयुक्त गुरु-शिष्यके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। हे परन्तप! किसी मेधावी शिष्यने बैठे हुए संशितव्रती ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यसे पूछा, हे प्रभु! इस जगत्‌के बीच कल्याण क्या है? यह विषय आप मेरे समीप कहिये। मैं मोक्षपरायण होके आपका शरणागत हुआ हूं; मैं सिर झुकाके आपके निकट यही प्रार्थना करता हूं, कि आप मेरे प्रश्नका यथावत उत्तर दीजिये। हे पार्थ! शिष्यका ऐसा वचन सुनके गुरुने उससे कहा, हे द्विज! जिसमें तुम्हें संशय उपस्थित हुआ है, वह सब विषय तुमसे कहूंगा। हे महाबुद्धिमान्! गुरुवत्सल शिष्यने गुरुका ऐसा वचन सुनके हाथ जोड़के गुरुसे जो पूछा था, उसे सुनो।

शिष्य बोला, हे विप्र! मैं कहांसे उत्पन्न हुआ हूं? आप किससे उत्पन्न हुए हैं? चराचर स्थावर प्रभृति प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं? वे सब किसके द्वारा जीवित रहते हैं? उनके परमायुकी क्या संख्या है? सत्य क्या है? तपस्या क्या है और पण्डितोंके द्वारा कौनसे गुण वर्णित हुए हैं? यह सब मुझसे सत्य ही कहिये। हे सुव्रत! कौनसा पथ शुभकर है? सुख क्या है? पाप क्या है? इन सब प्रश्नोंका आपको यथार्थ रीतिसे उत्तर देना उचित है। हे विप्रर्षि! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन प्रश्नोंका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं है। हे धार्म्मिकश्रेष्ठ! आप इसे विस्तारपूर्व्वक कहिये, इसमें मुझे कौतूहल हुआ है; आप लोकमें मोक्षधर्म्मार्थ कुशल कहके गिने गये हैं। आपके अतिरिक्त सब संशयोंको नष्ट करनेवाला और कोई भी नहीं है, हम लोग संसारभीरु और मोक्षके अभिलाषी हैं।

श्रीकृष्ण बोले, हे अरिदमन कुरुश्रेष्ठ पार्थ! धृतव्रत मेधावी गुरु उस जिज्ञासु, सद्गुण सम्पन्न प्रतिपन्न, शान्त, दान्त, प्रियवर्त्ती, छायास्वरूप, यति, ब्रह्मचारी शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर यथार्थ रीतिसे देने लगा।

गुरु बोला, तुमने वेदविद्या अवलम्बन करके जो प्रश्न किया है, उस विषयमें ब्रह्माने ऋषियोंके द्वारा सेवित अवाधितार्थके विचारयुक्त यह वचन कहा था। जो पुरुष निश्चित रीतिसे ज्ञानरूपी परब्रह्म, संन्यास रूपी श्रेष्ठ तपस्या, बाधारहित ज्ञान तत्त्व और सर्व्वभूतस्थ आत्माको जान सकता है, वह सब प्रकारसे कामना भोग करनेमें समर्थ होता है। जो विद्वान मनुष्य जात-स्वभाव अविद्या और चिन्मय परमात्माका सहवास, पृथक् वास, एकत्व और अनेकत्व दर्शन करता है, वह महा घोर दुःखभोगसे मुक्त होता है। जो किसी विषयमें अभिमान नहीं करता, वह इस लोकमें रहकर अर्थात् सशरीरही मुक्त होता है। जो मनुष्य निर्म्मम और अहङ्काररहित होकर प्रधानमाया सत्वादि गुणों और सर्व्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारणको जान सकता है, वही मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। अव्यक्त अज्ञान जिसका मूल है, बुद्धि स्कन्ध अहङ्कार पल्लव, इन्द्रियें कोटरस्थ पत्रांकुर, विषयादि पञ्च महाभूत पुष्पकोरक और स्थूलकार्य्य जिसकी उपशाखा हैं; पुरुष सदा गिरनेवाला पत्ता, कर्म्मरूपी पुष्प और सुखदुःखरूपी फलसे युक्त सब जीवोंका उपजीव्य संसारवृक्षके बीजभूत इस सनातन ब्रह्मको विशेष रीतिसे जानकर ज्ञानरूपी तलवारके द्वारा इस वृक्षको अव्यक्तादिरूप मूल प्रभृति शाखा प्रशाखाओंको काटकर मनुष्य अमृतत्व लाभ करके जन्ममृत्युसे रहित होनेमें समर्थ होता है।

हे महाप्राज्ञ! पहले मनीषी महर्षिगण इकट्ठे होकर निज निज बुद्धिके अनुसार जिस विषयको आपसमें पूंछकर सशरीर मुक्त हुए थे, सिद्धसमूहोंसे परिज्ञात, वर्त्तमान, भूत, भविष्यत्, धर्म्म-काम और अर्थके निश्चययुक्त वह अत्यन्त श्रेष्ठ सनातन मोक्षपद आज मैं तुमसे कहता हूं। पहले प्रजापति भरद्वाज, गौतम, भृगुनन्दन जमदग्नि, वसिष्ठ, काश्यप, विश्वामित्र और अत्रि आदि विप्रोंने मार्गोंमें परिभ्रमण करते हुए निज निज कर्म्मोंके द्वारा परिश्रान्त होकर अङ्गिरापुत्र वृहस्पतिको अगाड़ी करके ब्रह्मभवनमें जाकर निर्म्मल ब्रह्माका दर्शन किया। अनन्तर महर्षियोंने सुखसे बैठे हुए उस ब्रह्माको प्रणाम करके विनीतभावसे उनसे मुक्तिका विषय इस प्रकार पूंछा। हे ब्रह्मन्! साधुलोग कैसा कर्म्म करेंगे? किस प्रकार पापोंसे छूटेंगे, हमलोगोंके लिये कौनसे मार्ग मङ्गलजनक हैं? सत्य क्या है? दुष्कृत क्या है? कर्म्मोंके दक्षिण और उत्तर दोनों मार्ग कौनसे हैं? प्रलय किसे कहते हैं? अपवर्ग क्या है और

भूतोंकी उत्पत्ति तथा विनाश किसे कहते हैं? यह सब मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। हे शिष्य! पितामह ब्रह्माने मुनियोंका ऐसा प्रश्न सुनके उनसे जो कहा था, मैं तुमसे वही विषय कहता हूं, सुनो।

ब्रह्मा बोले, हे सुव्रत द्विजगण! तुम लोग यह निश्चय जानो, कि सत्य अर्थात् त्रिकालावस्थायी ब्रह्मसे अव्यक्त प्रभृति सब भूत, विषयादि स्थावर और जरायुजादि चर समूह उत्पन्न होकर तपरूपी कर्म्मके द्वारा जीवित रहते हैं, परन्तु जब वे लोग निज योनिभूत ब्रह्मपथ अतिक्रम करते हैं, तब ध्यानसे च्युत होकर केवल निज कर्म्ममार्गमें ही स्थित रहते हैं, व्यवहारिक गुणयुक्त सत्य पांच हैं; परन्तु अकेला ब्रह्म ईश्वर सत्य है। तप अर्थात् धर्म्म सत्य है, प्रजापति जीव सत्य है, सत्यसे उत्पन्न सब भूत सत्य हैं और भूतमय जगत् सत्य है। इसही निमित्त सत्याश्रित क्रोध और सन्ताप विहीन नियतेन्द्रिय तथा नियत योग परायण विप्रगण धर्म्मसेतु कहाते हैं। जो लोग परस्परके भयसे धर्म्मको अतिक्रम नहीं करते, वे विद्वान् धर्म्मसेतु प्रवर्त्तक और शाश्वत लोकचिन्तक ब्राह्मणोंका विषय मैं तुमसे कहता हूं। हे द्विजगण! मनीषीवृन्द चतुष्पाद एकमात्र जिस धर्म्मको नित्य कहा करते हैं, वही धर्म्म धर्म्मार्थ काम और मोक्षप्रद चारों विद्या, ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्यादि चारों आश्रमोंको पृथक् रीतिसे कहता हूं। हे महाभागगण! पहले मनीषिवृन्द ब्रह्मप्राप्तिके निमित्त सदा इसलोकमें जिस पथसे गमन करते थे, वह मोक्ष तथा मङ्गलजनक दुर्व्विज्ञेय परम पथ सब भांति तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम लोग सुनो।

पण्डित लोग ब्रह्मचर्य्य आश्रमको प्रथम पद गार्हस्थ्य आश्रमको दूसरा पद वाणप्रस्थ आश्रमको तीसरा पद और परमात्मप्रापक सबसे विशेष सन्न्यासाश्रमको चतुर्थ पद कहा करते हैं। जीव जबतक आध्यात्मिक सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन करके परमात्माका दर्शन नहीं करता, तबतक अग्नि, आकाश आदित्य वायु इन्द्र और प्रजापति प्रभृति विश्वका दर्शन किया करता है, वायु, फलमूलाशी वनवासी मुनियोंकी अध्यात्म दर्शनकी उपाय पहले कहता हूं उसे सुनो। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों द्विजातियोंके लियेही वाणप्रस्थ आश्रम विहित है, अन्य वर्णोंको केवल गार्हस्थ्य आश्रम अवलम्बन करना योग्य है। पण्डित लोग श्रद्धा अर्थात् आस्तिक्य बुद्धिको ही धर्म्मका मुख्य लक्षण कहा करते हैं, यही तुम लोगोंके देवयान मार्ग प्राप्तिका पथ वर्णित हुआ है, साधु लोग निज कर्म्मोंके सहारे धर्म्मके सेतु स्वरूप पथसे गमन किया करते हैं। जो संशितव्रती मनुष्य इन सबके बीच एक मात्र धर्म्मको ही पृथक् रूपसे अवलम्बन करता है, वह कालक्रमसे सर्व्वदा प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाश दर्शन करता है।

इसके अनन्तर युक्तिके अनुसार बुद्धिस्थ वर्त्तमान तत्त्वोंकी विभाग क्रमसे यथावत कहता हूं, सुनो। महान् आत्मा, अव्यक्त प्रकृति, अहंकार, श्रोत्रादि, दशो इन्द्रिय, मन विषयादि पञ्चमहाभूत और शब्दादि पञ्च विशेषगुण, ये सनातनी सृष्टि हैं; इस ही प्रकार पचीस तत्त्वोंकी संख्या वर्णित हुई है। जो मनुष्य इन पचीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति और विनाशको विशेष रीतिसे जान सकता है, उस धीरको सब प्राणियोंसे मोह नहीं प्राप्त होता और जो मनुष्य पचीस तत्त्वों, सत्त्वादि गुणों तथा देवताओंको विशेष रीतिसे जानता है, वह निष्पाप होकर बन्धनोंसे छूटकर निर्म्मल लोक प्राप्त करता है।

३५ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, उन तत्त्वोंके बीच जो त्रिगुणात्मक सर्व्वकार्य्यव्यापी अविनाशी और अचञ्चल है, उसे ही जानना चाहिये, कि वही अनुक्ति

अव्यक्त प्रभृति उद्रिक्त होकर नवद्वार युक्त पञ्च-धातुमय पुरस्वरूपसे परिणत होता है। जिसमें जीवात्मा विषयभोग बासनासे जिसके द्वारा परि-चिप्त होता है और मनसे सङ्कल्पसम्मत सब बिषय प्रकट होते हैं, उन ग्यारह इन्द्रियोंसेयुक्त बुद्धि स्वामिकपुरके बीच परब्रह्म अध्यासित होकर ग्यारह भागमें विभक्त होता है। धर्म्म प्रावल्य हिंसारहित शुक्ल, हिंसा प्रावल्य कृष्ण तथा हिंसायुक्त प्रवृत्तिधर्म्म, प्रावल्य शुक्ल कृष्ण, ये तीनों उस पुरस्थित नदीके स्रोत हैं, ये स्रोत त्रिगुणात्मक संस्कारस्वरूप तीन नाड़ियोंके द्वारा बार बार आप्यायित तथा सब नाड़ियोंसे बार बार बर्द्धित हुआ करते हैं। पण्डित लोग तम, रज और सत्त्व, इन तीनोंको गुण कहा करते हैं; ये तीनों गुण परस्पर अनुजीव्य अवलम्बन करनेसे मिथुनभावको प्राप्त होकर दम्पतीका कार्य्य उत्पन्न करते हैं। परस्परके अनुवर्त्ती होकर आपसमें एक दूसरेके अवलम्ब होते हैं और अग्नि, जल तथा अन्न इन तीनों कार-णोंकी भांति परस्परमें मिलके पञ्चभूत तथा भौतिकस्वरूपसे परिणत होते हैं। तमोगुणका अभिभावक सत्त्व, सतोगुणका अभिभावक रज, रजोगुणका अभिभावक सत्त्व, सतोगुणका अभि-भावक तम है अर्थात् तमोगुणके उदय होनेसे सतोगुण अन्तर्हित होता है; सतोगुणके उदय होनेसे रज और रज तथा तमोगुणके उदय होनेसे सत्त्व अन्तर्हित होता है। जिसे स्थलमें तमोगुण दूर होता है, उस स्थानमें जो गुण प्रवर्त्तित हुआ करता है और जिस स्थानमें रजोगुण अन्तर्हित होता है, उस स्थलमें सतो-गुण प्रवर्त्तित हुआ करता है। पापकर्म्ममें विरत अधर्म्म लक्षण मोह नामक नैशात्मक तमको त्रिगुणात्मक जानो। पण्डित लोग सर्व्वभूतोंमें प्रवृत्त, उत्पत्तिलक्षण दृश्य वैपरीतकारक रजो-गुणको प्रकृत्यात्मक कहा करते हैं और सर्व्व-भूतोंमें प्रकाशमान धर्म्मज्ञानादि रूप श्रद्धावानता प्रभृति सौष्टव सात्त्विकगुण साधुसम्मत हैं, सत्त्वा-दिगुणोंके समास और व्यासयुक्त कार्य्यस्वरूप सब तत्त्व हेतुके द्वारा यथार्थ रीतिसे वर्णित हुए हैं; तुम लोग उसे सुनो। सम्मोह, अज्ञान, अत्याग, कर्म्मोंका अविनिर्णय, निद्रा स्तम्भ, भय, लोभ, शोक, सुकृत, दूषण, अस्मृति, अविपाक, नास्तिक्य, भिन्न वृत्तिता, निर्व्विशेषत्व, अन्धत्व, जघन्य अर्थात् चाण्डालादि गुणवृत्तत्व, अकृतमें कृतमानित्व, अज्ञानमें ज्ञानशालिता, अमैत्रीकृ तता, विविध क्रिया भावत्व, अश्रद्धा, मूढ़भावना अनार्ज्जव, असङ्गत्व, पापकारित्व, अचेतनत्व, गुरुत्व अर्थात् आलससे जड़ता, सन्नभावत्व अर्थात् देवादिमें भक्तिहीनता, अजितेन्द्रियत्व और नीच कर्म्मानुरागिता,—ये सब तामसगुण कहके वर्णित हुए हैं। इस लोकमें भावसंज्ञित दूसरे जो सब भाव विहित हैं, तामसगुण उन्हीं भावोंमें नियमके अनुसार उपस्थित हुआ करता है।

सदा ब्राह्मणोंकी परिवाद कथा और निन्दा, अत्याग, अभिमान, मोह, मन्यु, क्षमा, सबका शुभ-द्वेष, बृथा आरम्भ, वृथा दान, वृथा भक्षण अतिवाद, अतितिक्षा, मात्सर्य्य, अभि-मानिता और श्रद्धाहीनता,—ये सब तामसवृत्ति कहके वर्णित हुई हैं। इस लोकमें इस ही प्रकार जो सब पापकर्म्मवाले मर्य्यादारहित मनुष्य विद्यमान हैं, वे सब तामस कहके वर्णित हुए हैं। वे पापकर्म्मवाले तामस मनुष्योंकी नियतयोनियोंको प्रकृष्टस्वरूपसे कहूंगा; वे लोग अधःपतनके निमित्त तिर्य्यक्योनिमें गमन किया करते हैं। पापकर्म्मवाले तामसी मनुष्य तमसा-च्छन्न होकर क्रमसे स्थावर, पशु, बाहन, क्रव्याद दन्दशूक, कृमि, कीट, विहङ्ग, अण्डज, चतुष्पद जन्तु, उन्मत्त, बधिर, मूक, पापरोगी अपने किये हुए कर्म्मोंके लक्षणसम्पन्न दुर्व्वृत्त और अधोगामी—ये सब तामसयोनि सम्भूत कहके वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर उन लोगोंके

उत्कर्ष उद्रेक तथा वे लोग पुण्यकर्म्मा होकर जिस प्रकार सुकृत लोक लाभ कर सकते हैं, वह कहता हूं। इस प्रकार वैदिक श्रुति है, कि निज कर्म्ममें रत, शुभाकांक्षी ब्राह्मणोंके बीच जो लोग अग्निहोत्रादि कर्म्मोंके निमित्त हिंसित होकर तिर्य्यक् स्थावरादि योनि लाभ करते हैं, वे वैदिक संस्कारसे स्थावर आदि योनिसे च्युत होकर यत्नपूर्व्वक सालोकता अर्थात् ब्राह्मणत्व जाति लाभ करते हुए उर्द्धदेवलोक तथा स्वर्गमें गमन किया करते हैं। तिर्य्यक् स्थावर आदि योनिसम्भूत तामसी पुरुष निज कर्म्मोंसे विवृद्ध होकर पुनरावृत्त धर्म्म ग्रहण करते हुए इस लोकमें मनुष्य योनिको प्राप्त हुआ करते हैं। चाण्डाल, मूक और चूचक प्रभृति मनुष्य पापयोनिको प्राप्त होकर पर्य्यायक्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वर्णोंको प्राप्त होते हैं। अन्यान्य तामसगुण शूद्रयोनि अतिक्रम करके तमोगुणके स्रोतमें आगमन करते हुए तामसगुणमें ही वर्त्तमान रहते हैं। काममें अभिष्वङ्ग अर्थात् आसक्ति महामोह नामसे विख्यात् हुई है; सुखके अभिलाषी ऋषि, मुनि और देवगण इस महामोहसे मुग्ध हुआ करते हैं। क्रोध नामक मोह, महामोह, तामिस्र, मरण अन्धतामिस्र और क्रोध,—ये सब तमरूपसे वर्णित हुए हैं। हे विप्रगण! वर्ण, गुण, योनि और तत्त्वके अनुसार सब प्रकारके तमका तुम्हारे निकट विधिपूर्व्वक वर्णन किया। परन्तु कौन पुरुष इसे उत्तम समझेगा तथा कौन पुरुष ही इसे उत्तम रीतिसे देखेगा? जो पुरुष अतत्त्वमें तत्त्वदर्शी होता है, उसमें ही तमोगुणके प्रकृत लक्षण मालूम हुआ करते हैं, अनेक प्रकारके तमोगुण वर्णित हुए और परावर तम यथावत् कहा गया। जो मनुष्य इन गुणोंको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह समस्त तामसगुणोंसे मुक्त होता है।

३६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजसत्तमगण! तुम लोगोंसे रजोगुण और रजोगुणकी वृत्ति यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सङ्घात रूप, आयास सुख, दुःख, सर्द्दी, गर्म्मी, ऐश्वर्य्य, विग्रह, सन्धि हेतुवाद, रति, क्षमा, बल, शौर्य्य, मद रोष, व्यायाम कलह, ईर्षा ईप्सा, पिशुनता, युद्ध, ममता परिपालन, वध, बन्धन, क्लेश, क्रय, विक्रय, कतरो, काटो, छेदन करो, ऐसा कहके पराये मर्म्मको छेदन करना, उग्र, दारुण, आक्रोश परछिद्रानुसन्धान, लोकचिन्ता, मत्सरता, परिपालन, मृषावाद, मिथ्यादान, विकल्प, परिभाषण, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा, प्रताप, परिधर्षण, परिचर्य्या, शुश्रूषा, सेवा, तृष्णा, व्यापाश्रय, व्यूह, नीति, प्रमाद, परिवाद, परिग्रह, लोकके बीच नर-नारी, भूतद्रव्य और सब आश्रमोंमें सब संस्कार, सन्ताप, अप्रत्यय, व्रत, नियम आशिर्युक्त विविध पौर्त्तकर्म्म, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, वषट्कार, याजन, अध्यापन, यजन, अध्ययन, दान, प्रतिग्रह, प्रायश्चित्त, यह मेरा है, यह मेरे हो इससे गुण उत्पन्न हुआ है। अभिद्रोह, माया, निकृति, मान, स्तैन्य, हिंसा, जुगुप्सा, परिताप, जागरण, दम्भ, दर्प, राग, भक्ति, प्रीति, प्रमोद, द्यूत, जनवाद, स्त्रीकृत सम्बन्ध, नृत्य, बाजा और गीत,—ये सब रजोगुणकी वृत्ति कहके वर्णित हुई हैं।

रजोगुणावलम्बी मनुष्य पृथ्वीपर वर्त्तमान, भूत और भविष्यत् विषयोंकी चिन्ता करते हैं, धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंमें सदा तत्पर रहते हैं, वे लोग कामवृत्ति अवलम्बन करके सब प्रकारसे काम तथा समृद्धिके सहित प्रमुदित होते वा उर्द्धमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग इस लोकमें बार बार जन्म लेकर ऐहिक और जन्मान्तरीय कुशलकी आकांक्षा करते हुए अत्यन्त आनन्दित होते और हर्षपूर्व्वक दान, परिग्रह, तर्पण तथा होम किया करते हैं। हे द्विजगण! अनेक

प्रकारसे रजोगुण तथा रजोगुणकी वृत्ति तुम्हारे निकट वर्णित हुई; परन्तु जो मनुष्य इन गुणोंको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह सब प्रकार रजोगुणसे मुक्त होता है।

३७ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजगण! इसके अनन्तर इस लोकमें सब भूतोंके हितकर साधुओंके लिये अनिन्दित धर्मस्वरूप उत्तम तृतीय सतोगुण तुम लोगोंसे कहता हूं, सुनो।

आनन्द, प्रीति, उन्नति, प्रकाशसुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धानता, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, शौच, दाक्षिण्य और पराक्रम,—ये सब सतोगुण हैं। जो पुरुष शास्त्रीय ज्ञानवृत्त सेवा और श्रम, इन सबको व्यर्थ समझके योगी-धर्म्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें परमपदको प्राप्त हुआ करता है। निर्मम, निरहङ्कार, निराकांक्षा, सर्व्वत्र समता तथा अकाम, येही साधुओंके सनातन धर्म्म हैं। विस्रम्भ, लज्जा, तितिक्षा, त्याग, शौच, अतन्द्रिता, अनृशंसता, असम्मोह, सब भूतोंमें दया, अपिशुनता, हर्ष, तुष्टि, विस्मय, विनय, साधुवृत्तिता, शान्ति कर्म्ममें शुद्धि, शुभबुद्धि, विमोचन, उपेक्षा, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वस्व परित्याग, निर्म्ममता निराकांक्षत्व और अपरिक्षत धर्म्मता,—ये सब सतोगुणकी वृत्ति हैं। इसलोकमें जो सब सतोगुणावलम्बी धीर ब्राह्मण दान, यज्ञ, अध्ययन, व्रत, परिग्रह, धर्म्म और तपस्याको मिथ्या जानके ब्रह्मयोनिमें निवास करते हैं, वेही साधुदर्शी होते हैं। साधुदर्शी मनुष्य राजस और तामस पापकर्म्मोंको परित्याग करके निःशोक होकर स्वर्गमें जाकर अनेक प्रकारके शरीर सृजन किया करते हैं। वे महात्मा त्रिदिववासी देवताओंकी भांति अणिमादि ऐश्वर्य्य लाभ करके मनको अनेक प्रकारके आकारसे विकृत किया करते हैं। ऊर्द्धगामी देवगण वैकारिक नामसे विख्यात हुए हैं; वे प्रकृति अर्थात् भोगजसंस्कारके द्वारा पुनर्व्वार भोग करनेके निमित्त चित्तको विकृत करते हुए स्वर्गमें जाकर जो इच्छा करते हैं, तुल्य भावसे ही उन वस्तुओंको पाते तथा दूसरोंको दान किया करते हैं।

हे द्विजेन्द्रगण! तुम लोगोंके निकट यह जो सात्त्विकी वृत्ति कही गई, मनुष्यगण इसे विशेष रीतिसे जाननेपर अभिलषित विषयोंको पा सकते हैं। मैंने सात्विक गुण तथा विशेष करके सतोगुणकी वृत्ति तुम लोगोंसे कही है। जो मनुष्य इन गुणों तथा गुणकी वृत्तियोंको जानसकता है, वह सर्व्वदा सतोगुण भोग करते हुए उसमें लिप्त हुआ करता है।

३८ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, सब गुणोंको पृथक् करके नहीं कहा जा सकता; सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण अपरिच्छन्न रूपसे लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। परस्परमें एक दूसरेके आश्रय तथा अनुजीव्य अवलम्बन करते हुए परस्परके अनुवर्त्ती होकर परस्परके अनुराग भाजन होते हैं। जिस स्थानमें सत्त्व विद्यमान रहता है, उस स्थानमें रजोगुण प्रवृत्त होता है और जितना तम और सत्त्वप्रकाशित होता है, उतनाही रजोगुण प्रकाशित हुआ करता है। संहतभाव एक व्यवहारसम्पन्न सत्त्वादि सब गुण मिलके लोक व्यवहार सम्पादन करते हैं और हेतु तथा अहेतुके सहित वैषम्यभावसे निवास किया करते हैं। एक दुसरेके आश्रित उन सत्त्वादि गुणोंके परस्परकी उद्बोधक सामग्री न रहनेपर जिस प्रकार उनकी अन्यूनता तथा अनधिकता अर्थात् सबके रूप समान होते हैं, उसे कहना होगा। परन्तु जिस स्थानमें तमोगुण अतिरिक्त और तिर्य्यक्भावसे रहित होता है, उस स्थानमें अल्प रजोगुण और किञ्चित

सतोगुन जानो। जिस स्थानमें रजोगुण उदित तथा मध्य स्रोतगत होता है, उस स्थलमें अल्प तमोगुण तथा अल्पही रजोगुण बोध करना चाहिये। सत्त्व इन्द्रियोंको अहङ्कारसम्बन्धिनी योनि है, सत्त्वही इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादि प्रकाश करता है; इसलिये सत्त्वसे श्रेष्ठ दूसरा धर्म्म और कुछ भी नहीं है। सत्त्वगुणावलम्बी मनुष्य ऊर्द्ध गामी, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्य-गामी और निकृष्ट तमोगुणावलम्बी पुरुष अधो-गामी हुआ करते हैं। तमोगुण शूद्रोंमें रजो-गुण चत्रियों और उत्तम सतोगुण ब्राह्मणोंमें विद्यमान रहता है; इसही प्रकार सत्त्वादि तीनों गुण तीनों वर्णोंमें प्रवर्त्तित हुए हैं। तम, सत्त्व और रज, इन तीनों गुणोंको हम पृथक् पृथक् जानते हैं; परन्तु ये दूरसे मिले हुए तथा संघचारि रूपसे दीख पड़ते हैं। सूर्य्यके उदय होनेपर कुकर्म्मी मनुष्यगण डरते और दुःखभागी पथिक गर्म्मीसे सन्तापित होते हैं। सूर्य्यकी भांति स्वप्रकाश सतोगुण, कुकर्म्मचारि योंका भय स्वरूप तमोगुण और पथिकोंका परिताप रजोगुण कहके वर्णित हुआ है। प्रका-शात्मक आदित्य सत्त्व, सन्ताप रज और पर्व्वस-म्बन्धी उपप्लवको तम जानो। इस ही प्रकार समस्त ज्योतिवाले पदार्थोंमें सत्त्वादि तीनों गुण पर्य्यायक्रमसे प्रवृत्त और निवृत्त हुआ करते हैं। परन्तु स्थावर पदार्थोंमें तम तिर्य्यक् भाव अर्थात् अधिकताको प्राप्त होता है, रमणीय-त्वादि रूप रजोगुणसे विवर्त्तित होता है और सत्त्वके स्नेहभाव अर्थात् प्रकाशरूपमें स्थित हुआ करता है। दिन, रात, महीना, पक्ष, वर्ष, ऋतु, सन्धि, दान, यज्ञ, लोक, देवता, विद्या, गति, वर्त्तमानादि काल, धर्म्मादि वर्ग और प्राणादि वायु,—इन सबको ही त्रिगुणात्मक जानो। इसलोकमें जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, वे सभी त्रिगुणात्मक हैं, तीनों गुण पर्य्याय क्रमसे सब वस्तुओंमें ही प्रवर्त्तित हुआ करते हैं। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण अव्यक्त रूपसे सदा प्रवर्त्तित होते हैं; इन गुणोंको सनातन जानके तम, अव्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, प्रकृति, विकार, प्रलय, प्रधान, प्रभव अर्थात् उत्पत्ति, विनाश, अनुद्रिक्त, अन्यून अकम्प, अचल, ध्रुव, सत् असत्, अव्यक्त और त्रिगुण,—अध्यात्मचिन्तक मनुष्य इन्हें अव्यक्त नामसे मालूम करें। जो मनुष्य अव्यक्तके नाम गुण और गतिको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह विभागतत्त्वज्ञ पुरुष मुक्त और निरामय होकर सब प्रकारके गुणोंसे मुक्त होता है।

३९ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पहले अव्यक्तसे महामति महात्मा महान् उत्पन्न होता है, वह सबकी आदि तथा प्रथम कल्प कहके वर्णित हुआ है। महात्मा महान्, महानात्मा, मति, विष्णु, जिष्णु, शम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, ख्याति, धृति और स्मृति, ये सब पर्य्यायवाचक शब्दसे विभावित होते हैं, विद्वान् ब्राह्मणगण उस महान्को जाननेसे मोहको नहीं प्राप्त होते। वह सर्व्वग्राही, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा सर्व्वानन और सर्व्वश्रोता है; वही समस्त जग-तमें व्याप्त होकर निवास कर रहा है। वह महाप्रभाव पुरुष सबके ही हृदयमें निश्चित है, वही अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, ईशान, अव्यय और ज्योतिस्स्वरूप है। जो सब बुद्धिमान सद्भा-वमें रत, ध्यानपरायण सदा योगाचारी, सत्यसन्ध जितेन्द्रिय, ज्ञानवान, अलुब्ध, जितक्रोध, प्रसन्न-चित्त, धीर, निर्म्मल और निरहङ्कारी मनुष्य उसमें रत रहते हैं तथा जो लोग उस महात्मा महान्की पुण्यगतिको जान सकते हैं, वे सबसे ही मुक्त होकर महत्त्व लाभ करते हैं, पृथ्वी, वायु आकाश, जल और अग्नि, ये पांचो महाभूत अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं। सब भूत उन पञ्च-महाभूतोंसे उत्पन्न होकर शब्द, स्पर्श, रूप,

रस और गन्ध,—इन सब क्रियागुणसे युक्त होते हैं। हे धीरगण! उन महाभूतोंका अन्त तथा प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्राणियोंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। वही महावीर महान् सब लोकोंके बीच मोहको नहीं प्राप्त होता; वह स्वयम्भू ही आदिसर्गका प्रभु है। जो पुरुष गुहाशय विश्वरूप हिरण्मय बुद्धिमानोंको परमगति पुराण परम पुरुष प्रभुको इस प्रकार जानता है, वही बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिको अतिक्रम करके निवास करता है।

४० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पहले, जो महान् उत्पन्न हुआ, वह "अहं" ऐसा अभिमान करते हुए अहंकार तथा द्वितीय सर्ग कहके वर्णित हुआ। वह अहङ्कार सब भूतोंकी आदि है, विकृत महत्तसे उत्पन्न तेज बिकार चेतना पुरुष और प्रजापतिरूपसे उत्पन्न हुआ है। वही इन्द्रिय और मनकी उत्पत्तिस्थान त्रिलोककर्त्ता है, वह सब वस्तुओंमें "अहं" रूप अभिमान करनेसे अहंकार नामसे प्रसिद्ध हुआ। अध्यात्मज्ञानसे परितृप्त परमात्मचिन्तक स्वाध्याय क्रतुके द्वारा सिद्ध मुनियोंका यही सनातन लोक है, अहंकारसे शब्दादि गुणभोक्ता पुरुषका आदिभूत बिकृत महत्तसे उत्पन्न है। वह भूकर्त्ता अहंकार बिषयादि भूतोंकी सृष्टि करते हुए निज तेजके द्वारा समस्त जगत्को रञ्जित करके विशेष रीतिसे चेष्टा करता है।

४१ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पृथ्वी, वायु आकाश, जल और अग्नि ये पांचो महाभूत अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य आदि सब प्राणी निमित्तभूत शब्दादिगुणबिमिश्रित उन पञ्चमहाभूतोंसे मुग्ध होते हैं। हे धीरगण! महाभूतोंके बिनाश तथा प्रलयका समय उपस्थित होनेपर सब प्राणियोंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे उसहीमें लीन होते हैं; तथा वे सब अनुलोम क्रमसे उत्तरोत्तर उत्पन्न होते और प्रतिलोम क्रमसे लीन हुआ करते हैं। तिसके अनन्तर स्थावर जङ्गमात्मक सब भूतोंके प्रलीन होनेपर उस समय धीरवर स्मृतिवान् मनुष्य कदाचित् लीन नहीं होते। सूक्ष्म शब्दादि विषय और विषय ग्रहणरूप सब क्रिया करणात्मक मन रूपसे नित्य होती और मोहसंश्रित अर्थात् स्थूल शब्दादि विषय तथा उन विषयोंको ग्रहणरूपी क्रिया अनित्य हुआ करती हैं। लोभजनक कर्म्मसे उत्पन्न निर्व्विशेष, अकिञ्चन मांसशोणित संयुक्त, दीन अर्थात् क्षुधा प्रभृतिके द्वारा उपद्रुत, कृपणजीव, अन्यान्य उपजीवी बहिरात्मा अर्थात् समस्त स्थूल शरीरको अनित्य जानो। प्राणादि पंचवायु और वाक्य, मन तथा बुद्धि, ये आठों उपाधिरूप अन्तरात्माके सम्बन्ध होकर जगदाकाररूपसे भासमान होते हैं। जिसकी त्वचा, नासिका, कान, नेत्र, जिह्वा, बचन संयत तथा मन विशुद्ध वा बुद्धि अव्यभिचारिणी होती है, तथा ये आठों अग्निस्वरूप होकर जिसके चित्तको सदा नहीं जलाते, वह विद्वान् मनुष्य सर्व्वाधिक शुभ ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है।

हे द्विजगण! जो अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें पण्डित लोग एकादश इन्द्रिय कहा करते हैं; मैं तुम लोगोंके समीप उन एकादश इन्द्रियोंको विवरण विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, चरण हाथ, पायु, उपस्थ, वाक्य और मन, ये एकादश इन्द्रिय हैं; पहले इन इन्द्रिय ग्रामोंको वशीभूत करनेसे पूर्णब्रह्म प्रकाशित होता है। पण्डित लोग बुद्धियुक्त श्रोत्रादि पाचोंको ज्ञानेन्द्रिय और मनसंयुक्त वागादि सातोंको कर्म्मेन्द्रिय कहा करते हैं; परन्तु दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंमें अनुगत मनको एकादश और

बुद्धिको द्वादश जानो। यथाक्रमसे ये ग्यारह इन्द्रियां वर्णित हुई हैं, पण्डित लोग इन ग्यारहों इन्द्रियोंको विशेष रीतिसे जानकर कृतकृत्य हुआ करते हैं। हे द्विजगण! इसके अनन्तर सब इन्द्रियों आकाश आदि विविध भूतों तथा उनके अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवतको तुम लोगोंसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। आकाश प्रथम भूत है, उसमें श्रोत्र, अध्यात्म, शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैवत कहके वर्णित हुई हैं। वायु द्वितीयभूत है, उसमें त्वचा अध्यात्म, स्पष्टव्य अधिभूत और बिजली अधिदैवत कहके विख्यात हुई है। अग्नि तृतीयभूत है, उसमें नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्य्य अधिदैवत कहा गया है। जल चतुर्थभूत है उसमें जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत और चन्द्रमा अधिदैवत कहके गिना गया है। पृथ्वी पञ्चमभूत है, उसमें नासिका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत और वायु अधिदैवत कहके वर्णित हुआ है। इसके अनन्तर पञ्चभूतोंके अन्तर्गत अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत, इन तीनोंमें जो विधि विहित हुई है, उस विधि और कर्म्मेन्द्रियोंका वर्णन करता हूं, सुनो। तत्त्वदर्शी ब्राह्मण लोग चरणको अध्यात्म उसके गन्तव्यको अधिभूत और विष्णुको अधिदैवत कहा करते हैं। अवाक्‌गति अपानमें पण्डितोंके द्वारा पायु अध्यात्म, विसर्ग अधिभूत मित्र अधिदैवता कहके वर्णित हुए हैं। सब प्राणियोंके प्रजनक उपस्थ अध्यात्म, शुक्र अधिभूत और प्रजापति अधिदैवत रूपसे वर्णित हुए हैं। अध्यात्मवित् लोग हाथको अध्यात्म, उसके कर्म्मको अधिभूत और शक्रको अधिदेवता कहा करते हैं। वाक्यरूप वैश्वदेवी अध्यात्म, उसमें वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदेवता है। पण्डित लोग भूतात्मकारक मनको अध्यात्म, उसके सङ्कल्पको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदेवता कहा करते हैं। सर्व्व संस्कारकारक अहङ्कार अध्यात्म, उसमें अभिमान अधिभूत और रुद्र अधिदेवता कहके वर्णित हुए हैं। पण्डित लोग षड़िन्द्रियचारिणी बुद्धिको अध्यात्म, उसके मन्तव्यको अधिभूत और ब्रह्माको अधिदेवता कहते हैं। प्राणियोंके जल, स्थल और आकाश, ये तीन स्थान हैं, इनके अतिरिक्त चौथे स्थानकी उपलब्धि नहीं होती। सब प्राणियोंके अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज, यह चार प्रकारके जन्म दीखते हैं। अन्य अपकृष्ट भूतों, खेचरों तथा सरीसृपोंको अण्डज जानो। इस ही प्रकार कृमि प्रभृति जघन्य जन्तु समूह स्वेदज वा जघन्य कहके वर्णित हुए हैं; यह द्वितीय जन्म है। समय पर्य्यायसे जो भूत पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होते हैं। द्विजगण उन्हें उद्भिज्ज कहा करते हैं। हे सत्तमगण! द्विपाद, बहुपाद, तिर्य्यक् गतिविशिष्ट जरायुज प्राणिगण विकृत कहके वर्णित हुए हैं। सनातन ब्रह्मोपलब्धि स्थान दो प्रकारका जानो; पण्डितोंकी ऐसी नीति है, कि वे पुण्यकर्म्मको ही तपस्या कहा करते हैं। कर्म्म अनेक प्रकारके हैं, उनके बीच यज्ञ और दानको मुख्य जानो। हे द्विजेन्द्रगण! वृद्धोंकी ऐसी आज्ञा है, कि ब्राह्मणोंके लिये वेदाध्ययन ही पुण्यकर्म्म है, जो पुरुष इसे विधिपूर्व्वक जानता है, वही उपयुक्त हुआ करता है, और यह भी जान रखो, कि वही पुरुष सब पापोंसे छूटता है; यह मैंने अध्यात्म विधिका तुम लोगोंके समीप यथार्थ रीतिसे वर्णन किया है। हे धर्म्मज्ञगण! इस लोकमें ज्ञानवान् पुरुष ही इस अध्यात्म विधिको जानते हैं, इसीसे वे लोग इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ और पञ्च महाभूत, इन सबको सन्धान करते हुए मन मात्रमें निवास करते हैं। मनके सब प्रकारसे क्षीण होनेपर जो पुरुष निर्व्विकल्प सुख अनुभव करता है, उसे पुत्र, कलत्र, परिष्पङ्गजनित संसारसुख अभिलषित नहीं होता; परन्तु जिन विद्वान्

मनुष्योंको बुद्धि आत्मानुभव संयुक्त है, उनके लिये वही सुखरूपसे सम्मत होता है। इसके अनन्तर मनकी सूक्ष्मत्वकारी निवृत्ति तुम लोगोंसे कहता हूं, ब्राह्मणादि सब प्राणी मृदु तथा कठिन योगके सहारे निवृत्ति साधनमें यत्नवान् होवें। शौर्य आदि गुणागुणयुक्त अभिमान रहित एकान्तवास अवच्छिन्न एक अर्थात् सर्व्वसुख-गर्भ सुखको पण्डित लोग ब्राह्मणोंके वृत्त कहा करते हैं। निज अङ्ग समेटनेवाले कछुवेकी भांति जो विद्वान् मनुष्य सब कामना पूरी रीतिसे संहार करते हुए रजोविहीन होता है, वह सब भांतिसे मुक्त होकर सदा सुखभोग किया करता है। जो समाहितचित्तवाला पुरुष मनुष्य देहके बीच सब कामना संयत करते हुए संसारवासना नष्ट करता है, वह सब प्राणियोंका सुहृत् तथा मित्र होकर ब्रह्मत्व लाभ करता है। विषयाभिलाषी इन्द्रियोंका निरोध और जनपद त्याग निबन्धनसे मुनियोंकी अध्यात्म अग्नि प्रज्वलित होती है। जैसे अग्नि काष्ठके द्वारा प्रज्वलित होकर महाज्योतिस्वरूपसे प्रकाशित होती है, वैसे ही इन्द्रियनिरोधसे परमात्मा प्रकाशित हुआ करता है। जब अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे पुरुष सब भूतोंको निज हृदयमें अवलोकन करता है। तब वह अत्यन्त सूक्ष्म अनुत्तम ज्योतिको प्राप्त होता है। जिस समय कृष्ण तथा गौरादि रूप अग्नि, प्रवाह जल स्पर्श वायु, पंकरूप अस्थ्यादिधारी पृथिवी, श्रवणरूप आकाश और रोग शोक समाविष्ट, इन्द्रियगोलक रूप पञ्चस्रोत युक्त, पञ्चभूत समायुक्त-नवद्वार विशिष्ट जीव और ईश्वर रूप दो देवताओंसे युक्त, रजोविशिष्ट, अदृश्य त्रिगुण और त्रिटातुमय, संशयाभिरत और अचेतन वस्तु शरीर कहके निश्चित है। सब लोकोंमें समाश्रित सत्त्वबुद्धि दुस्तर अर्थात् व्याधिसे आक्रान्त होनेपर इस लोकमें कालचक्रसे प्रवर्त्तित हुआ करती है। यह मोह नामक अगाध भयंकर महार्णव विक्षिप्त होकर अमर लोकके सहित जगत्को प्रबोधित करता है। काम, क्रोध, भय, लोभ और अनृत, ये सब दुस्त्यज विद्यमान विषय इन्द्रियनिरोधके द्वारा परित्यक्त होते हैं। इसलोकमें जिसका त्रिगुण और पंचधातुयुक्त स्थूल शरीर योगबलसे निर्ज्जित होता है, आकाशके बीच उसे अनन्त परमपद ब्रह्मस्थान प्राप्त हुआ करता है। जिसके पञ्चेन्द्रिय महातट, मनका वेग महाजल और मोह ह्रद है, पुरुष वैसी नदीसे पार होकर काम तथा क्रोध, इन दोनोंको जय करे। फिर वह सब दोषोंसे मुक्त होकर हृदय पुण्डरीकमें मनको सन्धान कर सकनेसे देहके बीच उस परमात्माका दर्शन करेगा। सर्व्वज्ञ तथा सर्व्वदर्शी पुरुष निज शरीरमें परमात्माको पाते और एक वा अनेक रूपसे विकृत हुआ करते हैं। जैसे एक दीपकसे सैकड़ों दीपक प्रवर्त्तित होते हैं, वैसे ही योगि पुरुष संकल्प मात्र निज शरीरसे सैकड़ों शरीर उत्पन्न कर सकते हैं; वेही विष्णु मित्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, सर्व्वतोमुख, प्रभु, सर्व्वभूतोंके हृदय और परमात्मरूपसे प्रकाशित हुआ करते हैं। विप्र, सुरासुर, यक्ष, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत और महर्षिगण उनका सदा स्तव किया करते हैं।

४२ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, रजोगुणप्रधान राजन्य क्षत्रिय मनुष्योंके राजा हैं, हाथी वाहनोंके, सिंह वनवासियोंके, मेष पशुओंके, सर्प बिलवासियोंके, गोवृषभ गोसमूहके, पुरुष स्त्रियोंके, वट, अश्वत्थ, जामुन, शाल्मलि, शिंशपा, मेषशृङ्गी और कीचकवेणु वृक्षोंके; हिमवान, पारिपात्र, सह्य, त्रिकूटवान, विन्ध्य, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान, गुरुस्कन्ध, महेन्द्र और माल्यवान पर्व्वतोंके, सूर्य्य ग्रहोंके, चन्द्रमा नक्षत्रोंके,

यम पितरोंके, समुद्र नदियोंके, वरुण जलके, इन्द्र मरुद्गणोंके, अर्क उष्ण वस्तुओंके, इन्दु, ज्योतिसमूहके, अग्नि सब भूतोंके, बृहस्पति ब्राह्मणोंके, सोम औषधियोंके, विष्णु बलवानोंके, त्वष्टा रूपसमूहके, शिव पशुओंके, यज्ञ दीक्षित वा देवताओंके, उदीची दिशा समूहके, चन्द्रमा ब्राह्मणोंके; कुवेर रत्नोंके, पुरन्दर देवताओंके, प्रजापति प्रजासमूहके और ब्रह्मम" महान् मैं सब भूतोंका अधिपति हूं ; इसे ही भूताधिप सर्ग जानो। विष्णु तथा मुझसे परे अन्यभूत और कुछ भी नहीं है ; ब्रह्ममय महा विष्णु ही सब भूतोंके राजाधिराज हैं और अकृत-कर्त्ता हरिकोही मनुष्योंका ऐश्वर्य्य जानो। वह हरि, नर, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व्व, उरग, राक्षस, देव, दानव और नागोंका ईश्वर है। कामु-कोंकी अनुगत स्त्रियोंके बीच माहेश्वरी महा-देवी पार्व्वतीही वामलोचना कहके वर्णित हुई हैं। स्त्रियोंके बीच उमादेवी श्रेष्ठ हैं; सब प्रीतिसुखके बीच धनशालिता प्रीति और स्त्रियोंके बीच अप्सराओंको श्रेष्ठ जानो।

हे द्विजेन्द्रगण! धर्म्मकाम राजा और ब्राह्म-णवृन्द धर्म्मसेतु हैं; इसलिये राजा ब्राह्मणोंकी रक्षामें यत्नवान् होवे। जिन राजाओंके राज्यमें साधुगण अवसन्न होते हैं, वे राजा लोग निज गुणोंसे रहित होकर परलोकमें उन्मार्गगामी हुआ करते हैं और जिन राजाओंके राज्यमें साधु लोग सब भांतिसे रक्षित होते हैं, वेही राजा इसलोकमें अत्यन्त आनन्द अनुभव करके परलोकमें परम सुख भोग किया करते हैं। हे द्विजर्षभगण! इसलिये तुम लोग यह निश्चय जानो, कि महात्मा विद्वान् मनुष्यही विश्व संसा-रके ऐश्वर्य्यको पाते हैं। हे विप्रगण! इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे धर्म्मादिका लक्षण कहता हूं, सुनो। धर्म्मका लक्षण अहिंसा, अधर्म्मका लक्षण हिंसा, देवताओंका लक्षण प्रकाश, मनुष्योंका लक्षण कर्म्म, आकाशका लक्षण शब्द, वायुका लक्षण स्पर्श, अग्निका लक्षण रूप, जलका लक्षण रस, सर्व्वधात्री पृथिवीका लक्षण गन्ध, स्वर और व्यञ्जनसंस्का-रवती सरस्वतीका लक्षण शब्द तथा मनका लक्षण संशयात्मिका चिन्ता है। इस शरीरमें मनके जो सब विषय चिन्तित होते हैं और बुद्धि उनका निश्चय किया करती है; इस ही निमित्त बुद्धि निश्चयके द्वारा मालूम होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। मनका लक्षण ध्यान, साधुका लक्षण अव्यक्त योगका लक्षण प्रवृत्ति और ज्ञानका लक्षणसन्न्यास है, इसही निमित्त बुद्धिमान मनुष्य ज्ञानको अगाड़ी करके सन्न्यास अवलम्बन करें। सन्न्यासी पुरुष ज्ञानमुक्त होनेसे द्वन्द्वातीत होकर अज्ञानमृत्यु और जराको अतिक्रम करते हुए परम गति पाते हैं, हे द्विजेन्द्रगण! मैं तुम लोगोंसे विधिपूर्व्वक धर्म्म तथा लक्षणादिका वर्णन किया। अब भूत तथा इन्द्रियोंके ग्राहकोंका पूरी रीतिसे वर्णन करता हूं, सुनो। नासिका पृथिवीके गुण गन्धको ग्रहण करती है, घ्राणस्थित वायु उस गन्ध ग्रह-णकी अनुकूलता करती है। जिह्वा जलके गुण रसको ग्रहण करती है, जिह्वामें स्थित सोम रस ग्रहणकी अनुकूलता किया करता है। नेत्र अग्निके गुण रूपका ग्रहण करता है, नेत्रस्थित आदित्य उस रूपको ग्रहण करनेमें सहायता किया करता है। त्वचा वायुके गुण स्पर्शको ग्रहण करता है, उस त्वक्में स्थित वायु ही उस स्पर्श ज्ञानका साधक होता है। कान आका-शके गुण शब्दको ग्रहण करता है, श्रोत्रस्थित सब दिशा उस शब्दज्ञानकी अनुकूलता किया करती हैं। प्रज्ञा मनके गुण चिन्ताको ग्रहण करती है, हृदयस्थ सारभूतचेतना चिन्ता ग्रहणकी अनुकूलता किया करता है। भूत और इन्द्रियां जिस प्रकार कारणान्तरके सहारे गृहीत हुआ करते हैं, वैसेही बुद्धिस्वरूप अध्य-वसायके द्वारा और महान् स्व-स्वरूपके ज्ञानसे

ग्रहीत हुआ करता है, परन्तु स्व-स्वरूप निश्चयरूपसे लिङ्गके द्वारा बुद्धि और स्वरूप असत्‌के अखिल ज्ञानरूप लिङ्गके द्वारा महान् व्यक्तरूपसे ग्रहीत होनेपर भी यथार्थमें उसका व्यक्तरूप मालूम नहीं होता। इसही निमित्त नित्य निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ किसी प्रकार लिङ्गसे ग्रहीत न होनेसे वह अलिङ्ग वा केवल उपलब्धिस्वरूप है। क्षेत्रलिङ्गस्थ अर्थात् स्थूल वा सूक्ष्म शरीरमें अवस्थित सत्त्वादि गुणोंकी उत्पत्ति और विनाशकी हेतुभूत अव्यक्तको मैं सदा विलीनरूपसे देखता, जानता और सुनता हूं। पुरुष उस अव्यक्तके सहित क्षेत्रको जानता है, इसीसे पण्डित लोग उसे क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं, वह क्षेत्रज्ञ उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंसविशिष्ट, दृश्यमान अचेतन गुणवृत्त अर्थात् प्रकाश, प्रवृत्ति तथा मोहादि दर्शन करता है। सब गुण कूटस्थ परमात्माके द्वारा बार बार उत्पन्न होके उसे नहीं जान सकते। गुण वा गुणभूत अर्थात् भोज्यवस्तुओंसे श्रेष्ठ उस कूटस्थ आत्माको कोई नहीं पा सकता; परन्तु क्षेत्रज्ञ उसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये धर्मज्ञ मनुष्य इसलोकमें गुण और सत्त्वको परित्यागके दोषरहित वा गुणातीत होकर क्षेत्रज्ञमें प्रवेश करे। क्यों कि वह क्षेत्रज्ञ ही निर्द्वन्द्व, श्रेष्ठ नमस्कार और स्वाहाकार-विहीन अचल अनिके तथा विभु है।

४३ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजेन्द्रगण! जो जन्मादियुक्त ग्रहण उपाय-विशिष्ट तथा नामलक्षण संयुक्त है, वह सब मैं तुम लोगोंसे यथार्थरीतिसे कहता हूं सुनो।

पहले दिन, तिसके अनन्तर रात्रि, उसके बाद शुक्लादि मास, उसके अनन्तर श्रवण आदि नक्षत्र और उसके बाद शिशिर आदि ऋतु उत्पन्न होती हैं, गन्धकी आदि भूमि है, रसकी आदि जल, रूपकी आदि ज्योतिर्मय आदित्य, स्पर्श समूहकी आदि वायु और शब्दकी आदि आकाश है, ये भूतगण कहके वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे भूतादि तथा उत्तम कहता हूं, सुनो। ज्योतिकी आदि आदित्य, जरायुजादि भूतगणोंकी आदि जठराग्नि, सर्व्वविद्याकी आदि सावित्री, देवताओंकी आदि प्रजापति वेदोंकी आदि ओंकार, वाक्यकी आदि प्राण इसलोकमें जो ब्राह्मणादि वर्णोंको उपासनाके निमित्त नियत है, वही सावित्री कहके वर्णित हुई है। सब छन्दोंकी आदि गायत्री; पशुओंकी आदि अज, चतुष्पद जन्तुओंको गऊ, मनुष्योंकी आदि द्विजातिगण, पक्षियोंकी आदि बाज, यज्ञोंकी आदि हुत, सब सरीसृपोंकी आदि रूप, युगोंकी आदि सत्य; रत्नोंकी आदि हिरण्य, ओषधियोंकी आदि यव है समस्त भक्ष्य तथा भोज्य वस्तुओंके बीच अन्न उत्तम कहके गिना गया है। सब पीनेवाली वस्तुओंके बीच जल उत्तम है; सब स्थावर भूतोंके बीच ब्राह्मण शरीरके सदृश सदा पवित्र प्लक्ष अश्वत्थ ही प्रथम गिना गया है। मैं सब प्रजापतियोंके बीच अग्रज हूं; स्वयम्भू अचिन्त्यात्मा विष्णु मेरे अग्रज हैं; पर्व्वतोंका अग्रज महामेरु, सब दिशाओंसे पहली पूर्व्व दिशा है; नदियोंके बीच त्रिपथगामिनी गङ्गा बड़ी हैं, तालाबों तथा उपादानोंका अग्रज समुद्र है। देव, दानव, भूत, पिशाच, उरग, राक्षस, नर, किन्नर और यक्षोंका प्रभु ईश्वर है; ब्रह्ममय महाविष्णु, संसारकी आदि है, क्यों कि तीनों लोकके बीच उससे श्रेष्ठ भूत और कुछ भी विद्यमान नहीं है। आश्रमोंके बीच निःसन्देह गार्हस्थ्याश्रमही उत्तम है अव्यक्त सब लोकोंकी आदि और अन्त है, दिन समस्त अस्तमयन्त, रात्रि उदयान्त, सुखका अन्त दुःख, दुःखका अन्त सुख है; सब वस्तु क्षयान्त हैं; उन्नतिके अन्तमें अवनति, संयोगके अन्तमें वियोग, जीव-

नके अन्तमें मरण, सबकृत वस्तुओंका विनाशान्त और उत्पन्न हुई वस्तु अन्तमें नाशवान् हैं; क्यों कि इस लोकमें स्थावर जङ्गम प्रभृति सब वस्तु अनित्य हैं। इष्ट दत्त, तपस्या, अध्ययन व्रत और नियम, ये सभी विनाशी हैं; परन्तु ज्ञान अनन्त है, उसका अन्त नहीं है; इस ही लिये जितेन्द्रिय प्रशान्तचित्त निर्म्मम निरहङ्कारी मनुष्य केवल ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं।

४४ अध्याय समाप्त ।

ब्रह्मा बोले, हे दिजगण! जिसकी बुद्धि सारस्वरूप, मन स्तम्भस्वरूप, इन्द्रिय ग्रामबन्धन रज्जुरूपी और जो पञ्चभूत समूहात्मक है, निवेश जिसकी नेमिस्वरूप है, जो जरा वा शोकसे समाविष्ट है, व्याधि और व्यसनकी उत्पत्ति स्थानभुत, देश और कालके सहित विचरणकारी, व्यायामजनित श्रम जिसका शब्द अहोरात्र जिसके परिचालक, सर्द्दी और गर्म्मी जिसके परिमण्डल, सुख और दुःख जिसकी सीमा, क्लेश जिसका संश्लेष, भूख और प्यास जिसके अन्तःप्रविष्ट अर, छाया और धूप जिसके उत्खात हैं; जो निमेष तथा उन्मेषसे आकुल, भयङ्कर मोहरूपी जलसे आकीर्ण सदा गमनशील अचेतन जड़स्वरूप, मासदि समयके द्वारा परिमित अनेकरूप, ऊर्द्ध मध्य और अधोलोकमें विचरनेवाला, तमोगुणके द्वारा ज्ञान यथाकर्म्मके निरोधरूप मलिनतासे युक्त, रजोगुणके द्वारा विहित तथा निषिद्ध कर्म्मोंमें प्रवृत्त महाअहङ्कारसे प्रदीप्त, सत्त्वादि गुणोंमें अवस्थित, शोक और दुःखसे जीवित, क्रिया कारण युक्त, राग जिसका आयत, लोभ तृष्णा जिसके अध और ऊर्द्ध हैं, जो मायासे उत्पन्न, भय और मोहसे परिवृत, भूतोंका सम्मोहकारक, बाह्य सुख, आनन्द और प्रीतिके सहित विचरणशील, काम और क्रोध जिसका मूल, महदादि विशेष जिसका अन्त है, वह अनिरुद्ध भावसे संचरणशील संसारकारण अव्ययस्वरूप, मनकी भांति वेगशाली और अत्यन्त मनोहर कालचक्र प्रवर्त्तित होता है। मान अपमान द्वन्द्वयुक्त यह अचेतन कालचक्र सुरपुरके सहित जगत्‌को उत्पन्न, संहार और प्रबोधित किया करता है। जो मनुष्य इस कालचक्रकी प्रवृत्ति और निवृत्तिको विशेषरूपसे जाना है, वह प्राणियोंके बीच मुग्ध नहीं होता। बल्कि वह सब द्वन्द्वोंसे रहित, सर्व्वसंस्कार और सब पापोंसे मुक्त होकर परमगति पाता है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ और भिक्षुक, ये चारों आश्रम गार्हस्थ्यामूलक कहके वर्णित हुए हैं। इस लोकमें जो कई विधि निषेधक शास्त्र प्रकीर्त्तित हुए हैं, उनका अनुगमन करना कल्याणकारी है; इस कीर्त्तिको ही सनातनी जानो। गुणविशिष्ट जातिमें उत्पन्न तत्त्ववित् मनुष्य पहले स्वजायुक्त संस्कारके द्वारा संस्कृत होकर व्रतोंका पूरी रीतिसे अनुष्ठान करके गुरुकुलसे प्रत्यागमन करें। अनन्तर इस लोकमें सदा निज स्त्रीमें रत रहके शिष्टाचारयुक्त जितेन्द्रिय तथा श्रद्धावान् होकर पञ्चमहायज्ञोंके द्वारा अर्चना करें। देवताओं और अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नभोजन करें, देवकर्म्ममें रत रहें और शक्तिके अनुसार सुखपूर्व्वक यज्ञ तथा दानकर्म्ममें नियुक्त होवें। मननशील मनुष्य हाथ, पांव, नेत्र, तथा अङ्गको परिचालित न करें येही शिष्ट पुरुषोंके लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त सदा यज्ञोपवीत तथा सफेदवस्त्र पहरे, पवित्र व्रतका अनुष्ठान करे और यम तथा दानमें रत होकर सदा शिष्ट पुरुषोंके सहित संवास करे। मैत्र मनुष्य शिष्टाचार युक्त होकर उदर तथा शिश्नको संयत करते हुए जलयुक्त कमण्डलु तथा बांसकी लाठी धारण करें। अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छः प्रकारके गुणोंकी वृत्तिका आचरण करें।

हे द्विजगण! याजन, अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह, इन तीनों कर्म्मोंको ब्राह्मणोंकी जीविका जानो। धर्म्मज्ञ, दान्त, मैत्र, क्षमायुक्त, सर्व्वभूतोंमें समदर्शी और मननशील मनुष्य अवशिष्ट दान, अध्ययन और यज्ञ, इन तीनों धर्म्मयुक्त कर्म्ममें प्रमाद न करे। पवित्रचित्तवाला संशितव्रती गृहस्थ विप्र शक्तिके अनुसार इन सब कार्य्योंको नियमपूर्व्वक पूर्ण करते हुए उसमें नियुक्त रहनेसे स्वर्गजय करनेमें समर्थ होता है।

४५ अध्याय समाप्त।

———

ब्रह्मा बोले, ब्रह्मचर्य्यवान् पुरुष पहले कहे हुए इस ही मार्गके अनुसार अध्ययन करे। स्वधर्म्ममें रत, जितेन्द्रिय, गुरुप्रिय, तथा हितकारी, सत्यधर्म्म परायण, पवित्रचित्त, हविष्य, और भैक्ष्यभुक, स्थानासन विहारवान् विद्वान्, मननशील मनुष्य गुरुकी द्वारा पूरी रीतिसे अनुज्ञात होकर निन्दा न करके अन्न भोजन करे। पवित्र तथा समाहित होकर बेल वा पलासका दण्ड धारण करके दीनों समय अग्निमें आहुति डाले। गेरुआ तथा लालरङ्गके चौम वा सूती वस्त्र अथवा मृगछाल पहरे। मूञ्जकी करधनी और जटा धारण करें, सदा जलयुक्त, यज्ञोपवीती, स्वाध्यायी, अलुब्ध तथा नियतव्रती होकर पवित्र जलके द्वारा सदा देवताओंका तर्पण करे; क्योंकि ब्रह्मचारी संयत होकर विशुद्धभावसे इस प्रकार आचरण करनेसे प्रशंसित हुआ करता है। ऊर्द्ध्वरेता ब्रह्मचारी समाहित होकर इसही भांति युक्त होनेसे स्वर्गजय करनेमें समर्थ होता है और परमपद अवलम्बन करते हुए जातिके बीच संहारी नहीं होता। ब्रह्मचर्य्य विशिष्ट मननशील मनुष्य सब संस्कारोंसे संस्कृत तथा निज गृामसे बाहिर होकर प्रव्रज्या अवलम्बन करते हुए वनके बीच वास करे। चर्म्म और वल्कल वस्त्रधारी होकर सन्ध्या तथा सवेरे जलस्पर्श करे और सदा वनवासी होकर फिर गृाममें प्रवेश करनेसे निवृत्त होवे, फल, पत्र, चद्रमूल और सावांके द्वारा जीविका निर्व्वाह करते हुए यथा समयमें उपस्थित अतिथियोंको पूजा करके उन्हें आश्रय प्रदान करे। दीक्षाके अनुसार अतन्द्रित होकर उपस्थित जल, वायु और वनके फलमूलादिको क्रमसे भोजन करे। वनवासी मुनि सदा अतन्द्रित होकर फलमूलकी भिक्षाके सहारे समागत अतिथियोंकी अर्चना करे और भिक्षाके द्वारा जो वित्त प्राप्त होवे, उसमेंसे कुछ अंश भिक्षा प्रदान करना चाहिये। सदा वाग्यत होकर देवताओंका आश्रय तथा आशिर्व्वाद पाके देवता तथा अतिथि पूजाके अनन्तर प्रकृष्टरूपसे भोजन करे। वाणप्रस्थ मनुष्य मैत्र, क्षमायुक्त, सत्यधर्म्म, परायण, स्वाध्यायशील केशश्मश्रुधारी, होमकारी, पवित्र, देहधारी, दक्ष, वननिरत, समाहित चित्त और जितेन्द्रिय ऐसे गुणोंसे युक्त होनेसे स्वर्गको जय किया करते हैं। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ पुरुषोंके बीच जो लोग मोक्षमार्ग अवलम्बन करनेकी इच्छा करें, वे उत्तम वृत्ति अवलम्बन करें। सब भूतोंके सुखदायक, मैत्र सब इन्द्रियोंको दमन करनेवाले मननशील मनुष्य सब भूतोंको अभय प्रदान करके नैष्कर्म्माचरण करें। भिक्षुक मनुष्य अग्निहोत्रीय अग्नि प्रज्वलित करके होमकार्य्यको पूरा करके धूमरहित तथा जनपदोंके भोजनकार्य्य सिद्ध होनेपर अयाचित असक्लृप्त तथा अटक्षा प्राप्त भोज्य वस्तु भिक्षारूपसे ग्रहण करें। मोक्षवित् मनुष्य शराबसम्पात सम्पन्न होनेपर भिक्षा प्राप्तिके लिये इच्छा करे और लाभसे हृष्ट तथा अलाभसे असन्तुष्ट न होवें। जीवनयात्रा निभानेकी इच्छा करनेवाले भिक्षुक समाहित होकर समयकी अपेक्षा करते हुए भिक्षामांगनेमें प्रवृत्त होवें, परन्तु साधारण लाभ ग्रहण करनेकी इच्छा न

करें और किसी पुरुषके द्वारा समादृत होकर भोजन न करें; क्योंकि भिक्षुक समादरके सहित भिक्षा पानेसे निन्दाभाजन हुआ करते हैं। भिक्षुक तीता, कडुआ और कसैला खाद्य भोजन करे, मधुर रसयुक्त भोज्य वस्तुओंका स्वाद न लेकर केवल प्राणधारणाके निमित्त भोजन करे। मोक्षवित् पुरुष प्राणियोंको रुद्ध न करके वृत्तिलाभकी इच्छा करे और भिक्षामें प्रवृत्त होकर दूसरेके अन्नकी कदापि अभिलाष न करे, भिक्षुक किसी प्रकार धर्म्म नष्ट न करे, रजोगुणसे रहित होकर मुक्तिमार्गमें विचरे, आश्रमके निमित्त सूना स्थान, अरण्य, वृक्षमूल, नदी और पर्व्वतकी गुफा अवलम्बन करे। ग्रीष्म-कालमें ग्राममें एक रात्रि वास करे, वर्षाकाल उपस्थित होनेपर एकत्रवास करे; सूर्य्यके उदित होनेसे मार्ग प्रकाशित होनेपर कीटकी भांति पृथ्वीपर विचरण करे। प्राणियोंके विष-यमें दया प्रकाशित करके तथा समस्त पर्य्यवे-क्षण करते हुए पृथ्वीपर पर्य्यटन करे, किसी वस्तुको सञ्चय न करे और स्नेहवाससे रहित होवे। मोक्षवित् पुरुष सदा पवित्र जलसे कार्य्य करे और सदा उद्धृत जलसे आचमन करे। पुरुष इन्द्रियनिग्रह पूर्व्वक अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, दम और अपिशु-नता, इन आठ प्रकारके व्रतोंमें नियुक्त रहके सदा पाप, शठता और कुटिलता रहित व्रता-चरण करे। ग्राममें आके निष्पृह होकर भोज्य वस्तु मांगे और केवल प्राणयात्रा निभानेकेलिये भोजन करे। धर्म्मसे प्राप्त हुई वस्तु भोग करे, कदापि कामके अनुवर्त्ती न होवे और ग्रासा-च्छादनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको कदापि ग्रहण न करे तथा दूसरोंके निकट प्रतिग्रह वा दूसरेको दान न करे, प्राणिगण दीनतासे सबका विभाग करके जो दान करें, पण्डित पुरुष आयाचित होकर उस परस्वकी ग्रहण न करे, कार्य्यवान् मनुष्य किसी विषयको एक बार भोग करके फिर उसमें स्पृहा न करे; उपस्थित मृत्तिका, जल, अन्न, पत्र पुष्प और फल, यह सब अनावृत रहनेपर ग्रहण करे, आवृत होने पर ग्रहण न करे। शिल्पवृत्तिके द्वारा जीविका निर्व्वाह न करे, सुवर्णकी कामना न करे, किसीका उपदेष्टा वा द्वेष्टा न होवे; केवल अल ङ्कारादिसे रहित होकर निवास करे। आया-चित वृत्ति अवलम्बन करके सब विषयोंमें अना-सक्त होकर श्रद्धापूत वस्तुओंको भोजन करे, समस्त निमित्त वर्ज्जित होवे और प्राणियोंके अज्ञात रूपसे निवास करे। आशिर्व्वादयुक्त तथा हिंसायुक्त कर्म्म तथा लोकसंग्रह न करे, न दूसरेके द्वारा करावे। सब भावोंको अतिक्रम करके दण्ड कमण्डल प्रभृति भिक्षुकोंकी उपा-सना सामग्रियोंको अल्प परिमाणसे ग्रहण करके परिभ्रमण करे और समस्त चराचर प्राणियोंके विषयमें समदर्शी होवे।

जो लोग दूसरोंको उद्वेगयुक्त नहीं करते और स्वयं किसीके निकट उद्विग्न न होकर सबके विश्वासपात्र होते हैं, वेही उत्तम मोक्ष-वित् कहके वर्णित हुआ करते हैं। वैसे मोक्षवित् मनुष्य कालाकांक्षी और समाहित होकर अना-गत तथा अतीत विषयोंका अनुध्यान न करें और वर्त्तमान विषयमें उपेक्षा करें। नेत्र, मन और वचनके द्वारा किसी प्रकार दोष न करें और प्रत्यक्ष वा परोक्ष किसी दुष्ट विषयका आचरण न करें। सर्व्वतत्त्वज्ञ भिक्षुक मनुष्य अङ्गसङ्कोच करनेवाले कूर्म्मकी भांति इन्द्रियोंको संकुचित करते हुए इन्द्रिय, मन तथा बुद्धिको क्षीण करके निरीह निर्द्वन्द्व, निर्न्नमस्कार, निःस्वाहाकार, निर्म्मम, निरहङ्कार, निर्व्विकार, निर्योगक्षेम, निराशी, निर्गुण निरासक्त, निरा-श्रय, आत्मवान्, शान्त, आत्मसङ्गी तथा तत्त्वज्ञ होनेसे निश्चय मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग हाथ, पांव, पीठ, सिर उदरसे शून्य तथा कर्म्म-विहीन, निर्म्मल, अद्वितीय, अविनाशी, गन्ध रस

स्पर्श रूप और शब्द रहित अनुगम्य, अनासक्त, अमांस, निश्चिन्त, अव्यय, दिव्य गृहस्थ तथा सर्व्वभूतस्थ उस आत्माका दर्शन करते हैं। वे मृत नहीं होते उस आत्मामें बुद्धि, इन्द्रिय, देवता, वेद, यज्ञ, तपस्या, व्रत तथा सब लोक गमन नहीं कर सकते। ज्ञानियोंको दण्ड कमण्डल प्रभृति चिन्ह धारण करना अनुचित होनेसे अलिङ्ग धर्मज्ञ मनुष्य धर्मतत्त्वाचरण करे। गृहधर्म्माश्रित विद्वान् मनुष्य विज्ञान चरित विषय आचरण करे और अमूढ़ होकर मूढ़रूपसे दूषित न करके धर्म्माचरण करे। फिर मानो भिक्षुक सदा धर्मकी निन्दा करने वाली वृत्तिको अवलम्बन करके भी साधुओंके धर्मकी निन्दा न करके धर्म्माचरण करे। जो लोग ऐसी वृत्तिसे युक्त होते हैं, वेही उत्तम मुनि कहके वर्णित हुआ करते हैं। वे मुनि इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, पञ्च महाभूत, मन, बुद्धि, अहङ्कार अव्यक्त और पुरुष, इन सबको प्रकृष्टरूपसे संख्या करके सब तत्त्वोंका यथावत् निश्चय करें। तत्त्ववित् पुरुष इन सब तत्त्वोंकी परिसंख्या करनेसे सब बन्धनोंसे मुक्त होकर स्वर्ग लाभ करते हैं। अनन्तर निर्जन स्थान अवलम्बन करके ध्यान करनेसे आकाशगामी वायुकी भांति निराश्रय तथा सर्व्वसङ्गसे निर्म्मुक्त होकर मुक्त होते और क्षीणकोष तथा निरातङ्क होकर परब्रह्मकी प्राप्त हुआ करते हैं।

४६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, निश्चितवादी वृद्ध लोग सन्न्यासको तपस्या कहा करते हैं और ब्रह्मयोनिस्थ ब्राह्मणगण ज्ञानको परब्रह्म बोध करते हैं। रजोगुणसे रहित, निर्म्मलचित्त पवित्र स्वभाववाले धीरगण ज्ञान तथा तपस्यासे अत्यन्त दुरात्मक वेदविद्याके सहारे निर्द्वन्द्व, निर्गुण नित्य अचिन्त्य गुणवाले उस अनुत्तम परब्रह्मका दर्शन किया करते हैं। सन्न्यासमें रत ब्रह्मवित् पुरुष तपस्याके सहारे परमेश्वरके मङ्गलमय पथमें गमन किया करते हैं। पण्डित लोग तपस्याको प्रदीप और आचारको धर्मसाधक कहा करते हैं; परन्तु सन्न्यासको उत्तमतपस्या और ज्ञानको सबसे उत्कृष्ट जानना चाहिये। जो पुरुष सब तत्त्वोंका निश्चय करते हुए बाधारहित ज्ञानस्वरूप सर्व्वभूतस्थ परमात्माको जान सकता है, वह सर्व्वगामी हुआ करता है। जो विद्वान् मनुष्य आत्माका सहवास, निवास, एकत्व और अनेकत्व अवलोकन करता है, वह दुःखोंसे मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है। जो मनुष्य इस लोकमें विद्यमान रहके किसी विषयकी कामना अथवा किसीकी अवज्ञा नहीं करता, वह ब्रह्मत्व लाभ करता है। जो मनुष्य विधि, गुण, तत्त्व तथा सर्व्वभूतोंके प्रधानको जानके अहङ्कार वा ममताविहीन होता है, वह निश्चय ही मुक्त हुआ करता है। निर्द्वन्द्व, निर्नमस्कार, निःस्वधाकार पुरुष शमगुणके द्वारा सब विषयों तथा सत्य मिथ्या, इन दोनोंको परित्याग करनेसे अवश्य ही मुक्ति लाभ कर सकता है। अव्यक्त जिसका मूल, बुद्धि महास्कन्ध, अहङ्कार वृक्ष, इन्द्रियें जिसके अङ्कुर वा कोटर हैं, महाभूत जिसका विस्तार विशेष, यतिवृन्द जिसकी शाखा हैं, सदा पत्र पुष्प और शुभाशुभरूपी फलोदययुक्त वह सनातन ब्रह्मवृक्ष सब भूतोंका आजीव्य है। ज्ञानवान मनुष्य तत्त्वज्ञानरूपी तलवारके द्वारा ऐसे ब्रह्मवृक्षको छेदन तथा भेदकर जन्म मृत्यु जरा तथा उदययुक्त सङ्गमय पाशोंको छेदन करते हुए निर्म्मम और निरहङ्कारी होकर निश्चय ही मुक्त हुआ करते हैं। जीव और ईश्वर, ये दोनों पक्षी नित्य, सखा वा अचेतन हैं, इससे जो पृथक् है, वह चेतनावान् कहके वर्णित होता है। अचेतनकी भांति अहंबुद्धिगम्य जो जीव प्राणिसंख्यासे विमुक्त होकर बुद्धिके अतीत वस्तुको चेतनायुक्त करता है, वह क्षेत्रज्ञ नामक अन्त-

रात्मा ही समस्त बुद्धिका साची है; वह गुणोंसे युक्त होनेपर सब दोषोंसे दूषित होता और गुणातिग होनेपर सब पापोंसे मुक्त हुआ करता है।

४७ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, कितने ही मनुष्य वृक्ष और बनरूपी जगत्‌को ब्रह्ममय कहके निर्द्दिश करते हैं, कोई ब्रह्मको अव्यक्त निर्व्विकार परमात्मा कहते हैं और कोई कोई प्रकृतिको इस समस्त जगत्‌की उत्पत्ति और लयका कारण कहा करते हैं। जो पुरुष मृत्युकालमें निश्वास पतनकाल मात्र समदर्शी होते, वह हृदयके बीच परमात्माका दर्शन करके मुक्ति लाभ किया करते हैं। यदि केवल निमिष कालमात्र देहके बीच आत्माको संयत कर सके, तो उसी परमात्माको कृपासे पण्डितोंकी अक्षय परम गति प्राप्त हुआ करती है। यदि कोई दश वा बारह बार प्राणायाम करते हुए प्राणको बार बार संयत करनेमें समर्थ हो, तो वह चोबीस तत्त्वों तथा अव्यक्तातीत पञ्चविंश पुरुषको प्राप्त हुआ करता है; इस ही प्रकार पुरुष प्रथम प्रसन्न होकर जो कुछ अभिलाष करे, उसे ही प्राप्त कर सकेगा; परन्तु जब अव्यक्त लाभके अनन्तर पुरुषमें सत्त्वगुण उदित होगा, तब वह अमृतत्त्व लाभ करेगा।

हे द्विजसत्तमगण! मोक्षवित् पण्डित लोग सत्त्वके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी अत्यन्त उत्कृष्ट कहके प्रशंसा नहीं करते; मैं भी अनुमानसे पुरुषको सत्त्वगुणका अवलम्ब जानता हूं, क्यों कि जो पुरुष सतोगुणावलम्बी न होता, जो उसे कोई न जान सकता। क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, ज्ञान, त्याग और सन्न्यास, इन सबको सात्त्विकवृत्ति जानो; इन वृत्तियोंके विशेष रीतिसे बिदित होनेपर पुरुषको जाना जा सकता है। मनीषिगण इस ही प्रकार अनुमानके द्वारा सत्त्व तथा पुरुषमें अभेद बोध करते हैं, उसमें और विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञानसिद्ध कोई कोई पण्डित ऐसा कहा करते हैं, कि सत्त्व और क्षेत्रज्ञ पुरुषका ऐक्य युक्तिसिद्ध नहीं हो सकता। पुरुषसे जो सत्त्व पृथक् है, इसमें विचार नहीं करना पड़ता, बरन समुद्रकी तरङ्गसमान सत्त्व और पुरुषका पृथक् भाव स्वभाविक जानो। इस विषयमें पण्डित लोग ऐसी युक्ति दिया करते हैं, कि जैसे मशक और उडुम्बरका ऐक्य तथा पार्थक्य दीखता है, वैसे ही सत्त्व तथा पुरुषका एकत्व और अनेकत्व जानना चाहिये। और जिस प्रकार मछली तथा जलका पार्थक्य है, तथा जैसे पद्मपत्र और जलकी बूंदका सम्बन्ध है, सत्त्व और पुरुषका वैसा ही पार्थक्य तथा सम्बन्ध जानो।

गुरु बोला, जब लोक पितामह ब्रह्माने उन मुनिसत्तम विप्रोंसे ऐसा कहा, तब वे लोग फिर संशययुक्त होकर उनसे पूछने लगे।

४८ अध्याय समाप्त।

ऋषिगण बोले, हे ब्रह्मन्! सब धर्म्मोंके बीच कौन धर्म्म एकान्त अनुष्ठेय है? क्यों कि हम लोग धर्म्मको विविधगतिको व्याहतरूपसे देखते हैं। कोई कोई नास्तिक कहते हैं, कि देहनाश होनेपर भी आत्मा निवास करता है; लोकायत गण देहान्त होनेपर उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते; कोई कोई उस विषयमें संशय और कोई निश्चय किया करते हैं। मीमांसक लोग आत्माको नित्य, तार्किक लोग अनित्य शून्यवादीगण अस्ति सौगत लोग नास्ति कहा करते; योगाचारी लोग एकरूप और द्विरूप, उडुलोमा अनेक रूप अर्थात् भिन्न वा अभिन्न कहा करते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग एकमात्र ब्रह्मको बिद्यमान समझते हैं; सगुण ब्रह्मोपासक मनुष्यगण ब्रह्मको

पृथक् पृथक् ज्ञान करते हैं, परमाणुवादी लोग ब्रह्मका अनेकत्व स्वीकार किया करते हैं और ज्योतिर्व्विद लोग देशकाल दोनोंको ब्रह्म कहते हैं, वह लोग स्वप्नराज्यका मिथ्या चिहिह्नाश-स्वरूप कहा करते हैं।

कितने ही लोग जटाजिनधारी होकर ब्रह्मको उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं, कोई कोई मुण्डित तथा असंवृत होते हैं, कोई स्नान करके और कोई बिना स्नानके ही उपासनामें प्रवृत्त हुआ करते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग पवित्र आचारको उपासना किया करते हैं। कोई कोई भोजन करके उपासनामें प्रवृत्त होते और कोई निराहारी रहके ही उपासना किया करते हैं। कोई कोई धर्म्मकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे मनुष्य शान्तिकी प्रशंसा किया करते हैं। कोई देश तथा काल, कोई मोक्ष, कोई पृथग्विध भोगोंको प्रशंसा करते हैं, कोई उपास्यके साधन धनको इच्छा करते, दूसरे लोग निधनत्वकी अभिलाष करते हैं और कोई पुरुष कुछ भी इच्छा नहीं करते। कोई कोई अहिंसामें रत, कोई हिंसापरायण होते हैं; कोई पुण्य और यशके निमित्त यत्न करते हैं, कोई यश और पुण्य कुछ भी स्वीकार नहीं करते। कोई कोई सद्भावमें रत, कोई संशयमें स्थित होते हैं; कोई सुखके निमित्त और कोई दुःखके निमित्त ध्यान किया करते हैं। कोई कोई विप्र यज्ञ, कोई दान, कोई तपस्या और कोई स्वाध्यायको प्रशंसा किया करते हैं। कोई ज्ञान, कोई सन्न्यास और वस्तु तत्त्व-विचारक कोई कोई पण्डित स्वभावकी प्रशंसा करते हैं, कोई सबको कोई कोई एक विषयोंकी प्रशंसा किया करते हैं।

हे सुरसत्तम! इस ही प्रकार धर्म्म व्युत्थापित और अनेक प्रकारसे प्रबोधित होनेपर हम लोग अज्ञानपूर्व्वक उसका निश्चय नहीं कर सकते हैं। लोगोंके बीच कोई यह कल्याणकारी है, कोई यही श्रेय है, ऐसा ही बोध करके जिसको जिस धर्म्ममें प्रवृत्ति होती है वह सदा उसको ही पूजा किया करता है। इसहीसे हम लोगोंकी बुद्धि विचलित तथा मन अनेक विषयोंमें दौड़ता है। हे सत्तम! इसलिये कल्याण क्या है? उसे आप हमलोगोंसे कहिये हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं। इसके अनन्तर जो गुह्य है, उसे और सत्त्व तथा क्षेत्रज्ञका किस कारणसे सम्बन्ध होता है, वह आपको कहना होगा। धर्म्मात्मा बुद्धिमान् लोकभावन ब्रह्मा ब्राह्मणोंका ऐसा वचन सुनके उन लोगोंसे यथार्थ रीतिसे कहने लगे।

४८ अध्याय समाप्त।

———

ब्रह्मा बोले, हे सत्तमगण! तुम लोगोंने मुझसे जो विषय पूछा है; गुरु उपयुक्त शिष्यके समीप जिस विषयको कहा करता है; वही विषय मैं तुम लोगोंसे कहता हूं, सावधान होके सुनो। तुम लोग मेरे समीप उन विषयोंको सुनकर पूरी रीतिसे निश्चय करो। अहिंसा ही सब प्राणियोंके विषयमें श्रेष्ठ कर्म्म है, यह साधुसम्मत तथा धर्म्मका वरिष्ट लक्षण है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। निश्चितदर्शी बृद्धगण ज्ञानको मोक्ष कहते हैं, इसही निमित्त प्राणिवृन्द केवल ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे मुक्त होसकते हैं और जो लोग हिंसापरायण, नास्तिक धर्म्मावलम्बी तथा लोग लोभ, मोहके वशवर्त्ती हैं; वे नरकगामी हुआ करते हैं। परन्तु जो सब मनुष्य अतन्द्रित होकर आशीर्युक्त समस्त कर्म्म करते हैं, वे इस लोकमें बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए प्रमुदित हुआ करते हैं। जो सब विपश्चितगण श्रद्धापूर्व्वक धर्म्म कर्म्म करते हैं, वे साधुदर्शी पुरुष आशियोंग संयुक्त नहीं होते। हे सत्तमगण! सत्त्व और क्षेत्रज्ञका जिस प्रकार संयोग तथा वियोग होता है, इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे वह

विषय कहता हूं तुम लोग सावधान होकर सुनो। इस स्थलमें विषय और विषयीभाव सम्बन्ध कहा गया है, उसके बीच सत्वको विषय और पुरुषको विषयी जानो। जैसे पहले मशक तथा उडुम्बरका भोज्य भोक्तृभाव सम्बन्ध कहा गया है, वैसे ही इस स्थलमें भी सत्व और पुरुषका भोग्यभोक्तृभाव सम्बन्ध वर्णित होता है। अचेतन सत्वभोक्ता पुरुषके द्वारा भुज्यमान होकर अपनेको नहीं जान सकता; परन्तु भोक्ता पुरुष मशककी भांति भुज्यमान सत्त्व तथा अपनेको जान सकता है। मनीषिगण सत्त्वको सर्व्वदा सुख दुःखादि द्वन्द्व समायुक्त कहते हैं और पुरुषको नित्य, निर्द्वन्द्व, निष्फल, निर्गुणात्मक चैतन्य कहा करते हैं। सर्व्वत्र विद्यमान असङ्ग अधिष्ठानभूत वह परम पुरुष अधःस्तभूत सलके समसंसत्वको प्राप्त होकर सलिल उपभोगी कमलके पत्रकी भांति वह सदा सत्त्वको उपभोग किया करता है। विद्वान् पुरुष सब भांतिसे गुणके द्वारा व्यतिषक्त होनेपर भी पद्मिनीपत्र संस्थित चञ्चल जलबिन्दुकी भांति उसमें लिप्त नहीं होते; इसलिये पुरुषके असङ्ग होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है। ऐसा निश्चय है, कि सत्त्व पुरुषका द्रव्यमात्र है, सत्त्व और पुरुष, दोनों मिलकर द्रव्यमात्र हुआ करते हैं, कर्त्ता और द्रव्यका जैसा सम्बन्ध है, सत्त्व तथा पुरुषका वैसाही सम्बन्ध जानो। जैसे कोई पुरुष दीपक लेकर अन्धकारके बीच गमन करता है, वैसेही परमपदके अभिलाषी मनुष्य सत्त्वरूपी प्रदीपके द्वारा प्रकाश करते हुए गमन किया करते हैं। जबतक तेल और बत्ती विद्यमान रहती है तबतक दीपक जलता है, परन्तु तेल और बत्तीके क्षीण होनेपर ज्योति अन्तर्हित होजाती है। जैसे प्रदीप तेल और बत्तीसे युक्त होकर गृह, आकाश तथा अपनेको प्रकाशित करता है और तेल तथा बत्तीके क्षीण होनेपर स्वयं अन्तर्हित होता है, वैसे सत्त्वगुण कर्म्मके द्वारा चरम-वृत्तिरूपसे अभिव्यक्त होकर पुरुष तथा अपनेको पृथक्‌रूपसे प्रकाशित करता है और कर्म्म शेष होनेपर स्वयं अन्तर्हित हुआ करता है; परन्तु पुरुष अव्यक्त भावसे निवास करता है। हे विप्रगण! यह विषय तुम लोगोंसे विशेष रीतिसे कहता हूं औरभी तुम लोगोंसे अन्यप्रकार कहता हूं, सुनो। दुर्मेधा मनुष्य सहस्रवार उपदिष्ट होनेपर भी नहीं समझ सकता, परन्तु बुद्धिमान मनुष्य चौथीवार उपदिष्ट होनेसेही उस विषयको हृदयङ्गम करके सुख अनुभव किया करता है। इसही प्रकार उपायके द्वारा धर्म्मका साधन विशेष रीतिसे मालूम करे, क्योंकि उपायज्ञ मेधावी मनुष्य ही अत्यन्त सुख भोग किया करता है। जैसे पाथेय विहीन प्रसन्नचित्त मनुष्य महत्कष्टसे मार्गमें गमन करता है और बीचमें विनष्ट भी होता है उसही प्रकार जानना चाहिये, कि ज्ञानके साधनभूत कर्म्मसे फल उत्पन्न होते तथा विनष्ट होते हैं। परन्तु पुरुषका चित्त स्थित कल्याण विषयमें शुभाशुभ दृष्टान्त है, अर्थात् पुरुषका बहुतसा पुण्य सञ्चय होनेपर सम्पूर्ण योग लाभ होता है और अल्प पुण्य सञ्चय होनेसे मृत्यु-लाभ हुआ करता है। तत्त्व दर्शनसे हीन मनुष्य अदृष्टके अनुसार पैरके सहारे जिस दीर्घ-पथमें गमन करता है, तत्त्वदर्शी पुरुष शीघ्रगामी रथके द्वारा उस पथमें गमन किया करते हैं; इसलिये बुद्धिमानोंकी ऐसीही गति जाननी चाहिये। पुरुष पर्व्वतके ऊपर चढ़के भूतकालको न देखे अर्थात् परमपद प्राप्त होनेपर शास्त्र तथा उसके विहित कर्म्मको परित्याग करे। विद्वान मनुष्य कर्म्मसे क्लेशित आत्माको अवलोकन करते हुए जबतक कर्म्म नष्ट न हो, तबतक कर्म्म मार्गमें ही गमन करे; परन्तु कर्म्म नष्ट होनेपर उस कर्म्म मार्गको परित्याग करके ज्ञानपथमें गमन करे। तत्वयोग विधानवित् गुणज्ञ मेधावी मनुष्य इस ही प्रकार सन्न्यासाश्र-

मसे धीरे धीरे उत्तरोत्तर अर्थात् हंस परमहंस आश्रमको पूर्ण रीतिसे मालूम करके गमन करे। नौकारहित पुरुष मोहके वशमें होकर महाघोर समुद्र पार होनेके निमित्त बाहुसे तैरते हुए थककर निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होता है; परन्तु विभागवित प्राज्ञ पुरुष आरवयुक्त नौकाके सहारे जलमें गमन करते हुए अश्रान्ता-भावसे शीघ्रही ह्रदसे पार हुआ करता है। मैंने जिस प्रकार पहले रथी और पदादिका वृत्तान्त कहा है, वैसे ही ममतारहित मनुष्य ह्रदसे पार होकर नौका परित्यागके किनारे गमन करे। जैसे नाववाला कैवर्त्त स्नेहके वशमें मूढ़ होकर नौकामें ही परिभ्रमण करता है, वैसे ही पुरुष ध्यानयोग प्राप्त न कर सकनेसे ममतासे मूढ़ होकर उस गुरुके निकटमें ही परिभ्रमण किया करता है। जैसे पुरुष नौकामें चढ़के स्थलके बीच भ्रमण नहीं कर सकता; वैसे ही रथपर चढ़के जलके बीच विचरनेमें समर्थ नहीं होता। इसही प्रकार कर्म्मकृत फलको अनेक रूप तथा आश्रमस्थ फलको पृथक् पृथक् जानो; इसलोकमें जिस प्रकार कर्म्म अनुष्ठित होता है, उस ही प्रकार फल प्राप्त हुआ करता है।

हे द्विजगण! जो गन्ध, रस, रूप स्पर्श और शब्दयुक्त नहीं है, विद्वान् मुनिगण उसे प्रधान कहा करते हैं। वही प्रधान अव्यक्त है, उस अव्यक्त प्रधानका गुण महान् है; उसे महत् है; उस महत्‌रूपी प्रधान भूतका गुण अहङ्कार है। अहङ्कारसे आकाश आदि पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए हैं, शब्दादि प्रत्येक विषय पञ्चमहाभूतोंसे गुण कहके वर्णित हुए हैं; उस अव्यक्तको बीजधर्म्मा अर्थात् सृष्टिका कारण तथा प्रसवात्मक अर्थात् कार्य्यरूपी जानो। हमने ऐसा सुना है, कि महात्मा महान्, अहङ्कार तथा पंचमहाभूत, ये सभी बीजधर्म्मा तथा प्रसवधर्म्मा कहके वर्णित हुए हैं। पण्डित लोग शब्दादि विषयोंको भी बीजधर्म्मा तथा प्रसवधर्म्मा कहा करते हैं; चित्त उनका व्यावर्त्तक होता है। उन पंच महाभूतोंके बीच आकाशमें एक गुण, वायुमें दो गुण, अग्निमें तीन गुण, जलमें चार गुण और सर्व्वभूतकारी शुभाशुभ निदर्शनी चराचरोंसे परिपूरित पृथिवी पंचगुणयुक्त कहके वर्णित हुई है।

हे द्विजगण! शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध इन पांचोंको पृथिवीका गुण जानो। गन्ध पार्थिव गुण है, वह गन्ध अनेक प्रकारसे वर्णित हुआ है; उस गन्धके सब गुणोंको विस्तारपूर्व्वक तुम लोगोंसे कहता हूं। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रूक्ष और विपद, यह दश प्रकार पार्थिव गन्ध जानो, शब्द, स्पर्श, रूप और द्रव्य, ये सब जलके गुण कहे गये हैं; परन्तु रस अनेक प्रकारका कहा गया है, रसज्ञान विस्तारपूर्व्वक कहता हूं। मीठा, खट्टा, कड़वा, तीता, कषैला और खारा ये छः प्रकार रसके विस्तार हैं, ये जलमय कहके वर्णित हुए हैं। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीनों अग्निके गुण कहे गये हैं। अग्निका गुण रूप अनेक प्रकारका है। सफेद, कृष्ण, लाल, नीला, पीला, अरुण, ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, चौकोन और गोलाकार ये बारह प्रकारके अग्निके रूप वर्णित हुए हैं। इसही प्रकार शब्द और स्पर्श ये सब सत्यवादी ब्राह्मणोंके द्वारा विशेष रीतिसे विज्ञत हुए हैं। वायुमें दो गुण है, वायुका गुण स्पर्श के कई भेद वर्णित हुए हैं। रूखा, शीतल, उष्ण; स्निग्ध, विशद, कठिन, चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छल, दारुण, मृदु और विस्तार, ये बारह प्रकार वायुके गुण हैं, इन्हें तत्त्वदर्शी धर्म्मज्ञ सिद्ध ब्राह्मणगण विधिपूर्व्वक जानते हैं।

इसके अतिरिक्त हमने ऐसा सुना है, कि उन भूतोंके बीच आकाशमें भी एक गुण शब्द वर्णित हुआ है, उस शब्दके कई गुणोंको विस्तार

पूर्व्वक कहता हूं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, निषाद, धैवत, इष्ट और विभाग विशिष्ट संहत ये दश प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। सब भूतोंके बीच आकाश उत्तम है, आकाशसे उत्तम अहङ्कार; अहङ्कारसे श्रेष्ठ बुद्धि उससे श्रेष्ठ आत्मा, आत्मासे श्रेष्ठ अव्यक्त और अव्यक्तसे पुरुषको श्रेष्ठ जानो। जो लोग सब भूतोंके परापर तथा सब कर्म्मोंकी विधिको विशेष रीतिसे जानते हैं, वे सब भूतोंके आत्मभूत आत्मास्वरूप होकर अव्यय परमात्माको प्राप्त हुआ करते हैं।

५० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, मन पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति स्थिति और विनाशके विषयमें प्रभु होता है। मन पञ्चभूत तथा महतका अधिष्ठाता है, बुद्धि मनका ऐश्वर्य्य कहके वर्णित हुई है; वह मन ही चेत्रज्ञ कहा गया है। जैसे सारथी उत्तम घोड़ोंको नियोग करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको नियोग किया करता है और इन्द्रियें बुद्धिको सर्व्वदा चेत्रज्ञसे युक्त करती हैं। भूतात्मा शरीराभिमानी जीव महत और इन्द्रिय रूपी घोड़े तथा बुद्धिरूपी सारथीयुक्त रथमें चढ़के सर्व्वत्र भ्रमण करता है। जिसमें वशीभूत इन्द्रियग्राम अश्वरूपसे नियुक्त, मन सारथी और बुद्धि प्रतोदस्वरूप है, उस ब्रह्मके विकारभूत शरीरको महारथ जानना चाहिये। जो ध्यानशील विद्वान् मनुष्य इस ब्रह्ममय रथको विशेष रीतिसे जानता है, वह प्राणियोंके बीच कदापि मोहित नहीं होता। आदिभूत अव्यक्त और शेषस्वरूप विशेषयुक्त स्थावर तथा जङ्गममय, चन्द्रमा और सूर्य्यकी प्रभासे प्रकाशित, ग्रह तथा नक्षत्रमण्डलसे मण्डित, नदी और पर्व्वतोंसे परिभूषित, जलके द्वारा विविध रूपसे समलंकृत, सर्व्वभूतोंके आजीवभूत तथा सब प्राणियोंकी गतिस्वरूप परब्रह्म सदा विराजित है; उसमें ही चेत्रज्ञ विचरण किया करता है। इसलोकमें जो सब स्थावर और जङ्गम प्रभृति सत्व हैं, पहले वेही सब लीन होते हैं, फिर सूक्ष्म शरीरात्मक पञ्चमहाभूत तिसके अनन्तर भूतोंके सब शब्दादि गुण लीन हुआ करते हैं; येही दो शरीररूपी भूतसमुच्चय जानो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व्व, पिशाच, असुर और राक्षस, ये सब स्वभावसे उत्पन्न होते हैं, क्रिया वा कारणसे उत्पन्न नहीं होते। हे विप्रगण! जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठके यथा समयमें उसहीमें लीन होती है, वैसे ही ये विश्वस्रष्टा मरीच्यादि प्रजापतिगण पञ्च महाभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन हुआ करते हैं। परन्तु विश्वस्रष्टा भूतोंके लय होनेपर पञ्च महाभूत विद्यमान रहते हैं, पुरुष उन्हीं भूतोंसे मुक्त होनेसे परम गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। प्रभु प्रजापतिने इच्छा मात्रसे ही इस समस्त जगत्की सृष्टि की है, ऋषियोंने तपस्याके द्वारा देवत्व लाभ किया है। फल-मूल भोजन करनेवाले सिद्ध मुनिगण साधनके अनुसार तपस्यासे समाहित होकर त्रैलोक्यदर्शन करते हैं; रोगनाशक औषधी तथा अनेक विद्या तपस्याके द्वारा सिद्ध होती हैं, क्योंकि तपस्याकोही साधनका मूल जानो। जो दुष्प्राप्य इन्द्रपदादि, दुराम्नाय वेदादि, दुराधर्ष व्याघ्र आदि और प्रलयादि दुरन्वय है, वे सब तपस्यासे सिद्ध हुआ करते हैं; इसलिये तपस्या दुरतिक्रमणीय है। जो लोग सुरा पीनेवाले, ब्रह्महत्यारे, स्तेयी, भ्रूणहत्यारे तथा गुरुतल्पगामी हैं वे भी सुतप्त तपस्याके द्वारा उन सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। मनुष्य सदा तपस्यापरायण होनेसे उस तपोबलसे ही सिद्ध होता है। महामायाविशिष्ट देवताओंने उस तपोबलसे ही स्वर्गमें गमन किया है।

जो लोग अतन्द्रित होकर आशीर्युक्त कर्म्म करते हैं, वे अहङ्कार समायुक्त होकर प्रजापतिके निकट निवास करते हैं। जो सब महात्मा

केवल ध्यानयोग करते हैं, वे ममतारहित तथा निरहङ्कारी होकर उत्तम महत लोक पाते हैं, प्रसन्नचित्त उत्तम आत्मवित पुरुष ध्यानयोग पर्य्याप्त होनेसे सदा लौकिक प्रकृतिमें प्रविष्ट हुआ करते हैं। ममतारहित निरहङ्कारी मनुष्य ध्यानयोगसे निवृत्त होनेपर इसलोकमें अव्यक्तमें प्रवेश करते हुए उत्तम महत् लोक पाते हैं; प्राणिवृन्द प्रकृतिसे उत्पन्न होके फिर प्रकृति संज्ञा लाभ करते हैं। जो पुरुष रज और तमोगुणसे निर्म्मुक्त होता है, वह केवल सतोगुण अवलम्बन करते हुए सब पापोंसे रहित होकर समस्त जगत्‌को उत्पन्न करता है; उसे ही निष्कल चेत्रज्ञ ईश्वर जानो। उसे जो पुरुष जान सकता है, वही वेद जाननेमें समर्थ होता है। मननशील मनसे संपूर्ण ज्ञानको लाभ करते हुए सदा संयत होके रहें, और जो चित्त है, उसे ही मन कहते हैं, इस मनके वशीभूत होनेपर इसीको सनातन ईश्वर जानना चाहिये; अव्यक्तादि विशेषान्त अविद्याके लक्षण कहके वर्णित हुए हैं; तुम लोग गुणके द्वारा इन लक्षणोंको विशेष रीतिसे मालूम करो। "मम" ये दो अक्षर मृत्यु और "न मम,"—इन तीन अक्षरोंको शाश्वत ब्रह्म जानो, मन्दबुद्धि रत कोई कोई मनुष्य कर्म्मको प्रशंसा करते हैं जो महात्मा ज्ञानवृद्ध हैं, वे कर्म्मको निन्दा किया करते हैं। पञ्चमहाभूत और एकादश विकार, यह षोड़शात्मक जीव कर्म्मके द्वारा मूर्त्तिमान होकर जन्म ग्रहण किया करता है। विद्या जो उस षोड़शात्मक पुरुषको ग्रास करती है, उसे ही अमृताशियोंका उपादेय ग्राह्यविषय जानो। इसही निमित्त पारदर्शी पुरुष कर्म्मसे प्रीति न करें; यह पुरुष विद्यामय है, कर्म्ममय नहीं है; जो लोग इस ही प्रकार उस अमृत, नित्य, अग्राह्य परमश्रेष्ठा अविनाशी जितचित्त और असङ्ग पुरुषको जानते हैं। वे अमर हुआ करते हैं। जो मनुष्य अपूर्व्व, अकृत्रिम, नित्य अपराजित आत्माको प्राप्त कर सकता है, वह इन सब कारणोंसे ही निश्चय अग्राह्य और अमृत हुआ करता है। जो पुरुष चित्तके मैत्र्यादि संस्कारोंको दृढ़ करते हुए हृदयपुण्डरीकमें चित्तको निरोध कर सकता है, वही उस सर्व्वाधिक शुभङ्कर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होता है; चित्त प्रसन्न रहनेसे पुरुष शान्ति लाभ कर सकता है; स्वप्न दर्शन चित्तप्रसादका लक्षण जानो। ज्ञानसिद्ध मुक्त पुरुषोंकी गति इस ही प्रकार जाननी चाहिये; योगिगण परिणामज प्रवृत्तियोंका दर्शन किया करते हैं; संसारसे विरत प्राणियोंकी ऐसी गति और यह सनातन धर्म्म, ज्ञानवान् पुरुषोंकी प्राप्ति तथा अनिन्दित वृत्तियोंको इस ही प्रकार जानना योग्य है। सर्व्वभूतोंमें समनिष्पृह, निराशिष और सर्व्वत्र समदर्शी मनुष्य निज शक्तिके अनुसार इसगतिको प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु बोला, उन महात्मा मुनियोंने गुरु ब्रह्माका ऐसा बचन सुनके इस ही प्रकार आचरण करके उत्तम लोकोंको पाया था। हे महाभाग! मैंने यह सब तुमसे ब्रह्माका बचन यथार्थ रीतिसे कहा है। हे शुद्धात्मन्! तुमभी इसकापूरी रीतिसे आचरण करनेसे सिद्धिलाभ कर सकोगे।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुन्तीनन्दन! उस समय जब गुरुने शिष्यसे उस ही प्रकार अनुत्तम धर्म्म कहा, तब शिष्यने उन सब धर्म्मोंका पूरी रीतिसे आचरण करके मुक्ति लाभ किया। हे कुरुकुलोद्वह! जिस स्थानमें जानेसे पुरुष शोक नहीं करता, शिष्य उसही पदको पाकर कृतकृत्य हुआ।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! आपने जिस ब्राह्मण और शिष्यकी कथा कही है, वह ब्राह्मण तथा शिष्य कौन है? हे विभु! यदि यह विषय मेरे सुनने योग्य हो, तो आप कृपा करके इसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाहो! मुझे गुरु और मेरे मनको शिष्य जानो; हे धनञ्जय!

तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति रहनेसे मैंने तुमसे यह गुप्त विषय कहा है। हे कुरुकुलोद्वह! यदि मेरे विषयमें तुम्हारी नित्य प्रीति हो, तो तुम इस अध्यात्म-विषयको मेरे समीप सुनके इसका पूरी रीतिसे आचरण करो। हे अरिकर्षण! तुम इस धर्म्मको पूरी रीतिसे आचरण करनेपर सब पापोंसे मुक्त होकर कैवल्यमोक्ष लाभ करोगे। हे महाबाहो! पहले युद्धके समयमें इस ही विषयको मैंने तुमसे कहा था, इस निमित्त इस विषयमें मन संयोग करो। परन्तु मैंने बहुत समयसे प्रभु पिताका दर्शन नहीं किया, अब उन्हें देखनेकी अभिलाष होती है। हे भरतश्रेष्ठ! इसलिये तुम्हें इस विषयमें सम्मति देनी योग्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब कृष्णने अर्जुनसे इतनी कथा कही, तब धनञ्जयने कहा, हे कृष्ण! आओ हम लोग अब इस नगरसे हस्तिनापुरको चलें, फिर आप वहां धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरकी राज्यपालन करनेकी आज्ञा लेकर निज पुरीमें गमन करियेगा।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कृष्णने दारुककी रथमें अश्व जोतनेकी आज्ञा दी, दारुक मुहूर्त्तभरके बीच रथमें घोड़ोंको जोतकर कृष्णसे बोला, 'रथ तैयार है' इधर पाण्डुपुत्र अर्जुन अनगामी सैनिक पुरुषोंसे बोले, हम लोग हस्तिनापुरमें जायंगे, तुम लोग सुसज्जित होके रहो। हे पृथ्वीनाथ! सैनिक पुरुष अमित तेजस्वी पृथापुत्र अर्जुनकी आज्ञानुसार सुसज्जित होकर उनसे बोले, कि हम लोग सज्जित हुए हैं। हे पृथ्वीपति! तिसके अनन्तर कृष्ण और अर्जुन प्रसन्नचित्तसे रथपर चढ़के आपसमें अनेक प्रकारकी वार्त्ता करते हुए नगरकी ओर चले। हे भरतसत्तम! महातेजस्वी धनञ्जय उस रथमें स्थित वसुदेवपुत्र कृष्णसे फिर इस प्रकार कहने लगे। हे वृष्णिकुलोद्वह! आपकी कृपासे सब शत्रु मारे गये और राजा युधिष्ठिरने अकण्टक राज्य लाभ करके जय पाई है। हे मधुसूदन! आप पाण्डवोंके नाथ हैं, पाण्डव लोग प्लवस्वरूप आपको पाके कुरुसागरसे पार हुए हैं। हे विश्वात्मन्! हे विश्वकर्म्मन्! हे विश्वसत्तम! आपको नमस्कार है; मैं आपको जिस प्रकार जानता हूं, आप वैसे ही हैं। हे मधुसूदन! भूतात्मा नित्य आपके तेजसे उत्पन्न होता है। हे विभु! रति आपकी क्रीड़ामयी लीला है और द्यूलोक तथा भूलोक आपकी माया है। स्थावर जङ्गमके सहित यह समस्त जगत् आपमें ही प्रतिष्ठित है, आप ही सब भूतोंको चार भांतिसे विभक्त किया करते हैं। हे मधुसूदन! पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, निर्म्मल जोत्स्ना, छहों ऋतु और इन्द्रियें, ये सब आपकी हांसी हैं। हे मतिमन्! सदा गमनशील वायु आपका प्राण है, क्रोध सनातन मृत्यु है, पद्मालया लक्ष्मी आपमें नित्य विद्यमान रहती हैं। हे अनघ! आप रति, तुष्टि धृति, क्षान्ति, मति, कान्ति और समस्त चराचर हैं, इन सबको इस काल तथा प्रलयकालमें संहार किया करते हैं। हे कमलनेत्र! मैं अनन्तकालमें भी आपके गुणोंको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हूं, आप ही आत्मा और आप ही परमात्मा हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। हे दुर्द्धर्ष! मैंने नारद, देवल, कृष्णद्वैपायन और कुरुपितामह भीष्मके निकट आपको जाना है। आपमें सब वस्तु समासक्त है, आप ही एकमात्र जनेश्वर हैं; आपने कृपा करके जो सब विषय मुझसे कहा है, मैं उसका पूरी रीतिसे आचरण करूंगा; आपने मेरे हितके लिये यह अत्यन्त अद्भुत कर्म्म किया है। धृतराष्ट्रपुत्र पापात्मा दुर्य्योधन जो युद्धमें मारा गया, आपनेही उसकी सेना जलाई है। मैंने जो युद्धमें विजय पाई है, वह आपकी बुद्धि तथा पराक्र-

मसे ही दुर्य्योधनके युद्धमें मुझे जय प्राप्त हुई है, ये सब कार्य्य तुम्हारे ही द्वारा पूरे हुए हैं। कर्ण, पापात्मा सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवाके बधकी उपाय तुम्हारे ही द्वारा प्रदर्शित हुई। हे देवकीनन्दन! आपने प्रसन्नचित्त होकर मुझसे जो कहा है, मैं वही करूंगा; इसमें मुझे कुछ भी बिचार नहीं है। हे अनघ! मैं धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर तुम्हारे गमन करनेके निमित्त उनसे निवेदन करूंगा। हे प्रभु! आपके द्वारका-गमन विषयमें मुझे भी अभिलाष होती है। हे जनार्द्दन! आप शीघ्र ही उस मेरे मातुल वसुदेव, दुर्द्धर्ष बलदेव तथा अन्यान्य वृष्णिपुङ्गवोंका दर्शन करेंगे।

अनन्तर वे कृष्णार्ज्जुन, दोनों इसी प्रकार वार्त्तालाप करते हुए हस्तिनापुरमें पहुंचकर प्रहृष्ट जनसमूहसे परिपूरित उस पुरीके बीच प्रविष्ट हुए। हे महाराज! श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनने इन्द्रभवन सदृश धृतराष्ट्रके गृहमें जाकर प्रजानाथ धृतराष्ट्र, महाबुद्धिमान विदुर, राजा युधिष्ठिर, दुर्द्धर्ष भीम, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव, धृतराष्ट्रके समीप बैठे हुए अपराजित युयुत्सु, महाबुद्धिमती गान्धारी, पृथा, भामिनी द्रौपदी, सुभद्रा प्रभृति भरतकुलकी स्त्रियोंको देखा। तिसके अनन्तर अरिदमन वासुदेव और अर्ज्जुन, दोनों उस राजा धृतराष्ट्रके निकट अपना अपना नाम सुनाकर उनके दोनों चरण ग्रहण किये। अनन्तर गान्धारी, पृथा, धर्म्मराज युधिष्ठिर और भीमके दोनों चरण ग्रहण किये। फिर विदुरको आलिङ्गन करते हुए कुशल पूंछके उनके सहित बूढ़े राजा धृतराष्ट्रकी उपासना करने लगे। अनन्तर महाराज मेधावी धृतराष्ट्रने रात्रिके समयमें शयन करनेके लिये युधिष्ठिर प्रभृति कुरुद्वह और जनार्द्दन कृष्णके निमित्त गृह विभाग कर दिया। वे लोग राजा धृतराष्ट्रके द्वारा शयन करनेकी आज्ञा पाकर निज निज गृहमें गये, परन्तु वीर्य्यवान् कृष्णने धनञ्जयके गृहमें गमन किया। अर्ज्जुनके सहायवान् मेधावी कृष्णने धनञ्जयके गृहमें सब प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा विधिपूर्व्वक पूजित होकर उस स्थानमें शयन किया। रात्रिके अनन्तर प्रभात होनेपर श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन प्रातःकृत्य करके अर्च्चित होकर जिस स्थानमें महाबल धर्म्मराज मन्त्रियोंके सहित निवास करते थे, उस गृहमें उपस्थित हुए। महात्मा कृष्ण और अर्ज्जुन धर्म्मराजके अत्यन्त सुशोभित गृहमें प्रवेश करके इन्द्रका दर्शन करनेवाले अश्विनीकुमारकी भांति उनका दर्शन करने लगे। वृष्णि और कुरुपुङ्गव कृष्णार्ज्जुन राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर प्रसन्नचित्तसे उनके द्वारा अनुज्ञात होकर बैठे। तिसके अनन्तर वाग्मिवर मेधावी राजा युधिष्ठिर भाषणोन्मुख कृष्ण और अर्ज्जुनको देखकर कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे वीरवर यदुकुरुद्वह कृष्णार्ज्जुन! मुझे मालूम होता है, कि तुम लोग कुछ कहोगे, इसलिये वक्तव्य विषयमें बिचार न करके शीघ्र कहो, तुम लोग जैसा कहोगे, मैं वही करूंगा। वाक्यविशारद फाल्गुन अर्ज्जुन धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनकर उनके निकट जाके विनीतभावसे कहने लगे। महाराज! प्रतापवान् श्रीकृष्णचन्द्रको द्वारकासे आये बहुत समय बीत गया, अब आपकी अनुमति होनेसे ये पिता माताके दर्शनके निमित्त द्वारकापुरीमें जानेकी इच्छा करते हैं। हे महावीर! यदि आप सम्मत होकर इन्हें आज्ञा दें, तो ये आनर्त्तनगरीकी ओर गमन करें, इसलिये आपकी अनुमति देनी उचित है।

युधिष्ठिर बोले, हे पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन! तुम्हारा कल्याण हो, तुम आज शूरसुत वसुदेवका दर्शन करनेके लिये द्वारका नगरीमें जाओ। हे महाबाहु केशव! तुमने मेरे मामा वसुदेव और देवकी देवीका बहुत समयसे दर्शन नहीं किया, इसीसे तुम्हारे गमन विषयमें

मुझे अभिलाष होती है। हे महाप्राज्ञ! तुम मेरे मामा वसुदेव और बलदेवके निकट जाकर उनकी यथायोग्य पूजा करना। हे मानद! तुम सदा मुझे और बलिश्रेष्ठ भीम, फाल्गुन अर्जुन, सहदेव और नकुलको स्मरण करना। हे महाभुज! तुम आनर्त्तनगरवासी प्रजागण, पिता वसुदेव और वृष्णिवंशियोंको देखकर मेरे अश्वमेध यज्ञमें फिर आना। हे सात्वत! विविध रत्न, धन तथा दूसरी जिन वस्तुओंके लिये तुम्हारी इच्छा हो, तुम उन्हें ग्रहणकरके गमन करो। हे केशव! तुम्हारी कृपासे ही यह समुद्रके सहित पृथ्वी हमारे हस्तगत हुई और सब शत्रु मारे गये हैं।

कुरुपति धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे। श्रीकृष्ण बोले, हे महाभुज! यह पृथिवी, रत्न और सब धन तुम्हारा है, मेरे गृहमें जो सब अन्यान्य धन है, तुम ही उस समस्त धनके स्वामी हो।

अनन्तर बलवान गदाग्रज श्रीकृष्णचन्द्रने धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके द्वारा प्रतिपूजित तथा उस ही प्रकार उक्त होकर पितृष्वसा कुन्तीकी विधिपूर्व्वक प्रदक्षिणा करते हुए उससे कहके भली भांति सम्मानित होकर गमन किया। अनन्तर चतुर्भुज गदाग्रज कृष्ण कुन्ती और बिदुर प्रभृति मनुष्योंसे प्रतिनन्दित होकर दिव्य रथमें चढ़के नागपुरसे बाहिर हुए। महाभुज जनार्द्दन युधिष्ठिर तथा पितृष्वसा कुन्तीकी अनुमतिके अनुसार निज भगिनी सुभद्राको रथपर चढ़ाके पुरबासियोंके बीच घिरकर हस्तिनापुरसे बाहिर हुए। कपिध्वज (अर्जुन) सात्यकि, माद्रवतीपुत्र नकुल सहदेव, अगाधबुद्धि बिदुर और गजराज-विक्रम भीमसेन उस माधवके अनुगामी हुए। अनन्तर जनार्द्दनने कुरुराष्ट्रवर्द्धन भीमादि तथा बिदुरको लौटाकर दारुक और सात्यकिको शीघ्र रथ चलानेके लिये आज्ञा दी।

अनन्तर जैसे इन्द्र शत्रुओंको मारके स्वर्गपुरमें गमन करते हैं, वैसे ही अरिगणमर्द्दन प्रतापवान जनार्द्दनने शत्रुओंको संहार करके सात्यकीके सङ्ग आनर्त्तपुरीमें गमन किया।

५२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वृष्णिकुलनन्दन कृष्णके द्वारकाकी ओर गमन करनेपर परन्तप भरतश्रेष्ठ अनुयात्रिकगण उन्हें आलिङ्गन करके उनके समीपसे निवृत्त हुए। फाल्गुन अर्जुन वृष्णिवंशीय कृष्णको बार बार आलिङ्गन करके जबतक वह नेत्रोंसे दीख पड़ते थे, तबतक उन्हें बार बार देखने लगे; अनन्तर अर्जुनने गोबिन्दमें निवेशित निज दृष्टिको अत्यन्त कष्टसे संहार की और अपराजित कृष्णने भी अति कष्टसे निज दृष्टि निवारण की।

महात्मा कृष्णके चलनेके समयमें जो सब अद्भुत निमित्त प्रकट हुए थे, वह सब विषय मैं कहता हूं, तुम सुनो। वायु रथके अगाड़ी सारे मार्गको कङ्कड़, धूलि और कांटोंसे रहित करके महावेगपूर्व्वक प्रवाहित होने लगा; इन्द्र शार्ङ्गधन्वा कृष्णके रथके अगाड़ी सुगन्धित उत्तम शीतल जल तथा दिव्य फूलोंकी वर्षा करने लगा। अनन्तर महाबाहु कृष्ण समतल मरुभूमिमें गमन करते हुए अमिततेजस्वी मुनिश्रेष्ठ उतङ्कका दर्शन किया। विशाल नेत्रवाले तेजस्वी कृष्णने मुनिकी पूजा करके अनामय कुशल प्रश्न किया, ब्राह्मणश्रेष्ठ उतङ्क कृष्णके द्वारा कुशल पूछे जानेपर माधवकी पूजा करते हुए पूछने लगे। हे शौरि! आपने जो कुरुपाण्डवोंके गृहमें जाकर अचल सौभ्रात्र किया है, वह सब मेरे निकट वर्णन करो। हे वृष्णिपुङ्गव केशव! आप अपने सदा प्रियसम्बन्धी उन वीरोंको एकत्रित करके आये हैं न? हे परन्तप! पाण्डुके पांचो पुत्र और धृतराष्ट्रके सब पुत्र आपके सहित बिहार करते हैं न? हे केशव! आपके

प्रभु होकर कौरव कुलको सान्त्वना करनेसे सब राजा निज राज्यके बीच सुख भोग करेंगे न? हे तात! मेरी जो सम्भावना तुममें नित्य निवास करती है, तुम भरतकुलके विषयमें उसे सफल किया है न?

श्रीभगवान् बोले, मैंने पहले कौरवोंके लिये सन्धिविषयमें विशेष यत्न किया था, जब वे लोग शान्ति अवलम्बन करनेमें समर्थ न हुए, तब वे सब पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए, कोई पुरुष बल वा बुद्धिसे दैवको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता। हे पापरहित महर्षि! उन कौरवोंने जो भीष्म, बिदुर तथा मेरे मतको अतिक्रम किया था, उसे आप जानते हैं, उसहीसे वे सब परस्पर लड़के यमलोकमें गये हैं; मित्रों और पुत्रोंके मारे जानेपर केवल पांचो पाण्डव अवशिष्ट हैं और धृतराष्ट्र पुत्रगण पुत्रों तथा बान्धवोंके सहित मारे गये हैं। कृष्णके ऐसा कहनेपर उतङ्क अत्यन्त क्रुद्ध होकर क्रोधसे नेत्र लाल करके उनसे कहने लगे।

उतङ्क बोले, हे कृष्ण! जब तुमने परित्राण करनेमें समर्थ होके भी उन प्रिय सम्बन्धी कुरुपुङ्गवोंका परित्राण नहीं किया, उसही निमित्त मैं तुम्हें निश्चयही शाप दूंगा। हे मधुसूदन! क्यों कि तुमने उसही समय उन लोगोंको निग्रह करके निवारित नहीं किया, इसही निमित्त मैं मन्युयुक्त होकर तुम्हें शाप दूंगा। हे माधव! तुमने समर्थ होके भी मिथ्या आचरण किया है, इसीसे कुरुपुङ्गवगण उपेक्षित होकर बिनष्ट हुए हैं।

श्रीकृष्ण बोले, मैं बिस्तारपूर्व्वक जो कहता हूं, उसे सुनो। तुम तपस्वी हो, इसलिये मैं जो तुमसे बिनय करता हूं, उसे ग्रहण करो; मैं जो अध्यात्म विषय कहता हूं, उसे सुनके इस समय शाप मोचन करो; कोई पुरुष अल्प तपस्यासे मुझे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता, हे तपताम्बर! तुम्हारी तपस्या नष्ट करनेकी मैं इच्छा नहीं करता, क्यों कि तुमने अत्यन्त कष्टसे उस उत्तम महद्दीप्त तपस्या उपार्ज्जन तथा गुरुजनोंको सन्तुष्ट किया है। हे द्विजसत्तम! तुम्हारा कौमार ब्रह्मचर्य्य विशेष रीतिसे बिदित है, तुमने अधिक दुःख करके जो तपस्या उपार्ज्जनकी है, उसे मैं नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करता।

५३ अध्याय समाप्त।

उतङ्क बोले, हे केशव! आप मुझसे अनिन्दित अध्यात्म विषय यथार्थ रीतिसे कहिये, मैं उस अध्यात्म विषयको सुनकर आपके शापका उत्तम रीतिसे अभिधान करूंगा।

श्रीकृष्ण बोले, हे द्विज! तम, रज और सत्त्व इन सब गुणोंको मेरे आश्रित जानो और रुद्र तथा बसुगणको मुझसे उत्पन्न हुआ समझो। सब भूतोंमें मैं बिद्यमान हूं और यह निश्चय जानो; कि मुझमें सब भूत बिद्यमान रहते हैं। हे द्विज! दैत्य, यक्ष, गन्धर्व्व, राक्षस, अप्सराओं और नागोंको मुझसे ही उत्पन्न हुआ समझो, पण्डित लोग जिसे सत्, असत्, अव्यक्त, व्यक्त, अक्षर और क्षर कहा करते हैं, उन सबको ही मदात्मक जानो। हे मुनि! चारों आश्रमोंमें जो चार प्रकारके धर्म्म और वैदिक कर्म्म बिहित हैं, वे सब आपको बिदित हैं, उन सबको भी सदा मदात्मक जानो। असत् 'शश विषाणादि' सदसत 'घटपटादि' और सदसतपर अव्यक्तत्रयरूपसे मैंही बिश्वमें देवदेव सनातन हूं, इसलिये मुझसे जगत् भिन्न नहीं है। हे भृगुद्वह! मुझेही ओंकार प्रभृति सब वेद, यूप, सोम, चरु होम और यज्ञमें त्रिदशाप्यायन जानो।

हे भृगुनन्दन! मुझेही होता, हव्य, अध्वर्य्यु, कल्पक और परम संस्कृत हवि जानो, महायज्ञोंमें उद्गाता गौतघोषके द्वारा मेराही स्तव किया करते हैं और प्रायश्चितमें शान्ति तथा मङ्गलवाचक ब्राह्मणगण बिश्वकर्म्मा कहके

मेरीही स्तुति किया करते हैं। हे द्विजसत्तम! धर्म्मको मेरा जेष्ठ पुत्र और सर्व्वभूत दयात्मक मानसको दयित जानो। हे सत्तम! जो सब मनुष्य इस धर्म में वर्त्तमान और निवृत्त रहते हैं, मैं उसही उस मनुष्यरूपसे अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए धर्म्म संस्थापन तथा धर्म्मरचाके हेतु निवास किया करता हूं। हे भार्गव! मैं तीनों लोकोंके बीच वही रूप तथा वही वेष धारण करता हूं। मैंही विष्णु, मैंही ब्रह्मा तथा मैंही उत्पत्तिलयकर्त्ता प्रभु हूं। मैंही सब भूतोंकी सृष्टि तथा संहारकर्त्ता हूं और अधर्म्ममें विद्यमान मनुष्योंके बीच मैंही अच्युत हूं। मैं प्रजासमूहकी हितकामनासे युग युगमें उसही उस योनिमें प्रविष्ट होकर धर्म्मका सेतुबन्धन किया करता हूं।

हे भृगुनन्दन! जब मैं देवयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, तब देववत्, जब गन्धर्व्वयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, उस समय गन्धर्व्वसदृश, जिस समय नागयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, उस समय नागसदृश और यक्ष राक्षस प्रभृति जब जिस योनिमें प्रवृत्त होता हूं, तब उस ही प्रकार आचरण किया करता हूं। मैंने मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होकर उन कौरवोंके समीप कृपणभावसे बहुत ही याच्ञा की थी; क्रुद्ध होकर महत् भय दिखाके त्रासित किया तथा यथायोग्य शिक्षाप्रदान की थी; परन्तु उन लोगोंने महामोहसे विमोहित होकर मेरे वचनको ग्रहण नहीं किया। बल्कि उन लोगोंने कालधर्म्मसे घिरके तथा अधर्म्मसंयुक्त होकर धर्म्मके द्वारा युद्धमें मरके सुरपुरमें गमन किया है। हे द्विजोत्तम! पाण्डवोंको भी जगतके बीच बड़ाई प्राप्त हुई है। हे विप्रवर! आपने मुझसे जो पूछा था, मैंने वह विषय पूरी रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

५४ अध्याय समाप्त।

उतङ्क बोले, हे जनार्द्दन! मैं आपको जगतकर्त्ता कहके जान सका हूं, निश्चय ही यह आपकी कृपा है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। हे अच्युत! मेरा चित्त आपमें आसक्त होनेसे प्रसन्न होकर शापसे निवृत्त हुआ। हे जनार्द्दन! यदि आपकी किञ्चित कृपा हो, तो मैं आपका ईश्वररूप देखनेकी इच्छा करता हूं, आप अनुग्रह करके वह रूप मुझे दिखाइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धीमान् धनञ्जयने जिस शाश्वत वैष्णवरूपका दर्शन किया था, कृष्णने परम प्रसन्न होकर उतंकको वही मूर्त्ति दिखाई। उतङ्कने महात्मा महाभुज विश्वरूप सहस्रसूर्य्य तथा जलती हुई अग्निसदृश सर्व्वव्यापी सर्व्वतोमुख कृष्णका दर्शन किया अनन्तर विप्रवर उतङ्क उस अद्भुत परम रूप परमेश्वरका दर्शन करके अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगे।

उतंक बोले, हे विश्वकर्म्मन विश्वात्मन्! आपको नमस्कार है। हे विश्वसम्भव! आपके दोनों चरणोंसे पृथ्वी, सिरसे आकाश जठरके द्वारा द्युलोक तथा भूलोकका मध्य और दोनों भुजासे सब दिशा आवृत होरही हैं। हे अच्युत! आप ही इस विश्वरूपसे निवास करते हैं। हे देवदेव! यह समस्त अक्षय अनुत्तम रूप संहार करिये। मैं फिर आपको उस ही कृष्णरूपसे देखनेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय गोविन्द कृष्ण प्रसन्न होकर उतङ्कसे बोले, कि तुम मुझसे वर मांगो। तब उतङ्कने उनसे यह वचन कहा, हे पुरुषोत्तम कृष्ण! आज मैंने आपके इस रूपका जिस प्रकार दर्शन किया, वही मुझे यथेष्ट वर प्राप्त हुआ है। कृष्ण फिर उतङ्कसे बोले, कि तुम निश्चय ही मेरा यह अमोघ दर्शन पाओगे; इसमें और विचार मत करो।

उतङ्क बोले, हे विभु! यदि आप इसे अवश्य करणीय बोध करते हैं, तो इस मरुभूमिके बीच जिस स्थानमें मैं इस दुर्लभ जलको

अभिलाष करूं, उस स्थानमेंही मेरी अभिलाषा सिद्ध होवे। अनन्तर ईश्वरने उस तेजको संहार करके उतङ्कसे कहा, कि "तुम्हें जब जिस विषयमें अभिलाष होवे, उस समय मुझे स्मरण करना"—ऐसा कहके कृष्ण द्वारकामें गये अनन्तर किसी समय भगवान् उतङ्कने मरुभूमिमें घूमते हुए जलकी अभिलाष करके अच्युत कृष्णको स्मरण किया। अनन्तर धीमान् उतङ्कने मरुभूमिमें दिगम्बर मलिन स्वयूथ परिवेष्टित बद्ध बाण और धनुषधारी एक भीषण मातङ्ग चाण्डालको देखा और उसके पांवके नीचे बहुत सा निर्म्मल जलका स्रोत अवलोकन किया। मातङ्गने उनका मत जानके हंसकर कहा। हे भृगुद्वह उतङ्क! तुम मेरे समीप आके जल ग्रहण करो, तुम्हें तृष्णातुर देखके मुझे अत्यन्त दया हुई है। उस मुनिवर उतङ्कने मातङ्ग चाण्डालका ऐसा वचन सुनके अभिनन्दन न किया; बरन उस चाण्डालको उग्र वचनसे निन्दा करने लगे, मातङ्ग भी बार बार उतङ्कको जल पीनेके लिये कहने लगा। उतङ्कने अन्तरात्मा क्षुधित होनेपर भी क्रोधित होकर उस जलको न पीया; जब उतङ्कने निश्चय करते हुए उसे प्रत्याख्यान किया; तब वह वहांपर कुत्तोंके सहित अन्तर्द्धान हुआ। उस समय उतङ्कने उसे अन्तर्हित होते देखकर लज्जितचित्त होकर अपनेको कृष्णके द्वारा प्रलोभित समझा। अनन्तर शङ्ख, चक्र, गदाधारी कृष्ण उस ही मार्गसे उतङ्कके निकट उपस्थित हुए और महाबुद्धिमान् उतङ्क उनसे कहने लगे।

उतङ्क बोले, हे पुरुषसत्तम! आपको उस प्रकार चाण्डाल रूप धरके ब्राह्मणको जल प्रदान करनेके लिये आना उचित नहीं हुआ। उतङ्कका ऐसा वचन सुनके महाबुद्धिमान् जनार्द्दन कृष्ण मधुर वचनसे उन्हें सान्त्वना करते हुए कहने लगे।

कृष्ण बोले, इस स्थानमें जिस प्रकार दान करना उचित है, उसही प्रकार दिया जाता था, तुम उसे समझ न सके। मैंने तुम्हारे निमित्त वज्रपाणि पुरन्दर इन्द्रसे कहा था, कि उतङ्कको तोयरूपी अमृत दान करो। हे भृगुनन्दन! देवेन्द्रने ऐसा वचन सुनके मुझसे कहा, कि मर्त्यको अमर्त्यता न प्राप्त होगी, इसलिये उन्हें अन्य वर प्रदान करो। परन्तु मैंने उनसे कहा, कि उतङ्कको अमृत वर ही देना होगा, तब वह मुझे प्रसन्न करके फिर बोले, हे महामति! यदि उतङ्कको यही वर देना योग्य है, तो मैं मातङ्ग होकर उस महात्मा भृगुनन्दनको अमृत दान करूंगा। हे विभु! आज यदि भृगुनन्दन उतङ्क इस ही प्रकार अमृत प्रतिग्रह करें, तो मैं उन्हें अमृत देनेके लिये जाता हूं, परन्तु यदि मैं उनसे प्रत्याख्यात होऊंगा, तो मैं कदापि उन्हें अमृत दान न करूंगा। वह इन्द्र मेरे निकट ऐसा ही अङ्गीकार करके तुम्हें अमृत देनेके लिये चाण्डालरूपी होकर तुम्हारे निकट उपस्थित हुए थे। तुम जान न सके, इसीसे उन्हें प्रत्याख्यान किया है। उस चाण्डालरूपी भगवान् इन्द्रके तुम्हारे द्वारा प्रत्याख्यान होनेसे तुम्हारी महान् व्यतिक्रम हुआ है; परन्तु मैं शक्तिके अनुसार फिर तुम्हारे अभिलषित विषयको सिद्ध करूंगा। हे ब्रह्मन्! जिस दिन तुम्हें जलकी इच्छा होगी उस ही दिन मैं तुम्हारी उस दुरन्त जललालसा सफल करूंगा। हे भृगुनन्दन! उस दिन मरुभूमिमें बादल जलसे पूरित होकर तुम्हें सुस्वादु जल प्रदान करेंगे और उतङ्क मेघ नामसे विख्यात होंगे। हे भारत! उस विप्रने कृष्णका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त प्रीति लाभ की। इस ही लिये आजतक उतङ्क मेघ उस महाशुष्क मरुभूमिमें वर्षा किया करते हैं।

५५ अध्याय समाप्त।

———

राजा जनमेजय बोले, महात्मा उतङ्कने ऐसी कौनसी तपस्या की थी कि जगत्प्रभु विष्णुको शाप देनेके लिये उद्यत हुए ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय ! उतङ्क महातप निष्ठ थे, वह केवल तेजस्वी गुरुकी पूजा करते थे और किसीकोभी अर्चना नहीं करते थे। हे भारत ! ऋषिपुत्रगण उतङ्ककी गुरुभक्ति देखकर ऐसा समझते थे, कि हमें भी उतङ्ककी गुरुवृत्ति प्राप्त होगी। हे जनमेजय ! गौतमके जितने शिष्य थे, उनके बीच उतङ्कके विषयमें उनकी अधिक प्रीति तथा स्नेह उत्पन्न हुआ, गौतम उतङ्कके दम, पवित्रता विक्रम और समधिक सेवासे परम प्रसन्न हुए थे, एकसमय गौतमऋषिने किसी कार्य्य उपलक्षमें शिष्योंको घर जानेके लिये आज्ञा दी ; परन्तु परम प्रीतिके वशमें होकर उतङ्कको आज्ञा देनेकी इच्छा नहीं की। हे तात ! क्रमसे उस उतङ्क मुनिको जरा प्राप्त हुई ; परन्तु उस समय वह गुरुवत्सल उतङ्क उसे न जान सके। हे राजेन्द्र ! अनन्तर वह किसी समय काष्ठ लानेके लिये गये और बहुतसा काष्ठ उठाकर लाने लगे। उन्होंने काष्ठभारसे अभिभूत, परिश्रान्त और भूखे होनेसे काष्ठका बोझा पृथ्वीपर फेंका ; उस समय उनकी रौप्य-सदृश प्रभाशालिनी जटा काष्ठमें फंस गई थी, इससे वह काष्ठके सहित गिर पड़े। हे भारत ! जब क्षुधाविष्ट उतङ्क काष्ठ भारसे निष्पिष्ट होके पृथ्वीपर गिरे, उस समय कमलनयनी गुरुपुत्री उनकी वैसी अवस्था देखकर आर्त्तस्वरसे रोदन करने लगी ; पृथुलोचना सुश्रोणी धर्म्म जाननेवाली गुरुपुत्रीने पिताकी आज्ञानुसार सिर नीचा करके अश्रुजल ग्रहण किया। वह अश्रुजल उसके दोनों हाथोंको जलाते हुए पृथ्वीपर गिरा, पृथ्वीभी उस अश्रुधाराको धारण न कर सकी।

उस समय गौतमने प्रसन्नचित्तसे उतङ्क विप्रसे कहा, हे तात ! आज तुम्हारा मन शोकातुर क्यों हुआ है। हे विप्रर्षि ! तुम धीरे धीरे मेरे समीप यथार्थ रीतिसे कहो, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

उतङ्क बोले, मेरा मन आपमें लगा रहनेसे विप्र चिकीर्षा वशसे तथा मैं आपकी भक्ति वा भावके अनुगत होनेसे जरा और सुख न जान सका। मैं जो इस स्थानमें एक सौ वर्षसे वास करता हूं तौभी आपने मुझे अनुमति न देकर जो मुझसे अपकृष्ट थे, वैसे सैकड़ों सहस्रों शिष्योंको अनुज्ञा की ; उससे वे लोग कृतकार्य्य हुए।

गौतम बोले, हे द्विजर्षभ ! तुम्हारे गुरुसेवासे तुमपर अधिक प्रसन्न रहनेसे मैं यह न जान सका, कि अधिक समय किस प्रकार व्यतीत हुआ है। हे भार्गव ! यदि आज तुम्हें गृहपर जानेकी अभिलाष हो, तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं, तुम शीघ्र निज गृहपर जाओ।

उतङ्क बोले, हे द्विजसत्तम ! कहिये मैं आपको क्या दक्षिणा दूं ? हे विभु ! आप जो कहें, मैं वही लेआऊं।

गौतम बोले, हे ब्रह्मन् ! ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं, कि गुरुजनोंका परितोष ही दक्षिणा है ; इसलिये मैं तुम्हारे सदाचारसे ही परितुष्ट हुआ हूं। हे भृगुद्वह ! तुम मुझे परितुष्ट जानो। हे ब्रह्मन् ! यदि आज तुम षोड़ष वर्षीय युवा होते, तो मैं अपनी कन्या तुम्हें पत्नीरूपसे दान करता, इस कन्याके अतिरिक्त दूसरा कोई भी तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ न होगा। अनन्तर उतङ्क मुनि युवा होकर गुरुकी आज्ञानुसार उस यशस्विनी कन्याको ग्रहण करके गुरुपत्नीसे बोले, तुम्हें क्या गुरुदक्षिणा दूं ? उसके लिये मुझे आज्ञा करो, मैं प्राण और धनसे तुम्हारे प्रिय तथा हितको आकांक्षा करता हूं। इस लोकमें जो रत्न दुर्लभ हैं, मैं तपोबलसे निःसन्देह उन अद्भुत महारत्नोंको लाऊंगा।

अहल्या बोली, हे विप्र! मैं तुम्हारी इस भक्तिसे ही परितुष्ट हुई हूं, यह भक्ति ही यथेष्ट हुई है। हे तात! इस समय तुम्हारा मङ्गल हो, तुम इच्छानुसार गमन करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्कने अहल्यासे कहा, हे माता! कहो, मुझे कौनसा प्रियकार्य्य करना होगा?

अहल्या बोली, सौदास राजाकी भार्य्या जो दिव्य मणिमय-कुण्डल पहरती है, तुम वही कुण्डल ले आओ; ऐसा करनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा और गुरुदक्षिणा सिद्ध होगी। हे जनमेजय! उतङ्कमुनि "वही करूंगा," ऐसी प्रतिज्ञा करके गुरुपत्नीके प्रीतिके निमित्त कुण्डल लानेके लिये चले। अनन्तर ब्राह्मणश्रेष्ठ उतङ्क शीघ्र ही पुरुषाद सौदासके निकट गये। गौतमने निज पत्नी अहल्यासे पूछा, कि आज उतङ्कको नहीं देखता हूं, उतङ्क कहां है? अहल्याने गौतमका वचन सुनके कहा, कि उतङ्क कुण्डल लानेके निमित्त गये हैं।

तिसके अनन्तर गौतमने पत्नीसे कहा, कि तुमने यह अच्छा कार्य्य नहीं किया; क्यों कि वह सौदास उतङ्कके द्वारा अभिशप्त होनेसे निश्चय ही उनका बध करेगा।

अहल्या बोली, हे भगवन्! मैंने बिना जाने ऐसे ब्राह्मणको भेजा है, परन्तु आपके प्रसादसे उतङ्कको कुछ भी भय उपस्थित न होगा। गौतम अहल्याका ऐसा वचन सुनके उससे बोले, तुमने जो कहा, वही होवे, इधर उतङ्कने भी निर्जन वनके बीच राजाको देखा।

५६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्क मुनि दीर्घश्मश्रुधारी मनुष्य शोणितसे समुक्षित घोरदर्शन राजा सौदासको देखकर व्यथित न हुए; परन्तु महा तेजस्वी शमन सदृश भयप्रद राजा सौदासने उतङ्कसे कहा। हे द्विजसत्तम! मैं भक्ष्य खोज रहा हूं, तुम प्रारब्धसे ही दिनके छठवें भागमें मेरे निकट आके उपस्थित हुए हो।

उतङ्क बोले, हे राजन्! मैं गुरुके निमित्त धन मांगनेके लिये इस स्थानमें आया हूं, मुझे गुरुके लिये अर्थप्रार्थी जानो; मनीषिवृन्द गुरुके निमित्त उद्युक्त मनुष्यको अवध्य कहा करते हैं।

राजा बोला, हे द्विजसत्तम! इस दिनके छठवें भागमें तुम मेरे आहाररूपसे विहित हुए हो, मैं अत्यन्त ही भूखा हूं, इसलिये आज तुम्हें परित्याग नहीं कर सकता।

उतङ्क बोले, हे महाराज! आप जो अभिलाष करते हैं, वही होगा, परन्तु आप मेरी प्रतिज्ञा सफल करिये, मैं गुरुका कार्य्य पूरा करके फिर तुम्हारे अधिकारमें आऊंगा। हे राजसत्तम! मैंने जो धन गुरुको दान करनेके निमित्त प्रतिज्ञा की है, वह धन तुम्हारे अधीन है; इसलिये उसे तुम्हारे निकट भिक्षा मांगता हूं। हे नरेश्वर! इस पृथ्वीके बीच आप दाता और मैं प्रतिग्रहीता हूं; हे नृपसत्तम! मुझे प्रतिग्रहका पात्र ही जानो। हे अरिंदमन! आपके निकटसे वह अर्थ गुरुके निमित्त ले जाकर मैं प्रतिज्ञाके अनुसार फिर आपके वशमें होऊंगा। हे राजन्! मैं जो प्रतिज्ञा करता हूं, वह कभी मिथ्या न होगी, क्यों कि मैंने इच्छापूर्व्वक पहले कभी मिथ्या वचन नहीं कहा है; इसलिये किसी प्रकार इसमें अन्यथा न होगी।

सौदास बोले, मैं तुम्हें प्रतिग्रह करा सकूंगा, यदि तुम ऐसा स्वीकार करा, तो तुम उस गुरुदक्षिणाके धनको मेरे निकट प्राप्त हुआ ही निश्चय करो।

उतङ्क बोले, हे पुरुषर्षभ! आप मुझे प्रतिग्राह्य कहने अभिमत हुए हैं, इस ही निमित्त मैं आपके निकट मणिकुण्डल मांगनेके लिये आया हूं।

सौदास बोले, हे विप्र! वह मणिकुण्डल मेरी स्त्रीका है, मुझे उसे दान करनेका अधिकार नहीं है; इसलिये और जो कुछ धन मांगोगे, मैं उसे ही दान करूंगा।

उतङ्क बोले, हे पार्थिव! यदि मुझपर आपका विश्वास हुआ हो, तो आप अब व्यर्थ छल न करके मुझे कुण्डल प्रदान करके सत्यवादी होइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा उतङ्कका ऐसा वचन सुनके फिर उनसे बोला। हे सत्तम! मेरे वचनके अनुसार मेरी पत्नीके निकट जाकर कहो, कि आप मुझे कुण्डल प्रदान करिये। हे द्विजवर! मेरे वचनके अनुसार वह मेरी शुचिव्रता भार्य्या तुम्हारा ऐसा वचन सुनके निश्चय ही तुम्हें कुण्डल प्रदान करेगी।

उतङ्क बोले, हे नरेश्वर! मैं आपकी पत्नीको कहां देखूंगा? आप स्वयं भार्य्याके निकट किस लिये नहीं जाते हैं?

सौदास बोले, आज बनमें किसी झरनेके समीप उसे देखोगे। मैं आज दिनके छठवें भागमें उसे न देख सकूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्क राजाका ऐसा वचन सुनके वहांसे जाकर बनके बीच सौदासकी भार्य्या मदयन्तीको देखा, और उसे सौदासके वचनके अनुसार अपना प्रयोजन सुनाया।

सौदासकी भार्य्या बोली, हे अनघ! आपने जो कहा, वह सत्य है, परन्तु इस विषयमें किञ्चित अभिज्ञान लाना उचित है। देवता, यक्ष और महर्षिगण अनेक प्रकारके उपायके सहारे मेरे इस दिव्य मणिमय कुण्डलको हरनेकी अभिलाषासे सदा छिद्र अन्वेषण करते हैं। यह रत्न पृथ्वीपर गिरनेसे सर्पगण उच्छिष्ट अवस्थामें धारण करनेसे और यक्षगण निद्रावस्थामें धारण करनेसे देवहन्द हरण किया करते हैं। हे द्विजसत्तम! इन सब छिद्रोंके उपस्थित होनेपर भी मेरा यह कुण्डल देवता, राक्षस और सर्पोंके द्वारा अपहृत होता है; इसलिये अप्रमत्त होके इसे धारण करना चाहिये। हे द्विजवर! मेरे इस दिव्य कुण्डलसे रात्रिके समय सुवर्ण झरता है और रात्रिसमयमें यह नक्षत्रों तथा तारोंकी प्रभा आकर्षित करके निवास करता है। हे भगवन्! इस कुण्डलको धारण करनेसे मनुष्य भूखप्याससे पीड़ित नहीं होता। इतना ही नहीं; वरन विष, अग्नि तथा अन्यान्य भयजनक जन्तुओंसे उसे कदाचित भय नहीं होता। थोड़ी अवस्थावाला पुरुष इसे धारण करे, तो उसकी प्रकृत अवस्था ही रहती है। मेरे इस परम पूजित मणिमय कुण्डलका गुण तीनों लोकोंके बीच विख्यात है, इसलिये आप उसका अभिज्ञान ले आइये।

५७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्क मुनिने मित्रतापूर्व्वक सौदासके निकट जाकर अभिज्ञानके निमित्त प्रार्थना की; तब उस इक्ष्वाकुप्रवर सौदासने उन्हें यह वाक्यरूपी अभिज्ञान प्रदान किया।

सौदास बोले, हमारे लिये यह राक्षसयोनिरूपी गति मङ्गलकारी नहीं है, तथा इस कुण्डलदानकी अपेक्षा मुक्तिरूपी गति और कुछ भी नहीं है; इसलिये तुम मेरा ऐसा मत जानके इन्हें मणिमय कुण्डल प्रदान करो।

उतङ्कने सौदासका ऐसा वचन सुनके सौदासपत्नीको उसके स्वामीका वचन सुनाया; उसने स्वामीका वचन सुनके उतङ्कको वह मणिमय कुण्डल प्रदान किया। उतङ्क वह मणिमय कुण्डल पाके फिर राजासे बोले, हे महाराज! इस गुप्त वाक्यका क्या अर्थ है? मैं उसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

सौदास बोले, ब्राह्मणगण प्रजा उत्पन्न करते हैं, इसीसे क्षत्रिय पुरुष उनकी पूजा किया

करते हैं, तोभी ब्राह्मणोंके निकट क्षत्रियादिके बहुतसे दोष प्रकट होते हैं। मैं अपनी भार्य्या मदयन्तीके सहित ब्राह्मणोंके निकट दोषयुक्त होकर उनके समीप सदा प्रणत हुआ करता हूं; इसके अतिरिक्त और गति मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देती है। हे गतिप्रवर! ब्राह्मणोंके निकट प्रणत रहनेके अतिरिक्त इसलोकमें सुखभोग तथा स्वर्गद्वारमें गमन करनेका दूसरा उपाय नहीं दिखाई देता है। राजा चाहे कितनाही ऐश्वर्य्यशाली क्यों न हो, द्विजातियोंके सङ्ग विरोध करनेसे वह इसलोकमें निवास तथा परलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ नहीं होता; इस ही कारण मैंने तुम्हारे अभिलषित अपना मणिमय कुण्डल तुम्हें प्रदान किया है; परन्तु आज आपने मेरे समीप जो अङ्गीकार किया है, उसे सफल करना।

उतङ्क बोले, हे महाराज! मैं फिर आपके निकट आके अपने अङ्गीकार किये हुए वचनको सफल करूंगा। हे परन्तप! परन्तु मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछके यहांसे निवृत्त होता हूं।

सौदास बोले, हे विप्र! आपकी जो इच्छा हो, मुझसे वही विषय पूंछिये, मैं आपके प्रश्नका उत्तर दूंगा और बिना विचारे आज आपका सब सन्देह खण्डन करूंगा।

उतङ्क बोले, धर्म्म जाननेवाले पण्डितगण संयतवाक्यवाले मनुष्यको मित्र कहा करते हैं और जो पुरुष मित्रोंके बीच विषम चित्तवाला होता है, उसे तस्कर समझते हैं। हे पार्थिव! आज आप मेरे मित्र हुए, इसलिये आप मुझे निज धर्म्मबुद्धि प्रदान करिये! आज मैंने आपके निकट धन पाया है, आप उत्पादक हैं; इसलिये मुझे बतलाइये, कि फिर आपके समीप मुझे आना योग्य है, वा नहीं?

सौदास बोले, हे द्विजवर! इस स्थलमें जो करना योग्य है, वह मैं आपसे कहता हूं; आप मेरे निकट कदापि न आना। हे भृगुकुलोद्वह! मेरे निकट न आना ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी है, यदि आप आवेंगे, तो निश्चयही आपकी मृत्यु होगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब बुद्धिमान राजा सौदासने उतङ्कसे ऐसा वचन तथा कर्त्तव्य विषय कहा, तब उन्होंने पृथ्वीपति सौदासको राज्यपालन करनेकी आज्ञा देकर अहल्याके निकट जानेके लिये प्रस्थान किया। उतङ्क दिव्य मणिमय कुण्डल लेकर महावेगपूर्व्वक गौतमके आश्रममें जाकर अहल्याके प्रीति पात्र हुए। मदयन्तीने कुण्डलरक्षाका जिस प्रकार उपाय कहा था, उतङ्क उसही भांति उसे कृष्णाजिनमें बांध रखा था। कुण्डल लेकर चलनेके समयमें उतङ्क क्षुधाविष्ट होकर फलके भारसे युक्त एक बेलका वृक्ष देखकर उसपर चढ़े।

हे अरिन्दम! द्विजवर उतङ्क कुण्डलके सहित कृष्णाजिन बेलवृक्षकी शाखामें बांधके बेलका फल तोड़ने लगे। हे विभु! जब उतङ्क बेलका फल तोड़ने लगे, उस समय उनका नेत्र बेलकी चोटसे पीड़ित होनेसे जिस शाखामें कुण्डलके सहित कृष्णाजिन बांधा था, उस ही मृगछाल युक्त शाखापर बेलके फल गिरे, अनन्तर बेलके प्रहारसे कृष्णाजिनका बन्धन छूट जानेसे कुण्डलके सहित वह काले हिरणका चर्म्म सहसा पृथ्वीपर गिरा, जब बन्धन छूटनेसे वह कृष्णाजिन भूमिपर गिरा, तब वहां किसी सर्पने उस मणिमय कुण्डलको देखा; अनन्तर ऐरावत वंशमें उत्पन्न हुआ वह सर्प शीघ्रताके सहित मुखमें कुण्डल धारण करके कुण्डल समेत बिलमें घुस गया। उतङ्क सर्पके द्वारा कुण्डल अपहृत होते देखकर अत्यन्त दुःखित तथा कोपित होकर उद्वेग पूर्व्वक वृक्षसे गिर पड़े। अनन्तर वह ब्राह्मणसत्तम उतङ्क क्रोध तथा अमर्षपूर्व्वक अत्यन्त सन्तापित होकर दतून लेकर पैंतीस दिन उस बिलको खोदते रहे। दतूनके प्रहारसे विछिन्नकलेवरयुक्त बसुन्धरा

नागलोकमें जानेके निमित्त मार्ग बनानेके अभि लाषी धरणीतल बिदारी उतङ्कके असह्य वेगको न सह सकनेसे अत्यन्त आकुल भाई। अनन्तर महातेजस्वी वज्रपाणि इन्द्रने घोड़ोंसे युक्त रथ पर चढ़के उस स्थानमें आके उतङ्कको देखा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण करके उतङ्कके दुःखसे दुःखी होकर उनसे बोले, कि यह तुम्हारे लिये साध्य नहीं है, नागलोक यहांसे एक हजार योजन है, इस-लिये मुझे बोध होता है, कि आप इसी दतूनसे न खोद सकोगे।

उतङ्क बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं नागलोकसे कुण्डल पानेमें असमर्थ होऊं, तो आपके सम्मुखमें ही प्राण परित्याग करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब उतङ्क नाग-लोकका निश्चय करनेमें असमर्थ हुए तब इन्द्रने निज वज्रके सहित उस दतूनकोयुक्त कर दिया अनन्तर इन्द्रके वज्रके प्रहारसे वसुन्धरा विदीर्ण करके नागलोकका पथ किया। उन्होंने उस ही मार्गसे नागलोकमें प्रवेश करके सहस्र योजन व्यापी नागलोक अवलोकन किया। हे महाभाग! वह नागलोक दिव्य मणि तथा मोतियोंसे अलंकृत, सुवर्णमय दीवा-रोंसे घिरा हुआ था, उसके बीच सब वापी स्फटिकके द्वारा बनी थीं, सोपानके सहित नदियोंको बिमल जलयुक्त तथा वृक्षोंको अनेक भांतिके पक्षियोंके द्वारा परिपूरित देखा। भृगु-नन्दन उतङ्क पांच योजन चौड़ा एक सौ योजन लम्बा नागलोकका द्वार देखकर वहां दीनभा-वयुक्त होकर कुण्डल पानेसे निराश हुए। उस द्वारके स्थानमें तांबेके समान मुख लालनेत्र सफेदवर्णकी पूंछयुक्त निज तेजसे प्रज्वलित एक काले रङ्गका घोड़ा उतङ्कसे बोला। हे विप्र! यह अपान भूमि मेरी है, इस स्थानमें जलपान करनेसे तुम कुण्डल पाओगे। ऐरावत नागका पुत्र तुम्हारा कुण्डल इस ही स्थानमें ले आया है। हे पुत्र! तुम इस पान विषयमें कदापि निन्दा न करना; क्योंकि तुम पहले गौतमके आश्रममें ऐसा आचरण करते थे।

उतङ्क बोले, मैं आपको नहीं जान सकता हूं, मैंने पहले उपाध्यायके आश्रममें जैसा आच-रण करता था, उसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

अश्व बोला, हे विप्र! मैं तुम्हारे गुरु गौत-मका गुरु हूं, तुम मुझे ज्वलन्त जातवेदा (अग्नि) जानो; तुम गुरुके प्रयोजनके निमित्त शुद्धभावसे सदा मेरी पूजा करते थे, इस ही निमित्त मैं तुम्हारे कल्याणका उपाय करूंगा। मैंने जैसा कहा, तुम शीघ्र वैसा ही करो बिलम्ब मत करो। उतङ्कने चित्रभानुका ऐसा बचन सुनके वैसा ही किया। अनन्तर घृतार्चि (अग्नि-देव) उतङ्क प्रसन्न होकर नागलोक जलानेकी इच्छासे प्रज्वलित हुए। तब वहांपर उनके रोमकूपसे नागलोकको भयभीत करनेवाला निबिड़ धूआं प्रकट हुआ। हे भारत! उस धूआंके अत्यन्त बढ़ित होनेपर नागलोकमें कुछ भी न दीख पड़ा; अनन्तर ऐरावतनागके गृहमें बासुकी प्रभृति नागोंका हाहाकार शब्द होने लगा। हे भारत! उस समय नीहारा-वृत बन तथा पर्व्वतकी भांति धूएंसे परिपूरित होकर सब गृह अप्रकाशित हुए; धूएंसे नेत्र लाल तथा अग्निके तेजसे तापित होकर सब नागोंने महात्मा भृगुनन्दन उतङ्कका निश्चय जाननेके लिये आगमन किया। उन सबने मह-र्षिका निश्चय सुनके भयजनित चञ्चलतायुक्त नेत्रसे उनकी पूजा की; नागगण हाथ जोड़के बालकों तथा बूढ़ोंको आगे करके सिरसे प्रणाम करके बोले, हे भगवन्! आप हम लोगोंपर प्रसन्न होइये। नागोंने ब्राह्मणको प्रसन्न करते हुए पाद्य अर्घ देकर परम पूजित दिव्य मणिमय कुण्डल उन्हें प्रदान किया। अनन्तर प्रतापवान उतङ्कने नागोंके द्वारा वहां-पर पूजित होकर अग्निकी प्रदक्षिण करके

गुरुके गृहपर गमन किया। हे महाराज! उन्होंने शीघ्र ही गुरु गौतमके गृहपर जाकर गुरुपत्नी अहल्याको वह दिव्य कुण्डल प्रदान किया और वासुकि प्रभृति नागोंका वृत्तान्त गुरुके निकट पूरी रीतिसे वर्णन किया। हे जनमेजय! वह महात्मा उतङ्क इस ही प्रकार त्रिलोक परिभ्रमण करके उस दिव्य मणिमय कुण्डलको ले आये थे। हे भरतर्षभ! तुमने जिसका विषय मुझसे पूंछा था, उस परम तपस्वी मुनिवर उतङ्कका ऐसा ही प्रभाव मालूम करो।

५८ अध्याय समाप्त।

———

जनमेजय बोले, हे द्विजसत्तम! महायशस्वी महाबाहु गोविन्दने उतङ्कको वर देकर उसके अनन्तर क्या किया?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गोविन्दने उतङ्कको वर देकर सात्यकिके सहित शीघ्रगामी घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के तालाब, नदी और पर्व्वतोंको अतिक्रम करते हुए द्वारकामें गमन किया। हे महाराज! उस समय रैवतक पर्व्वतका उत्सव उपस्थित होनेपर पुण्डरीकाक्ष गोविन्द युयुधानके सहित वहां जा पहुंचे। हे भरतपुत्र! वह गिरवर रैवतक अनेक विचित्र वर्णोंसे अलंकृत, रत्नमय कोषसे पूरित, उत्तम सुवर्णमय माला मनोहर पुष्प, वस्त्र, कल्पवृक्ष तथा सुवर्णमय दीपवृक्षसे सुशोभित होनेसे उसकी गुफा तथा निर्झर स्थान दिनकी भांति प्रकाशित होने लगी। चारों ओर घण्टायुक्त विचित्र पताका और स्त्री पुरुषोंके समूहसे परिपूरित होकर मानो उत्तम गीत होने लगी; मणियोंके द्वारा बिभूषित होनेसे सुमेरुकी भांति दर्शनीय हुआ। प्रमत्त तथा हर्षित स्त्रियें और गीत गानेवाले पुरुषोंके गगनस्पर्शी शब्दके द्वारा ऐसा मालूम होने लगा, कि मानो वह पर्व्वतेन्द्र ही गान कर रहा है। प्रमत्त, मत्त और सम्मत्त प्राणियोंके क्ष्वेड़ित तथा उत्कृष्ट शब्दोंसे वह स्थान परिपूरित होगया; उस समय वह पर्व्वत किलकिला शब्दके द्वारा मनोहर तथा विपण, आपण, भक्ष्यभोज्य और विहारकी वस्तुओंसे युक्त होनेसे अत्यन्त मनोरम हुआ, वहांपर ढेरके ढेर वस्त्र, माला, बीणा, वेणु, मृदङ्ग, मैरेय सुरा और अनेक प्रकारकी भक्ष्य भोज्य उपस्थित रहने अथवा दीन, अन्धे और कृपण पुरुषोंको लगातार दान करनेसे उस रैवतक महागिरिका महोत्सव अत्यन्त आनन्दजनक हुआ था। रैवतकके उत्सवमें पुरुषोंने वृष्णिवंशीय वीरोंके पवित्र गृहयुक्त विहारस्थानमें निवास किया था। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय गृहसमूहसे परिव्याप्त होकर वह गिरिवर कृष्णकी सान्निध्य पाके इन्द्रालय तथा देवलोककी भांति प्रकाशित हुआ था।

अनन्तर गोविन्द सात्यकिके सहित सम्मानित होकर बहुत समय तक प्रवासमें रहनेसे प्रहृष्टचित्तसे निज भवनमें गये। दानवोंके दलको दमन करके इन्द्रके अमरावती नगरीमें आनेपर देववृन्द जिस प्रकार उनके निकट गमन करते हैं, उस ही प्रकार वृष्णिकुलनन्दन कृष्णने जब कुरुकुलध्वंसरूपी दुष्कर कर्म्म करके द्वारकापुरीमें प्रवेश किया, तब भोज, वृष्णि तथा अन्धकवंशीय पुरुष उनके निकट उपस्थित हुए। मेधावी कृष्णने उन लोगोंकी सम्मानना करते हुए कुशलादि पूंछकर प्रसन्नचित्तसे पिता तथा माताको प्रणाम किया। महाभुज कृष्ण पिता माताके द्वारा आलिङ्गित तथा सान्त्वित होकर समीपमें बैठे हुए उन वृष्णिवंशियोंके द्वारा परिवेष्टित हुए। जब महातेजस्वी कृष्ण पांव धोकर विश्रान्त भावसे बैठे, तब पिताके द्वारा युद्धका वृत्तान्त पूछनेपर उनसे उस युद्धका सारा वृत्तान्त कहने लगे।

५९ अध्याय समाप्त।

वसुदेव बोले, हे वृष्णिकुलनन्दन कृष्ण! उस कुरुक्षेत्रमें नित्य कथा प्रसङ्गसे परस्पर विवाद करनेवाले मनुष्योंका जो परम अद्भुत संग्राम हुआ था, उसे मैंने सुना है; परन्तु तुमने प्रत्यक्ष देखा तथा तुम्हें उसका रूप मालूम है। हे अनघ! इसलिये उस संग्रामका यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो। भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य, इनके सङ्ग महात्मा पाण्डवोंका तथा अनेक वेश वा रूपविशिष्ट अनेक देशवासी अन्यान्य कृतास्त्र क्षत्रियोंका जिस प्रकार युद्ध हुआ था, उसे भी कहो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुण्डरीकाक्ष कृष्ण माताके समीप पिताका ऐसा वचन सुनके युद्धमें जिस प्रकार कौरवोंकी मृत्यु हुई थी, उसे कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, महात्मा क्षत्रियोंका वह सब अत्यन्त अद्भुतकर्म्म एक सौ वर्षमें भी नहीं कहा जा सकता; तब संक्षेपमें मुख्य मुख्य राजाओंके कार्य्यका यथावत् वर्णन करता हूं, सुनिये। कुरुवंशावतंस कौरवोंके सेनापति भीष्म सुरसेनापति इन्द्रकी भांति कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके अधिपति हुए थे। पाण्डवपक्षके नेता धीमान् शिखण्डी सात अक्षौहिणीके अधिपति हुए, श्रीमान् शव्यसाची अर्ज्जुन उनकी रक्षा करते थे। उन महात्मा कुरु-पाण्डवोंमें दशदिन तक रोमहर्षजनक युद्ध होता रहा, अनन्तर शिखण्डीने गाण्डीवधारी अर्ज्जुनके सहित महासंग्राममें युध्यमान गङ्गानन्दन भीष्मको अनेक बाणोंसे मारा। उस मनस्वी भीष्मने दक्षिणायन भर शरशय्यापर रहके उत्तरायण उपस्थित होनेपर प्राण परित्याग किया। अनन्तर दैत्यगुरु भार्गवकी भांति कुरुकुलके गुरु महास्त्रवित् द्रोण कौरवोंके सेनापति हुए। वह युद्धमें प्रशंसित द्विजसत्तम द्रोण अवशिष्ट नव अक्षौहिणी सेनासे घिरकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, कृप तथा मुख्य क्षत्रियगण उनकी रक्षामें नियुक्त हुए थे। मेधावी महास्त्रवित् धृष्टद्युम्न पाण्डवोंके सेनापति हुए, मित्रोंके द्वारा रक्षित वरुणकी भांति वह भीमसे रक्षित हुए थे। उस महामना धृष्टद्युम्नने पिताका परिभव स्मरण करते हुए द्रोणको मारनेकी इच्छा करके सेनासमूहसे घिरकर युद्धमें अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया था। कई दिशाओंसे आये हुए राजा लोग उस द्रोण और धृष्टद्युम्नके युद्धमें प्रायः सभी मृत्युको प्राप्त हुए। पांच दिनतक वह दारुण संग्राम हुआ, उसके अनन्तर द्रोणाचार्य्य विश्रान्त होकर धृष्टद्युम्नके वशवर्त्ती हुए। तब कर्ण दुर्य्योधनके सेनाके बीच अवशिष्ट पांच अक्षौहिणी सेनासे घिरकर युद्धमें सेनापतिके कार्य्यपर नियुक्त हुए। पाण्डवोंकी ओर बहुतसे वीरोंके मरनेपर अवशिष्ट तीन अक्षौहिणी सेना अर्ज्जुनके द्वारा रक्षित होकर युद्धमें स्थित हुई। अनन्तर दूसरे दिन सूतनन्दन अत्यन्त प्रचण्ड कर्णने अग्निमें पड़े हुए पतङ्गकी भांति पृथापुत्र अर्ज्जुनको प्राप्त होकर पञ्चत्व लाभ किया। कर्णके मरनेपर कौरवोंने तेजरहित तथा निरुत्साह होकर मद्रराज शल्यको तीन अक्षौहिणी सेनाका अधिपति किया; पाण्डवोंने भी वाहन आदि नष्ट होनेपर निरुत्साही होकर शल्यके सङ्ग युद्ध करनेके लिये युधिष्ठिरको एक अक्षौहिणी सेनाका सेनापति किया। कुरुराज युधिष्ठिरने आधे दिनतक मद्रराज शल्यके सहित अत्यन्त दुष्कर संग्राम करके उन्हें संहार किया। शल्यके मरनेपर महामना अमितविक्रम सहदेवने उस कलहके मूल शकुनिको मार डाला। शकुनि और सब सेनाके नष्ट होनेपर धृतराष्ट्रपुत्र राजा सुयोधनने अत्यन्त दुःखित होकर गदा लेके भागकर द्वैपायन ह्रदमें निवास किया, इधर प्रतापवान् भीमसेनने क्रुद्ध होकर उनका अनुसन्धान करते हुए उन्हें द्वैपायन ह्रदके बीच अवलोकन किया। अनन्तर पांचो पाण्डव प्रसन्नचित्तसे मारनेसे

बची हुई सेनाके सहित तालाबमें स्थित सुयो-धनको घेरकर वहां बैठकर उनकी निन्दा करने लगे। जलके बीच सुयोधन वाक्यबाणसे अत्यन्त पीड़ित होकर हाथमें गदा लेकर जलसे निकलकर युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए; तब भीमसेनने युद्धमें राजाओंके सम्मुख विक्रम प्रकाश करके धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको मारा। अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पिताके बधसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर रात्रिके समय शिवि-रमें सोई हुई पाण्डवोंकी समस्त सेनाका संहार किया। उस समय मेरे तथा सात्यकिके अति-रिक्त पुत्र, बल तथा मित्रोंके सहित केवल पांच पाण्डव शेष रहे; अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य तथा कृतवर्म्माके सहित युद्धसे निवृत्त हुए और कुरुवंशीय युधिष्ठिर पाण्डवोंके निकट रहनेसे बच गये। कौरवेन्द्र सुयोधन जब बान्धवोंके सहित मारे गये, तब विदुर और सञ्जय धर्म्म-राजके निकट उपस्थित हुए। हे प्रभु! इस ही प्रकार वह युद्ध अठारह दिन हुआ था, उसमें जो सब राजा मारे गये, वे स्वर्गलोकमें गये हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वृष्णिवंशीय पुरुष यह लोमहर्षण कथा सुनके दुःख तथा शोकसे अत्यन्त शोकित हुए।

६० अध्याय समाप्त।

———

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महाबुद्धिमान् प्रतापवान् कृष्ण उस भारत-युद्धका वृत्तान्त वर्णन करते हुए अभिमन्युका वृत्तान्त वसुदेवको अप्रिय होगा, ऐसा समझके उसे अतिक्रम करके कहने लगे। वसुदेव दौहित्रबधका वृत्तान्त सुननेसे दुःख तथा शोकसे अत्यन्त सन्तापित होंगे; ऐसा विचारके उसे न कहा; परन्तु सुभद्रा कृष्णसे बोली, "हे कृष्ण! तुमने जो मेरे पुत्र अभिमन्युका वध वृत्तान्त गोपन किया है, उसे कहो," इतना कहके पृथ्वीपर गिर पड़ी। उस समय सुभद्राको पृथ्वीमें गिरती देखकर वसुदेव भी दुःखसे मूर्च्छित होकर भूमिमें गिरे। अनन्तर वसुदेव दौहित्र बधज-नित शोकसे पीड़ित होकर कृष्णसे बोले। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम जो सत्यवादी कहके पृथ्वीमें विख्यात् हुए हो, उसमें मुझे विश्वास नहीं होता; क्यों कि आज तुमने मेरे समीप दौहि-त्रबध वृत्तान्त प्रकाश न किया। हे कृष्ण! तुम अपने भानजेका बध-वृत्तान्त मुझसे यथार्थ रीतिसे कहो। हे वाष्णेय! तुम्हारे नेत्र सदृश नयन सम्पन्न सुभद्रापुत्र अभिमन्यु अकालमें मनुष्योंके सहित दुर्म्मरणकी भांति युद्धमें शत्रु-ओंके द्वारा क्यों मारा गया? हे कृष्ण! इतने पर भी दुःखसे मेरा हृदय सौ टुकड़े होकर विदीर्ण न हुआ? जब वह अभिमन्यु युद्धमें मारा गया, उस समय उसने अपनी माता सुभद्राको और मुझे क्या कहा था? हे पुण्ड-रीकाक्ष! वह चञ्चलनेत्रवाला सुभद्रापुत्र अभि-मन्यु मेरा परम प्रियपात्र था, क्या युद्धमें परां-मुख होनेपर शत्रुओंने उसे मारा है? हे गोविन्द! शत्रुओंने युद्धमें उसका मुख विकृत तो नहीं किया? हे कृष्ण! वह महातेजस्वी मेरे निकट तो प्रशंसित हुआ था? वह बाल-भावसे सबके निकट अपनी विनय कहता था। हे केशव! वह बालक द्रोण, कर्ण, कृप प्रभृति तथा क्षत्रियोंके द्वारा तो नहीं मारा गया? वह शत्रुके द्वारा मरकर जिस प्रकार पृथ्वीपर सोया था, वह मुझसे कहो। वह दुहिताका पुत्र अभिमन्यु युद्धमें द्रोण, भीष्म और अत्यन्त बल-शाली कर्णकी स्पर्द्धा करता था।

जिस समय वसुदेव दुःखके सहित इस प्रकार अनेक भांति विलाप करने लगे; तब गोविन्द अत्यन्त दुःखित होकर उनसे बोले, कि अभि-मन्युने युद्ध भूमिमें वक्र विकृत नहीं किया, बल्कि युद्धसे परांमुख न होकर दुस्तर संग्राम किया था। सैकड़ों सहस्रों राजाओंको मारकर द्रोणाचार्य्य और कर्णके द्वारा पीड़ित होकर

दुःशासनपुत्रके वशवर्त्ती हुआ था। हे प्रभु! यदि कौरवगण! अकेले अकेले अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करते, तो कोई भी उसे पराजित न कर सकता; कौरवोंकी बात तो दूर रहे, वज्रपाणि इन्द्र भी युद्धमें अकेले उसका वध करनेमें समर्थ न होते। उस समय जब अर्जुन संसप्तकोंके सङ्ग पृथक् होकर युद्ध करने लगे, तब द्रोण प्रभृति योद्धाओंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसे घेर लिया। हे पिता! इतनेपर भी सुभद्रापुत्र युद्धमें अत्यन्त महत तथा समधिक शत्रुओंका संहार करके अन्तमें दुःशासनपुत्रके वशवर्त्ती हुआ। हे महाप्राज्ञ! वह सुभद्रापुत्र निश्चय ही स्वर्गमें गया है, आप उसके लिये शोक न करिये, शोक परित्याग करिये; इस विषयमें आपके सदृश कृतबुद्धि पुरुषोंकी व्यसनमें पड़के अवसन्न होना उचित नहीं है। जब कि महेन्द्र सदृश बलशाली कर्ण प्रभृति वीरगण जिसके सङ्ग युद्ध करके स्वर्गमें गये हैं, तब वह अभिमन्यु स्वर्गमें क्यों न जायगा? हे दुर्द्धर्ष! आप शोक परित्याग करिये, मन्युके वशमें न होइये, उस पराये देशको जीतनेवाले अभिमन्युको निश्चय ही शस्त्रपूत गति प्राप्त हुई है। उस वीर अभिमन्युके मरनेपर मेरी यह सुभद्रा बहिन दुःखसे आर्त्त होकर पृथाके निकट जाकर कुररीकी भांति अत्यन्त रोदन करती हुई दुःखित चित्तसे द्रौपदीसे पूछा, कि हे आर्य्ये! पुत्रगण कहां हैं? मैं उन्हें एक बार देखूंगी। सुभद्राका ऐसा वचन सुनकर कुरुस्त्रीगण दोनों भुजाओंसे इसे धारण करके अत्यन्त आर्त्तकी भांति रोने लगीं। सुभद्रा कुरुस्त्रियोंके सहित उत्तरासे बोली, भद्रे! तुम्हारा स्वामी कहां गया है, तुम मुझसे बताओ, वह कब आवेगा? हे विराटनन्दिनी! जब मैं अभिमन्युको बुलाती थी, तब वह मेरी बात सुनते ही उसी समय तुम्हारे सहित गृहसे बाहिर होता था; आज तुम्हारा पति क्यों नहीं आता है? हे अभिमन्यु! तुम्हारे इस स्थानमें रहनेपर तुम्हें युद्धप्रिय जानके तुम्हारे मामा तुमसे युद्धका कुशलादि वृत्तान्त कहते थे। हे अरिन्दम! आज तुम मुझसे पूरीरीतिसे संग्रामका वृत्तान्त कहो। इस समय मैं इस प्रकार विलाप करती हूं, तुम किस निमित्त प्रत्युत्तर नहीं देते हो?

पृथा वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुई सुभद्राका ऐसा विलाप सुनकर अत्यन्त दुःखितचित्तसे धीरे धीरे उससे बोली, हे सुभद्रे! वह बालक अभिमन्यु युद्धमें श्रीकृष्ण, सात्यकि और निजपिता अर्जुनके द्वारा लालित होनेपर भी कालधर्म्मके अनुसार मारा गया है। हे यदुनन्दिनि! मृत्युधर्म्म ही ऐसा है, इसलिये इस विषयमें शोक मत करो; तुम्हारे उस दुर्द्धर्ष पुत्रको निश्चय ही परमगति प्राप्त हुई है। हे पद्म-पलाश नयनी! तुम महात्मा क्षत्रियोंके बीच महत्कुलमें जन्मी हो, हे चञ्चलनयनी! इसलिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। हे शुभे! तुम गर्भिणी उत्तराको अवलोकन करो, यह भाविनी उत्तराके गर्भसे शीघ्रही उस अभिमन्युका पुत्र उत्पन्न होगा, हे यदुकुलोद्वह! कुन्तीने इसही प्रकार सुभद्राको धीरज देकर शोक परित्याग करके अभिमन्युका श्राद्धादि किया। धर्म्म जाननेवाली कुन्ती अभिमन्युके उद्देश्यसे दान करनेके निमित्त युधिष्ठिर, भीम, यमसदृश यमज नकुल सहदेवको आज्ञा करके बहुत सा धन दान दिया। अनन्तर वह ब्राह्मणोंको बहुतसी गऊप्रदान करके विराटपुत्री उत्तराको बुलाकर बोली। हे अनिन्दिते विराटनन्दिनि! इस समय तुम्हें पतिके लिये सन्ताप करना उचित नहीं है, तुम गर्भस्थ शिशुकी रक्षा करो। हे महातेजस्वी! कुन्ती उत्तराको ऐसाही कहके विरत हुई, इधर मैं सुभद्राको ले आया। हे दुर्द्धर्ष मानद! आपके दौहित्रकी इसी प्रकार मृत्यु हुई है, इसलिये आप शोक परित्याग करिये, तथा चित्तको शोकाकुल न करिये।

६१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय धर्म्मात्मा शूरनन्दन वसुदेवने पुत्रका इस प्रकार वचन सुनके शोक परित्याग करके अनुत्तम श्राद्ध तथा दानादि कार्य्य किया। वासुदेवने भी पिताके प्रियपात्र स्वरूप महात्मा अभिमन्युका और्द्धदेहिककार्य्य किया। अनन्तर साठ सौ सहस्र महातेजस्वी ब्राह्मणोंको सर्व्वगुणयुक्त भोजद्रव्य विधिपूर्व्वक भोजन कराया। उस समय महाबाहु कृष्णने वस्त्र आदिसे ब्राह्मणोंकी इस प्रकार धनतृष्णा दूर की थी, कि वह सबके विषयमें लोमहर्षणकारी हुई थी। उस समय सुवरण, गज शय्या और वस्त्र दान करनेसे ब्राह्मण लोग "बढ़ती हो,"—ऐसा ही वचन कहने लगे। अनन्तर सात्यकिके सहित दाशार्ह वासुदेव और सात्यक, ये लोग जिस प्रकार अभिमन्युका श्राद्ध करते हुए दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर उस समय शान्तिलाभ न कर सके; उस ही भांति महावीर पाण्डवगण भी अभिमन्युके विरहसे हस्तिना नगरमें शान्ति-लाभ नहीं कर सके। हे राजेन्द्र! विराटपुत्री उत्तराने पतिके विरहजनित दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर बहुत दिनतक भोजन नहीं किया, उस समय उसे महत् करुणा उपस्थित हुई और भोजनके अभावसे उसका कुक्षिस्थ गर्भ प्रलीन होगया। अनन्तर धीमान् महातेजस्वी व्यासदेव दिव्य दृष्टिके सहारे उसे जानके वहां आकर पृथुलोचना पृथा और उत्तरासे बोले, कि तुम लोग शोक मत करो, तुम्हारे महातेजस्वी पुत्र होगा। वह पुत्र वासुदेव तथा मेरे वचनके अनुसार पाण्डवोंके अनन्तर पृथ्वी पालन करेगा। हे भारत! व्यासदेव धर्म्मराजके सम्मुख अर्जुनको देखकर उन्हें हर्षित करते हुए बोले, हे अर्जुन! तुम्हारे महामना भाग्यवान् पौत्र उत्पन्न होगा, वह पौत्र धर्म्मपूर्व्वक समुद्रके सहित पृथ्वीपालन करेगा। हे अरिकर्षण कुरुपुङ्गव! इसलिये तुम शोक परित्याग करो; मैंने जो कहा, इसमें तुम कुछ भी विचार मत करो, यह वचन सत्य होगा। हे कुरुनन्दन! पहले वृष्णिप्रवर कृष्णने जो कहा है, वही होगा, इसमें तुम सन्देह मत करो; उस वीर श्रेष्ठ अभिमन्युने निज अर्ज्जित अमरलोक पाया है, इसलिये वह तुम्हारे तथा दूसरे कुरुगणोंका शोचनीय नहीं है। हे महाराज! धर्म्मात्मा धनञ्जय पितामह व्यासका ऐसा वचन सुनके शोक परित्याग कर हृष्टचित्त हुए। हे धर्म्मज्ञ! तुम्हारे पिता उस गर्भके बीच इच्छानुसार शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति बढ़ने लगे। अनन्तर व्यासदेव धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये आज्ञा देकर अन्तर्द्धान हुए। मेधावी धर्म्मराजने भी व्यासदेवका वचन सुनके धन लानेके निमित्त चलनेकी सम्मति की।

६२ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! युधिष्ठिरने महात्मा व्यासदेवका वचन सुनके फिर अश्वमेधका किस प्रकार अनुष्ठान किया? हे द्विजसत्तम! मरुत्तने जो रत्न पृथ्वीतलमें सञ्चय कर रखा था, उन रत्नोंका उन्होंने जिस प्रकार पाया, वह विषय मुझसे कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिर व्यासदेवका वचन सुनके अपने भाई अर्जुन, भीम और माद्रीपुत्र यमज नकुल सहदेवको बुलाकर बोले, हे वीरगण! कुरुकुलहितैषी सुहृदोंके ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले तपोवृद्ध धीमान् महात्मा कृष्णने सुहृदतापूर्व्वक जो कहा था और अद्भुतकर्म्मा धर्म्मशील गुरु व्यासदेव तथा भीष्म, इन्होंने भी जो कहा था, उसे तुम लोगोंने सुना है। हे पाण्डवगण! इस समय वह हमारे स्मृतिगोचर होनेसे हम सबके वर्त्तमान तथा भविष्यतके लिये हितजनक उस कार्य्यको करनेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि ब्रह्मवादियोंके वाक्य फलोत्पत्तिके विषयमें

कल्याणकर हुआ करते हैं। हे कुरुद्वहगण! इस वसुन्धराके बसुरहित होनेसे ही उस समयमें व्यासने मरुत्तके धनकी कथा कही थी। हे नृपगण! इसलिये यदि आप लोग इसे कर्त्तव्य तथा बहुमत समझते हो, तो उस धनको हम यहांपर ले आवें। हे भीम! कहो इस विषयमें तुम्हारा क्या मत है? हे कुरुकुलोद्वह! उस समय जब राजा युधिष्ठिरने ऐसा कहा तब भीमसेन हाथ जोड़के राजेन्द्र युधिष्ठिरसे कहने लगे।

भीमसेन बोले, हे महाबाहो! आपने व्यासदेवके उपदेश अनुसार धन लानेके विषयमें जिस प्रकार कहा, वह मुझे अभिमत है। हे प्रभु! यदि अविचित एव मरुत्तका वह धन मिल जाय, तो मुझे बोध होता है, कि उससे ही हम लोगोंके सब कार्य्य पूरे होंगे; इसलिये आपके कल्याणके निमित्त हम कपर्द्दी गिरीश महात्मा महादेवको प्रणाम कर उनकी विधिपूर्व्वक पूजा करके वह धन लावेंगे। हम लोग वचन, कर्म्म और ध्यानसे उस देवाधिदेवपति विभु भूतनाथ तथा उनके सेवकोंको प्रसन्न करनेसे निश्चय ही वह धन पा सकेंगे। वृषभध्वजके प्रसन्न होनेपर जो सब रौद्र दर्शन किन्नर उस धनकी रक्षा करते हैं, वे भी वशीभूत होंगे।

हे भारत! जब भीमसेनने इतनी बात कही तब राजा युधिष्ठिर उसे सुनके अत्यन्त प्रसन्न हुए और अर्जुन प्रभृति भाइयोंने कहा, 'ऐसा ही होगा।'

अनन्तर पाण्डवोंने रत्न लानेका निश्चय करके उत्तम नक्षत्रयुक्त दिनमें सेनाको उस ओर चलनेके लिये आज्ञा दी। अनन्तर पाण्डुपुत्रोंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके मोदक, पायस और पिष्टकके सहारे देवोंके देव महेश्वरकी पूजा करते हुए महात्मा युधिष्ठिरको आश्वासित करके अत्यन्त हर्षके सहित यात्रा किया। उनके चलनेके समय वहांपर नगरवासी लोग माङ्गलिक कार्य्य और ब्राह्मणगण शुभ आशिर्व्वाद करने लगे। अनन्तर उन लोगोंने अग्निके सहित ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा तथा सिर झुकाके प्रणाम करते हुए पुत्र शोकयुक्त भार्य्याके सहित राजा धृतराष्ट्र और पृथुलोचना पृथाकी अनुमति पाके वहांसे प्रस्थान किया। कुरुवंशीय धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु को धृतराष्ट्र तथा कुन्तीके निकट सौंपकर पुरवासियों तथा मनीषि ब्राह्मणोंके द्वारा भली भांति सम्मानित हुए।

६३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर प्रहृष्ट नरवाहन युक्त पाण्डवगण आनन्दित होकर बहुतसे रथशब्दके द्वारा पृथ्वीको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। उस समय सूत, मागध और बन्दिजन स्तुतिवाक्यसे उनका स्तव करने लगे, वे लोग मानो निज किरणसे युक्त सूर्य्यकी भांति अपनी सेनाके बीच घिरकर चले, उस समय सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छाता लगानेसे राजा युधिष्ठिर पूर्णमासीमें उदय हुए चन्द्रमाकी भांति शोभित हुए। पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने मार्गमें प्रहृष्ट पुरुषोंके जययुक्त आशिर्व्वादको विधि तथा नीतिके अनुसार प्रतिग्रह किया। हे राजन्! राजाके अनुगामी सैनिक पुरुषोंका हलहला शब्द गगनमण्डलको स्तब्ध करके स्थित हुआ। अनन्तर महाराज युधिष्ठिर तालाब, नदी, वन और उपवनोंको अतिक्रम करके पर्व्वतके समीप उपस्थित हुए। हे राजेन्द्र! जिस स्थानमें उस मरुत्त राजाका उत्तम धन रखा था, युधिष्ठिर पाण्डव तथा सैनिक लोगोंके सहित उसही स्थानमें पहुंचकर वासस्थान तय्यार कराने लगे। हे भरतसत्तम! राजा लोग तपस्या, विद्या और दमगुणयुक्त ब्राह्मणों तथा वेद वेदाङ्ग जाननेवाले अग्निवेश्य धौम्य पुरोहितको अगाड़ी करके उस समतल शुभकर स्थानमें पुरोहित और ब्राह्मणोंके

सहित शान्ति करके सेवकोंके सहित राजा युधिष्ठिरका मध्यवर्त्ती कर विधिपूर्व्वक उन्हें घेरके स्थित रहे। द्विजगणके लिये छः राजमार्ग और नव वासस्थान युक्त एक गृह बनाकर मतवारे हाथियोंके रहने योग्य एक हयशाला तय्यार कराया। अनन्तर राजेन्द्र युधिष्ठिर वासस्थान तय्यार कराके ब्राह्मणोंसे बोले, हे द्विजेन्द्रगण! उत्तम नक्षत्रयुक्त शुभ दिनमें यह कार्य्य सम्पन्न करना होगा; इसमें आप लोगोंकी जैसी अभिलाष हो, वैसाही करना चाहिये; परन्तु जिसमें हम लोगोंके समयमें विलम्ब न हो, वैसाही निश्चय करके उसके अनन्तर कर्त्तव्य कार्य्योंको सिद्ध करिये। धर्म्मराजके हितकी अभिलाष करनेवाले पुरोहितके सहित ब्राह्मण लोग राजाका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न चित्तसे बोले। हे महाराज! आज उत्तम नक्षत्र तथा पुण्याह है, इसलिये आज ही हम लोग श्रेष्ठ कार्य्यके लिये एकत्र होंगे, हम लोग इस स्थानमें आज जलपीके निवास करें और आप भी उपवास करिये। राजाओंने ब्राह्मणोंका वचन सुनके प्रसन्नचित्तसे उपवास करते हुए रात्रिके समय यज्ञस्थलमें प्रज्वलित अग्निकी भांति कुशशय्यापर शयन किया। ब्राह्मणोंके धर्म्मयुक्त वचनको सुनते सुनते रात बीत गई; अनन्तर निर्म्मल प्रभातका समय उपस्थित होनेपर ब्राह्मण लोग धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे कहने लगे।

६४ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणगण बोले, हे नरनाथ! पहले आप महात्मा त्रम्बककी पूजा करिये उसके अनन्तर हम लोग तुम्हारे अर्थसिद्धिके विषयमें यत्नवान होंगे। राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंका वचन सुनके महादेवके लिये विधानपूर्व्वक पूजाकी सामग्री मंगाई। तब पुरोहितने संस्कारयुक्त घृतसे अग्निकी विधिपूर्व्वक पूजा करते हुए मन्त्रसिद्ध चरु तय्यार करके गमन किया। हे प्रजानाथ! उन्होंने मन्त्रपूरित पुष्प, मोदक पायस और मांस प्रभृति बलि मंगाकर महादेवकी पूजा की, अनेक प्रकारके फूल उच्चावच लाजकेसहित सब उत्तम वस्तुओंको संग्रह करके यक्षेन्द्र कुबेर और मणिभद्र प्रभृति किङ्करोंको बलि प्रदान किया। अनन्तर कृशर, मांस तिल युक्त निवाप और घड़े भर जलके द्वारा अन्यान्य यक्षों तथा भूतपतिकी पूजा की, उस समय राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको सहस्र गऊ देकर रात्रिचर भूतोंको बलिप्रदान करनेके लिये आज्ञा दी।

हे पार्थिव! देवाधिदेव महादेवका स्थान धूप सुगन्धसे निरुद्ध तथा अनेक प्रकारके फूलोंसे परिपूरित होनेसे अत्यन्त शोभित हुआ। अनन्तर राजा युधिष्ठिर रुद्र और उनके गणकी पूजा करते हुए व्यासदेवको अगाड़ी करके यत्न तथा निधिके निकट गये। वहांपर वीर्य्यवान् युधिष्ठिरने विचित्र पुष्प, पिष्टक और कृशरके द्वारा धनाध्यक्ष कुवेर शङ्खादि निधि तथा निधि पालोंकी पूजा करते हुए दण्डवत् तथा प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया। कुरुपति युधिष्ठिर ब्राह्मणोंके पुण्याह शब्द तथा तेजके सहित स्थित होके प्रसन्नचित्तसे उस धनको खुदवाने लगे।

अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिर उस खजानेसे करकाके सहित अनेक प्रकारके मनोरम पात्र, भृङ्गार, कटाह, कलश, सराव तथा सैकड़ों सहस्रों विचित्र पात्रोंको बाहिर निकाला। हे राजन्! वहां बहुतसे महत् करपुटाकार पात्र थे; ये सब पुरुषके तुलाई परिमित पात्र उष्ट्रादिके ऊपर बद्ध थे; परन्तु वहांपर पाण्डवोंके भार ढोनेवाले वाहन साठ सौ हजार ऊंट, उससे दूने घोड़े, सौ हजार हाथी, शकट, रथ, करेणु, असंख्य गधे तथा मनुष्य विद्यामान थे। राजा युधिष्ठिर सोलह, आठ और चौबीस हजार भार उस वित्त-खानिसे बाहिर करके फिर महादेवकी पूजा करके उन वस्तुओंकी सब

वाहनोंके ऊपर सामर्थके अनुसार बांधकर हस्तिनापुरकी ओर चले। अनन्तर वेदव्यासकी आज्ञाके अनुसार पुरोहितको आगे करके प्रति दिन दो कोसकी दूरीपर निवास करने लगे। हे राजन्! वह नगरकी ओर चलनेवाली बहुतसी सेना द्रविण भारसे थककर भी अत्यन्त कष्टसे बोझा ढोती हुई कौरवोंको हर्षित करने लगी।

६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इतनेही समयके बीच पुरुषश्रेष्ठ वीर्य्यवान् कृष्ण निजपुरी द्वारका नगरीकी ओर चलनेके समय धर्म्मराजने जो वचन कहा था, उस वाजिमेधके समयको स्मरण करके वृष्णिवंशीय रौक्मिणेय, युयुधान, चारुदेष्ण, शाम्ब, गद, कृतवर्म्मा, वीरवर सारण, निशठ और उल्मुख, इन सबके सहित सुभद्राको सङ्ग लेकर बलदेवको अगाड़ी करके हस्तिनापुरमें आके उपस्थित हुए। अनन्तर कृष्ण वृष्णवंशियोंके सहित द्रौपदी, उत्तरा, पृथा तथा अन्यान्य स्वामीरहित चत्रिया स्त्रियोंको धीरज देते हुए आने लगे, तब राजा धृतराष्ट्र और महात्मा विदुरने उन वृष्णिवंशियोंको समागत देखकर सम्मानके सहित आह्वान किया, पुरुषश्रेष्ठ महातेजस्वी कृष्ण विदुर और युयुत्सुके द्वारा उत्तम रीतिसे सम्मानित होकर वृष्णिवंशियोंके सहित उस स्थानमें बैठे।

हे जनमेजय! अनन्तर वृष्णिवंशियोंके वहां बैठनेपर तुम्हारे पिता परवीरघाती परीक्षित उत्पन्न हुए। परन्तु सबके हर्ष और शोक निबन्धनसे वह राजा परीक्षित गर्भकेबीच ब्रह्मास्त्रके द्वारा पीड़ित होनेसे मृतकरूपसे भूमिष्ठ हुए। उस समय हर्षयुक्त पुरुषोंके सिंहनादके सहित तुमुल शब्द प्रकट होके सब दिशाओंमें प्रवेश करते हुए फिर उपरत हुआ। अनन्तर कृष्णने व्यथितेन्द्रिय तथा दुःखितचित्त होकर सात्यकिके सङ्ग अत्यन्त शीघ्रतापूर्व्वक अन्तःपुरमें प्रवेश किया। कृष्णने रनिवासमें प्रवेश करके देखा, कि निज पितृष्वसा पृथा ऊंचे स्वरसे रोदन करती तथा 'शीघ्र श्रीकृष्णके निकट चलो', ऐसा वचन कहती हुई शीघ्रतापूर्व्वक आरही है, उसके पीछे द्रौपदी, सुभद्रा तथा बान्धवोंकी अन्यान्य स्त्रियें भी करुणा स्वरसे रोती हुई चली आती हैं। हे राजशार्दूल! उस समय भोजराजपुत्री कुन्ती कृष्णकी निकट पाके बिलखाकर गद्गद वचनसे बोली, हे महाबाहु कृष्ण! तुम्हारे ही द्वारा देवकी सुप्रजा हुई हैं, हे कृष्ण! तुम ही हमलोगोंकी एक मात्र गति तथा प्रतिष्ठा हो, यह कुरुकुल तुम्हारेही अधीन हुआ है। हे यदुप्रवीर! इसलिये जो तुम्हारा स्वस्त्रीयात्मज अश्वत्थामाके अस्त्रसे मरकर उत्पन्न हुआ है, तुम उसे जीवित करो। हे यदुनन्दन! ऐषिकास्त्र चलानेके समयमें तुमने ऐसी प्रतिज्ञा की थी, कि मृत पुत्र होनेपर भी मैं जीवित करूंगा। हे तात! देखो इस समय यह मरा हुआ पुत्र जन्मा है? हे यदुवीर! इसलिये तुम इस बालककी जिलाकर उत्तरा सुभद्रा, द्रौपदी धर्म्मपुत्र, भीम, अर्ज्जुन, नकुल दुर्द्धर्ष सहदेव और मेरी रक्षा करो। विशेष करके यह बालक पाण्डवोंका प्राण और पाण्डु तथा मेरे श्वशुरके पिण्डका अधिकारी हुआ है। हे जनार्द्दन! तुम्हारे प्रियपात्र मृत अभिमन्युका मङ्गल होवे, आज तुम इस बालककी जिलाकर उसका प्रिय कार्य्य करो। हे शत्रुसूदन! पहले अभिमन्युने प्रणयवशसे उत्तरासे जो कहा था, उसके उस वचनमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे दाशार्ह! उस समय अर्ज्जुनपुत्र अभिमन्युने विराटपुत्री उत्तरासे कहा था, हे भद्रे! तुम्हारा पुत्र मेरे मातुलकुलमें जाकर उस वृष्णि तथा अन्धकवंशमें ही धनुर्व्वेद, विचित्र अस्त्र तथा नीतिशास्त्र ग्रहण करेगा। हे तात! परवीरघाती दुर्द्धर्ष सुभद्रापुत्रने जो प्रणय निवन्धनसे इस ही प्रकार कहा था, निश्चय ही वैसा हुआ। हे मधुसूदन!

हम लोग सिर नीचा करके तुम्हारे समीप प्रार्थना करती हैं, कि इस कुरुकुलके हितके विषयमें जिस प्रकार उत्तम कल्याण हो, तुम वैसा ही करो।

पृथुलोचना पृथा अन्यान्य कुरुस्त्रियोंके सहित वृष्णिवंशीय कृष्णसे ऐसा ही कहके अत्यन्त दुःखितचित्तसे दोनों भुजा उठाके पृथ्वीपर गिरी। इधर आखोंमें आंसू भरे हुए कौरवोंकी स्त्रियें कहने लगीं, कि श्रीकृष्णके भानजेका पुत्र मरा हुआ जन्मा है। हे भारत! सबके इसही प्रकार कहते रहनेपर जनार्द्दन पृथ्वीपर गिरी हुई कुन्तीको उठाकर धीरज देने लगे।

६६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय कुन्तीके उठनेपर सुभद्रा अपने भाई कृष्णको देखकर दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर रोती हुई यह वचन बोली। हे पुण्डरीकाक्ष! देखो कुरुकुलके परिक्षीण होनेसे ही यह बुद्धिमान अर्जुनका पौत्र परिक्षीण तथा गतायु होके उत्पन्न हुआ है। द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने जो भीमसेनके वधके लिये ऐषिकास्त्र चलाया था, वह अस्त्र अर्जुन और मेरे विद्यमान रहते भी उत्तराको लगा था। हे केशव! इस समय उस पुत्र सहित अभिमन्युको न देखनेपर मेरा हृदय विदीर्ण होनेसे मुझमें ही विद्यमान रहा। धर्म्मात्मा धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव ये लोग अभिमन्युके पुत्रको मरा उत्पन्न हुआ सुनके क्या कहेंगे? हे कृष्ण! इससे मानो पाण्डव लोग द्रोणपुत्रके द्वारा अपहृत हुए। हे वार्ष्णेय! अभिमन्यु जो सब भाइयोंका प्रियपात्र था, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है; परन्तु वे लोग इस वृत्तान्तको सुनके क्या कहेंगे? क्या वे लोग द्रोणपुत्रके अस्त्रसे निर्ज्जित हुए? हे जनार्द्दन! अभिमन्युके मृतपुत्र उत्पन्न होनेसे इससे अधिक दुःखका विषय और क्या होगा? हे पुरुषोत्तम! आज मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रसन्न करती हूं, तुम इस पृथा तथा द्रौपदीको और देखो। हे माधव! जिस समय द्रोणपुत्रने पाण्डवोंकी वधुओंका गर्भ बिनाश किया, उस समय तुमने क्रुद्ध होके उससे कहा था, रे नराधम ब्रह्मबन्धु! मैं अभिमन्युके पुत्रको जीवित करके तेरी कामना बिफल करूंगा; मैं यह वाक्य सुनकर तुम्हारा बल मालूम करके तुम्हें प्रसन्न करती हूं, तुम अभिमन्युके पुत्रको जीवित करो। हे वृष्णिशार्द्दूल! यदि तुम ऐसी प्रतिज्ञा करके इस समय उस प्रतिश्रुत वचनको सफल न करोगे, तो जान रखो, कि मैं तुम्हारे सम्मुखमें निश्चय ही प्राण परित्याग करूंगी। हे वीर! यदि यह अभिमन्युका पुत्र जीवित न होगा, तो तुम्हारे जीवित रहते मैं तुम्हें लेके क्या करूंगी? हे दुर्द्धर्ष! इसलिये जैसे बादल जलकी वर्षा करके शस्यको जीवित करते हैं, वैसे ही तुम अभिमन्युके इस मरे हुए पुत्रको जीवित करो। हे केशव! तुम धर्म्मात्मा सत्यवादी सत्यपराक्रमी तथा तुम ही मिथ्या वचनको सत्य करनेमें समर्थ हो; इस मृत उत्पन्न हुए परमप्रियपात्र भानजेके पुत्रको जीवित करना, तुम्हारे पक्षमें कुछ बड़ी बात नहीं है, क्यों कि तुम इच्छा करनेसे त्रिलोकवासी समस्त मृत लोगोंको जीवित कर सकते हो। हे कृष्ण! मैं तुम्हारा प्रभाव जानती हूं, इस ही लिये तुम्हारे समीप प्रार्थना करती हूं; तुम पाण्डुपुत्रोंके विषयमें यह परम अनुग्रह प्रकाशित करो। हे महाबाहो! बहिन जानके तथा हतपुत्रा अथवा शरणमें आई हुई समझके मेरे विषयमें तुम्हें दया करनी उचित है।

६७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र! जब सुभद्राने ऐसा कहा, तब केशिनिसूदन कृष्णने दुःखसे मूर्च्छित होकर ऊंचे स्वरसे 'ऐसा ही

होगा,' इतना बचन कहके वहां पर सब लोगोंको हर्षित किया। जैसे सूर्य्यकी धूपसे आर्त्त हुआ पुरुष जल सेचनसे सुखी होता है, वैसे ही उस समय पुरुषश्रेष्ठ कृष्णके उस बचनसे सब कोई अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। अनन्तर उन्होंने शीघ्र ही तुम्हारे पिताके जन्मगृहमें प्रवेश करके देखा, कि वह गृह सफेद मालासे बिधिपूर्व्वक सज्जित चारों ओर जलभरे कलशोंसे युक्त है, घृत, तिन्दुक, वृक्षोंके पल्लव, सर्षप, बिमल अस्त्र और अग्नि यथायोग्य स्थानपर स्थित हैं, वहांपर सेवा टहलके लिये बूढ़ी रमणीय परिचारिका खड़ी हैं, चिकित्साके लिये उत्तम निपुण वैद्य बिद्यमान हैं और कुशल पुरुषोंके द्वारा रक्षोघ्न वस्तुएं बिधिपूर्व्वक स्थापित होरही हैं। हृषीकेश तुम्हारे पिताका ऐसा जन्मगृह देखकर अत्यन्त हर्षित होके धन्य धन्य कहने लगे। वृष्णिनन्दन कृष्णके ऐसा कहनेपर द्रौपदी शीघ्रताके सहित बिराटनन्दिनी उत्तराके पास जाकर उससे बोली, हे भद्रे! ये तुम्हारे श्वशुर पुराण ऋषि अचिन्त्यात्मा अपराजित मधुसूदन कृष्ण तुम्हारे निकट आरहे हैं। उत्तरा देवी द्रौपदीका बचन सुनके शोकयुक्त बचन और आंसूके जलको रोककर देवताकी भांति कृष्णको देखके अवगुण्ठनवती हुई। अनन्तर वह तपस्विनी बिराटपुत्री आर्त हुए गोविन्दको देखकर शोकपूरित हृदय होकर करुणायुक्त बचनसे इस प्रकार बिलाप करने लगी। हे पुण्डरीकाक्ष! देखिये, मैं बालक बिहीन हुई हूं; अभिमन्युकी तथा मुझे भी मरी हुई जानो। हे मधुसूदन! मैं सिर नीचा करके आपके निकट यह प्रार्थना करती हूं, कि आप द्रोणपुत्रके अस्त्रसे जले हुए मेरे इस पुत्रको जीवित करिये, हे पुण्डरीकाक्ष! यदि धर्म्मराज, भीमसेन अथवा आप ऐसा कहते, कि ऐषिकास्त्र इस अज्ञानवती गर्भिणीका बध करे, तो उस समय मेरा बिनाश होनेसेही भला होता, क्योंकि तब ऐसी घटना न होती। दुर्बुद्धि द्रोणपुत्रने ब्रह्मास्त्रसे इस गर्भके बालकको मारके कौनसा फल पाया? हे शत्रुनिबर्हण! मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रसन्न करती हुई प्रार्थना करती हूं, कि आप इस बालकको जीवित करिये। हे गोबिन्द! यदि यह बालक जीवित न होगा, तो मैं आपके सामने ही प्राण परित्याग करूंगी। हे साधो! इस बिषयमें मेरे मनमें जो सब मनोरथ उत्पन्न हुए थे, द्रोणपुत्रने उसे नष्ट किया है, तब किस लिये प्राण धारण करूंगी? हे कृष्ण! पहले मेरी यह इच्छा थी, कि मैं आपको प्रणाम करूंगी, परन्तु उस समय मेरे पूर्णगर्भा रहनेसे वह बिफल हुआ है। हे पुरुषर्षभ! मेरे मनमें जो सब मनोरथ उत्पन्न हुए थे, चञ्चललोचना यह पुत्र मृत होनेसे वे सब मनोरथ निष्फल हुए हैं। हे मधुसूदन! वह चपलाक्ष आपके परम प्रियपात्र थे, देखिये उनका यह पुत्र ब्रह्मास्त्रसे मरा हुआ है; इसका पिता जैसा कृतघ्न और नृशंस था, यह बालक भी वैसा ही हुआ, क्योंकि आज इस बालकने पाण्डवी श्री परित्याग करके यमके स्थानमें गया है। हे केशव! पहले मैंने उनके समीप ऐसी प्रार्थना की थी, हे बीर अभिमन्यु! यदि तुम युद्धभूमिमें मरोगे, तो उसी समय मैं तुम्हारे निकट गमन करूंगी; हे कृष्ण! मैंने नृशंसताके वशमें होकर जीनेकी आशासे ऐसा नहीं किया; इस समय मेरे वहां जानेपर वह फाल्गुनि मुझे क्या कहेंगे?

६८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह पुत्राभिलाषिणी तपस्विनी उत्तरा कातर होके पागलिनीकी भांति करुण वाक्यसे इस ही प्रकार बिलाप करके पृथ्वीपर गिरी। दुःखसे आर्त्त कुन्ती और अन्यान्य भरतकुलकी स्त्रियें उस पुत्र और वस्त्ररहित उत्तराको पृथ्वीपर गिरती

हुई देख ऊंचे स्वरसे रोने लगीं। हे राजेन्द्र! उस समय पाण्डवोंके गृह मुहूर्त्तभरके बीच आर्त्तस्वरसे निनादित होकर दर्शनीय हुए। हे राजन्! उस समय पुत्रशोकसे सन्तापित बिराट-पुत्री उत्तरा मूर्च्छित हुई, अनन्तर वह सावधान होकर उस मरे हुए पुत्रको गोदीमें लेकर उससे कहने लगी, कि तुम धार्म्मिकके पुत्र होकर वृष्णिप्रवीर कृष्णको प्रणाम न करनेसे तुम्हें जो अधर्म्म होता है, उसे क्या तुम नहीं जानते हो? हे पुत्र! तुम अपने पिताके निकट जाकर मेरा यह बचन उनसे कहना, कि हे बीर! आप प्राणियोंके मृत्युकाल उपस्थित न होतेही क्यों अकालमें मृत हुए? आपके सदृश पति और पुत्रका बिरह होनेसे मेरा मरनाही कल्याण-कारी है; इतनेपर भी जो अबतक मैं जीवित हूं, उससे मेरा कौनसा मङ्गल होगा? हे महा-भुज! मैं धर्म्मराजको अनुमति लेकर घोर बिष-भक्षण अथवा अग्निमें प्रवेश करूंगी।

हाय! मैं पुत्र और पतिसे हीन हुई हूं, तोभी मेरा यह दुर्व्वर हृदय सहस्र टूकड़े होके न फट गया? हे पुत्र! तुम उठकर दुःखित शोकसे आर्त्त बिपद ग्रस्त दीन तथा शोकमें डूबी हुई सात्वतवंशीय इस अपनी प्रपितामही आर्य्या कुन्ती, तपस्विनी द्रौपदी और व्याधाके द्वारा बिद्ध हुई हरिनोकी भांति मुझे अवलो-कन करो। हे पुत्र! तुम उठके अपने चपलनेत्र पिताके मुखमण्डलकी भांति बुद्धिमान् लोक-नाथके पद्मपलाश सदृशनेत्र सम्पन्न बदनमण्डल देखो। उत्तराके पृथ्वीमें गिरके इसही प्रकार बिलाप करती रहनेपर उन स्त्रियोंने उसे देख-कर अत्यन्त दुःखित होकर फिर उसे उठाया। तब मत्स्यराज पुत्रीने उठकर धीरज अव-लम्बनकर हाथ जोड़के पुण्डरीकाक्ष कृष्णको प्रणाम किया।

अनन्तर वह पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण उत्तराका बहुत सा बिलाप बचन सुनके जलस्पर्श करके ब्रह्मास्त्र प्रतिसंहार करने लगे। बिशुद्धात्मा अच्युत दाशार्ह कृष्ण बालकके जीवनदानकी प्रतिज्ञा करके अखिल भूमण्डलको सुनाकर बोले, हे उत्तरा! मैं मिथ्या नहीं कहता, मैंने जो कहा है, वह सत्य होगा, देखो सबके सामनेही मैं इस बालकको जिलाता हूं। जब कि पहले मैंने किसी प्रकार तनिकभी मिथ्या नहीं कहा तथा युद्धमें पराजित नहीं हुआ हूं, तब उस पुण्यबलसेही यह बालक जीवित होवे। जिस प्रकार धर्म्म और ब्राह्मणगण मुझे प्रिय हैं, अभिमन्युका पुत्रभी वैसाही प्रिय है; इस-लिये यह मरके जन्मा हुआ पुत्र जीवित हो, जो मैंने बिजय अर्ज्जुनके सङ्ग कभी बिरोध न किया हो, तो उसही सत्यके अनुसार यह मरा हुआ पुत्र जीवित होवे। सत्य और धर्म्म मुझमें सदा प्रतिष्ठित हो, तो अभिमन्युका यह मृतपुत्र जी जाय। जो कंस और केशी धर्म्म पूर्व्वक मेरे हाथसे मारे गये हों, तो उसही सत्यधर्म्मके अनु सार यह मरा हुआ बालक जीवित होवे। हे भरतश्रेष्ठ! जब कृष्णने इतना बचन कहा, तब वह बालक धीरे धीरे सचेत होकर अङ्ग प्रत्यङ्ग सञ्चालन करने लगा।

७८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब कृष्णने उस ब्रह्मास्त्रकोप्रतिसंहार किया, तब तुम्हारे पिताके तेजप्रभावसे वह गृह प्रदीप्त हुआ। अनन्तर राक्षसगण उस गृहको छोड़के भाग गये; इधर आकाशसे केशवके बिषयमें साधुबाद होने लगा। हे प्रजानाथ! उस समय उस अस्त्रके प्रज्वलित होकर पितामहके निकट जानेपर तुम्हारे पिता फिर जीवित हुए। अनन्तर जब वह बालक निज अङ्गोंको सञ्चालन करने लगा, तब भरत-कुलकी स्त्रियें बल और उत्साहके सहित हर्ष प्रकाश करने लगीं। वे सब हर्षित होकर कृष्णकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंसे स्वस्तिबाचन

कराके जनार्द्दनकी प्रशंसा करने लगीं। जैसे पार जानेवाले लोग नौका पाके आनन्दित होते हैं, वैसेही कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा प्रभृति भरतकुलकी सब स्त्रियें मृत बालकको जीवित देखकर हर्षित हुईं। वहांपर मल्ल, नट, ज्योतिषी, सुखशयन, जिज्ञासु, सूत और मागधगण कुरुवंशके स्तवसूचक आशीर्व्वचनके द्वारा जनार्द्दनकी स्तुति करने लगे। हे भारत! उत्तराने समयके अनुसार उठके प्रसन्नचित्त होकर पुत्रके सहित यदुनन्दन कृष्णको प्रणाम किया। कृष्णने अत्यन्त हर्षित होकर उसे बहुतसा रत्न प्रदान करते हुए अन्यान्य वृष्णिवंशियोंकी भांति उसका नामकरण किया। हे महाराज! भरतकुल क्षीणप्राय होनेपर अभिमन्युका पुत्र उत्पन्न हुआ, उस समत सत्यसन्ध जनार्द्दन कृष्णने कहा, 'इसका नाम परीक्षित होवे'; इसही लिये तुम्हारे पिताका परीक्षित नाम हुआ।

हे प्रजानाथ! तुम्हारे पिता समयके अनुसार बर्द्धित होकर सबके चित्तको आनन्दित करने लगे। हे वीर! आपके पिताकी एक महीनेकी अवस्था होनेपर पाण्डवलोग बहुतसा रत्न लेकर हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए; वृष्णिपुङ्गवगण उन लोगोंकी आगमन वार्त्ता सुनके उन्हें देखनेके लिये गृहसे बाहिर हुए; हे नरनाथ! जनपद तथा पुरवासी पुरुषोंने अनेक प्रकारकी माला, विचित्र पताका, अनेक भांति की ध्वजा और पूजाकी विविध वस्तुओंसे हस्तिना नगर, राजभवन तथा देवालयोंको अलंकृत किया। अनन्तर विदुरने पाण्डुपुत्रोंकी परम प्रियकामनासे राजमार्गोंको पुष्पमालाके द्वारा सुशोभित करनेके लिये आज्ञा किया। हे महाराज! उस समय नाचनेवाले नर्त्तक और गीतगानेवालोंके सङ्गीत शब्दसे राजनगरी प्रतिध्वनित होकर शब्दायमान समुद्रकी भांति शोभित हुई। वहांपर चारों ओर निर्ज्जन स्थानोंमें सस्त्रीक बन्दिगणके स्तुतिवाद करते रहनेसे उस समय वह राजमन्दिर कुबेरके भवनकी भांति प्रकाशित होने लगा। सब पताका वायुके द्वारा सञ्चालित होकर मानो उत्तर और दक्षिण कुरुगणको प्रदर्शन करने लगीं और राजआराधिकृत पुरुषगण उस समय इस प्रकार घोषणा करने लगे, कि पाण्डवगण रत्न लानेके निमित्त जाकर सब राष्ट्रोंमें विहार करके आज हस्तिनानगरमें प्रवेश करेंगे।

७० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शत्रुसूदन श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंकी आगमनवार्त्ता सुनके उन्हें देखनेकी इच्छासे मन्त्रियोंके सहित उनके समीप गये। हे राजन्! पाण्डवोंने वृष्णिवंशियोंके सङ्ग धर्म्मपूर्व्वक मिलकर नगरमें प्रवेश किया। उस समय उस महासेनामें स्थित वाहनोंके खुर तथा रथके शब्दसे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और समस्त जगत् परिपूरित हुआ। अनन्तर पाण्डव लोग रत्नकोष आगे करके प्रसन्नचित्तसे मन्त्रियों और सुहृदोंके सहित निज पुरमें प्रविष्ट हुए; वे सब लोग मिलकर न्यायके अनुसार प्रजानाथ धृतराष्ट्रके समीप अपना अपना नाम कहकर उनके दोनों चरणोंकी वन्दना करने लगे। हे राजेन्द्र! भरतसत्तम पाण्डवगण धृतराष्ट्रकी चरणवन्दना करके क्रमसे सुवलनन्दिनी गान्धारी, कुन्ती और वैश्यापुत्र विदुरकी पूजा करतेहुए पुरवासियोंसे पूजित होकर विशेष रूपसे प्रकाशित होने लगे।

फिर उन लोगोंने तुम्हारे पिताका वह परमाश्चर्य्य विचित्र अद्भुत जन्मवृत्तान्त और बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैसा विस्मयकर कर्म्म सुनके पूजनीय देवकीपुत्र कृष्णकी पूजा की। अनन्तर कुछ दिनके बाद सत्यवतीपुत्र व्यासदेव हस्तिनापुरमें आये। कुरुद्वह पाण्डवगण वृष्णि तथा अन्धकवंशीय पुरुषोंके सहित व्यासदेवकी पूजा

करके उनकी उपासना करने लगे; तब वहां धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर व्यासके समीप अनेक भांतिकी वार्त्ता करके उनसे बोले, हे भगवन्! आपकी कृपासे ये सब रत्न लाये गये हैं, मैं उन सब रत्नोंको अश्वमेध यज्ञमें व्यय करनेकी इच्छा करता हूं। हे मुनिसत्तम! हम सब कोई आपके तथा कृष्णके वशमें हैं, इसलिये यह प्रार्थना करता हूं, कि उस विषयमें आप मुझे अनुमति दीजिये।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे राजन्! मैं तुम्हें अनुमति देता हूं, इसके अनन्तर यदि और कुछ कार्य्य हो, तो उसे तुम पूरा करके विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करो। हे राजेन्द्र! अश्वमेध यज्ञ सब पापोंसे पवित्र करता है, इसलिये तुम उस यज्ञको करनेसे निश्चय ही पापरहित होगे; इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस धर्म्मात्मा कुरुराज युधिष्ठिरने व्यासदेवका ऐसा वचन सुनकर अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये सम्मति की। वाग्मिवर राजा युधिष्ठिर कृष्णद्वैपायन मुनिसे सब वृत्तान्त कहके वसुदेवपुत्र कृष्णके निकट जाकर उनसे बोले, हे पुरुषसत्तम! तुम्हारे द्वारा देवकी उत्तम प्रजावती हुई हैं, हे महाबाहो! मैं तुमसे जो कहता हूं, तुम उसे सुनो। हे यदुनन्दन! हम लोग तुम्हारे प्रतापसे अर्ज्जित भोग्य वस्तुओंको भोगते हैं, तुमने ही पराक्रम और बुद्धिसे इस पृथ्वीको जीता है; तुमही हम लोगोंके परम गुरु हो, हे दाशार्ह! इसलिये तुम्हें स्वयं यज्ञमें दीक्षित होना योग्य है, क्यों कि तुम्हारे दीक्षित होनेसे मैं निष्पाप होऊंगा। मैंने यह निश्चय जाना है, कि तुमही यज्ञ, तुमही अक्षर, तुमही धर्म्म, तुमही प्रजापति और तुम ही सब प्राणियोंकी गति हो।

श्रीकृष्ण बोले, हे अरिदमन! आपको ऐसा कहना चाहिये, परन्तु मुझे ऐसा निश्चय ज्ञान है, कि आप ही सब भूतोंको गति हैं; और आप कुरुवीर पुरुषोंकी आदि होकर इस लोकमें धर्म्मरूपसे विराजते हैं। हे राजन्! हम सब कोई आपके गुणीभूत हुए हैं, हम आपको ही अपना गुरु जानते हैं; इसलिये मैं कहता हूं, कि आप इस यज्ञमें दीक्षित होकर जो जो करनेकी इच्छा हो, उन कार्य्योंके लिये मुझे आज्ञा करिये। हे अनघ! मैं आपके समीप सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं भीमसेन, अर्ज्जुन और माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, हम सब कोई आपके सब कार्य्य करेंगे। हे राजन्! आपका इष्ट साधन होनेसे सबकी अभिलाष पूर्ण होगी।

७१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मपुत्र मेधावी युधिष्ठिरने कृष्णका ऐसा वचन सुनके व्यासदेवको आह्वान करके कहा, कि आप अश्वमेध यज्ञके समयको विशेष रीतिसे जानते हैं, इसलिये उस ही समयमें मुझे दीक्षित करिये; क्यों कि यह मेरा यज्ञ आपहीके अधीन है।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे कौन्तेय! मैं पैल और याज्ञवल्क्य,—हम लोग जिस कार्य्यका जो विधान और समय है उसे निरूपण किया करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! चैत्रपूर्णिमामें तुम्हारी दीक्षा होगी, इसलिये तुम लोग यज्ञकी सामग्रियोंको इकट्ठी करो। अश्वविद्या जाननेवाले सूत और ब्राह्मण लोग तुम्हारी यज्ञसिद्धिके लिये मेध्य अश्व-परीक्षा करें। हे पार्थिव! घोड़ेकी परीक्षा होनेपर शास्त्रके अनुसार उसे छोड़ो, वह घोड़ा तुम्हारे प्रदीप्त यशको प्रदर्शित करते हुए सागराम्बरा पृथ्वीपर भ्रमण करे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मवादी व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके "वही करूंगा" इसही प्रकार स्वीकार करके श्रीव्यासदेव मुनिके वचनके अनुसार सब कार्य्य करने लगे। हे महाराज! सामग्रियोंके

एकत्रित होनेपर धर्मात्मा धर्मपुत्र नरनाथ युधिष्ठिरने उन सञ्चित सामग्रियोंको इकट्ठो करके कृष्णद्वैपायन मुनिसे सब वृत्तान्त कहा। तब महातेजस्वी व्यासदेव मुनि धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे बोले, कि समय और योगके अनुसार हम लोग तुम्हारी दीक्षाके निमित्त सज्जित हुए हैं; अब तुम स्फ अर्थात् काष्ठका खड्ग, कूर्च, आसनके लिये कुशमुष्टि और यज्ञकी अन्यान्य उपकरण सामग्रियोंको सुवर्णके द्वारा निर्म्माण कराओ। आजही पृथ्वीके बीच यथा-क्रमसे घोड़ा छोड़ो और विधिपूर्व्वक तथा शास्त्रके अनुसार जिसमें घोड़ा उत्तम रीतिसे रक्षित होवे उसका उपाय करो।

युधिष्ठिर बोले, हे ब्रह्मन्! घोड़ा उत्सृष्ट होकर जिस भांति पृथ्वीमें विचरण कर सके, आप उस उपायका विधान करिये। हे मुनि! घोड़ाके स्वेच्छापूर्व्वक पृथ्वीपर विचरण करते रहनेपर कौन पुरुष उसकी रक्षा करेगा, वहभी आप निश्चय करके कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र! कृष्ण-द्वैपायन व्यासदेवने युधिष्ठिरका ऐसा बचन सुनके कहा, कि भीमसेनके भाई सब धनुर्द्धारि-योंमें श्रेष्ठ जिष्णु सहिष्णु धृष्णु अर्ज्जुन उस अश्वकी पालन करेंगे। निवातकवचके नाशक धनञ्जय पृथ्वीको जीतनेमें समर्थ हैं, उनके पास दिव्यअस्त्र, दिव्य संहनन, दिव्य धनुष और दिव्य बाण विद्यमान हैं; इसलिये वह अर्ज्जुन ही घोड़ेके अनुगामी होवें। हे राजेन्द्र! वह धर्म्मार्थ कुशल और सर्व्वविद्या विशारद हैं, इस लिये वही शास्त्रके अनुसार तुम्हारे घोड़ेको विचरण करानेमें समर्थ होगा। हे पृथ्वीनाथ! अमित पराक्रमी कुन्तीपुत्र भीमसेन और नकुल राज्यकी रक्षा करें। महायशस्वी बुद्धिमान सहदेव सब कुटुम्बतन्त्रको विधिपूर्व्वक सावधान करें। जब व्यासदेवने युधिष्ठिरसे इन सब कार्य्योंको विधिपूर्व्वक समाधान करनेको कहा, तब उन्होंने अर्ज्जुनको घोड़ेकी रक्षाके लिये नियुक्त किया।

युधिष्ठिर बोले, हे अर्ज्जुन! आओ तुम इस घोड़ेकी रक्षा करनेमें सब प्रकारसे यत्नवान् रहो। हे वीरश्रेष्ठ! तुम्हारे अतिरिक्त कोई मनुष्यही इसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। हे महाबाहो! यदि कोई कोई राजा तुम्हारे विरुद्ध आचरण करनेमें प्रवृत्त हों, तो जिस भांति तुम्हारे सङ्ग उनका संग्राम न हो, वही उपाय करना और उन राजाओंको मेरे इस यज्ञका वृत्तान्त कहके यज्ञके समयमें उन्हें आनेके लिये निमन्त्रण करना।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा युधि-ष्ठिरने भाई अर्ज्जुनसे ऐसा कहके भीम और नकुलको नगरकी रक्षामें नियुक्त किया और महीपाल धृतराष्ट्रकी अनुमति लेकर यूथपति सहदेवको कुटुम्बतन्त्रमें नियोग किया।

७२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दीक्षाका समय उपस्थित होनेपर उन महाऋत्विकोंने राजाको विधिपूर्व्वक दीक्षित किया। पाण्डुपुत्र महाते-जस्वी धर्म्मराज पशुबन्धनके काष्ठोंको संग्रह करके ऋत्विकोंके सहित समधिक प्रकाशित होने लगे। ब्रह्मवादी अमिततेजस्वी स्वयं व्यास देवके द्वारा विधि और शास्त्रके अनुसार अश्व-मेधके लिये वह घोड़ा छोड़ा गया। धर्म्मराज युधिष्ठिर दीक्षित होकर गलेमें सुवर्णकी माला तथा सुवर्णकण्ठी पहरके उस समय प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे। हे पृथ्वी-पति! उनके ऋत्विकगण भी वैसा ही वेष धारण करके उस ही प्रकार शोभित हुए। धनंजय अर्ज्जुन सफेद घोड़ेपर चढ़के उस श्याम-कर्ण घोड़ेका अनुसरण करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति शोभायमान हुए। हे नरेन्द्र! जब अर्ज्जुन घोड़ेके अनुगामी हुए, तब वेद

जाननेवाले बहुतसे ब्राह्मण तथा अन्य पुरुषोंने उनसे कहा, "तुम इस समय गमन करो, तुम्हारा मङ्गल हो, फिर आगमन करना; हम लोगोंने युद्धके समय इन्हें इस प्रकार नहीं देखा था, यह जो भयङ्कर निर्ह्रादयुक्त धनुष दीखता है, इसहीका नाम गाण्डीव है।" हे महीपाल! चर्म्मपादुका और अङ्गुलीत्राणधारी अर्जुन धर्म्मराजकी आज्ञानुसार गाण्डीव धनुष चढ़ाकर हर्षपूर्व्वक उस घोड़ेका अनुसरण करने लगे। हे राजन्! आबालवृद्ध पुरवासीवृन्द घोड़ेका अनुसरण करनेवाले कुरुकुलश्रेष्ठ धनञ्जयको देखनेके लिये आये, उस समय उन लोगोंकी परस्पर भीड़से अत्यन्त ही उष्मा उत्पन्न हुई। हे महाराज! उसके अनन्तर उस समय घोड़ेके अनुगामी अर्जुनके दर्शनकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके कोलाहल शब्दसे दशों दिशा तथा आकाशमण्डल परिपूर्ण होगया; वे लोग कहने लगे, कि यह प्रदीप्त घोड़ा जा रहा है, इसके पीछे वह महाबाहु कुन्तीपुत्र धनञ्जय उत्तम धनुष धारण करके गमन करते हैं। महाबुद्धिमान् जिष्णु धनञ्जयने उन लोगोंका ऐसा ही वचन सुना। हे भारत! दूसरे पुरुषोंने अर्जुनको देखकर यह कहना आरम्भ किया। हे अर्जुन! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम गमन करो, फिर आना। हम लोगोंने युद्धके समयमें अर्जुनको इस प्रकार नहीं देखा था और भीम निर्ह्रादयुक्त गाण्डीव धनुष भी नहीं देखा था। हे अर्जुन! तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो, अरिष्ट दूर हो, तुम्हारा मार्ग भयविहीन होवे। हमलोग ऐसी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारे लौटनेपर फिर हम लोग इसी प्रकार तुम्हें देखें। हे भरतर्षभ! महाबुद्धिमान अर्जुन पुरुष और स्त्रियोंका ऐसा मधुर वचन सुनके चलने लगे। धर्म्मराजकी आज्ञानुसार शान्ति करनेके निमित्त यज्ञकार्य्यमें प्रवीण याज्ञवल्क्यके शिष्य वेदपारग ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने महात्मा धनञ्जयके सङ्ग गमन किया। हे महाराज! पांडवोंके अस्त्र-प्रभावसे जो सब देश जीते गये थे, घोड़ा उन्हीं देशोंमें विचरने लगा।

हे वीर! वहांपर पांडुपुत्र अर्जुनका जिस प्रकार विचित्र महायुद्ध हुआ था, उसे कहूंगा। हे राजन्! वह घोड़ा पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए जिस प्रकार उत्तरसे पूर्व्व दिशामें आया था, उसे सुनो। हे महाराज! वह घोड़ा तथा श्वेत घोड़ेपर चढ़े हुए महारथी अर्जुन क्रमसे राजाओंके राष्ट्रको विमर्द्दित करके भ्रमण करते रहनेपर उस समय जिन सब हतबान्धव क्षत्रियोंने उनके सङ्ग युद्ध किया था, उसकी गिनती नहीं हो सकती। हे महाराज! पहिलेके निर्ज्जित धनुर्द्धारी बहुतेरे सैकड़ों किरात, यवन अनेक भांतिके म्लेच्छ और मद्गुद नरवाहन आद्य राजा लोग युद्धदुर्म्मद होकर पांडवपुत्रसे लड़नेके लिये उनके समीप आये। हे पृथ्वीनाथ! वहां अनेक देशोंके समागत राजाओंके संग जिस प्रकार अर्जुनका युद्ध हुआ था और उस युद्धमें दोनों ओरकी जो समस्त महासेना प्रतप्त हुई थी, वह सब मैं तुमसे विशेष रीतिसे कहता हूं।

७३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पहिले, पांडवोंने त्रिगर्त्तवासी जिन सब लोगोंको मारा था, उनके महारथी पुत्र और पौत्रगण अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे। उन महावीर त्रिगर्तोंने पांडवोंका यज्ञीय घोड़ा आया हुआ जानके तूणीर बांधकर घोड़ोंपर चढ़के उस अश्वको घेरकर पकड़ना चाहा। तब शत्रुसूदन अर्जुनने उन लोगोंकी चिकीर्षा जानके सान्त्वना पूर्व्वक उन्हें निवारण किया। वे सब कोई अर्जुनके वचनका अनादर करके वाण चलाने लगे; तब अर्जुनने तम तथा रजोगुणसे युक्त उन वाणोंको निवारण किया और हंसके बोले, हे अधर्म्मज्ञगण! यदि तुम लोग निज जीवनकी कुशल चाहते

हो, तो निवृत्त हो जाओ। 'चलनेके समयमें धर्म्मराजने अर्ज्जुनसे कहा था। हे पार्थ! हतबान्धव राजाओंके विरुद्धाचारी होनेपर भी तुम उन्हें न मारना,' उन्होंने धर्म्मराजका वही बचन स्मरण करके उन लोगोंसे कहा, कि तुम लोग निवृत्त हो जाओ; परन्तु वे लोग निवृत्त न हुए। तब वह शरजालसे त्रिगर्त्तराज सूर्य्यवर्म्माको जीतकर हंसने लगे। तिसके अनन्तर वे लोग रथ तथा रथचक्रको घरघराहटसे सब दिशाओंको परिपूरित करते हुए अर्ज्जुनके निकट आये। अनन्तर सूर्य्यवर्म्माने अपनी लघुशस्त्रता प्रकाशित करके अर्ज्जुनके ऊपर एक सौ नतपर्व्व बाण चलाया और उसके अनुयाई अयान्य धनुर्द्धारी पुरुष अर्ज्जुनके बधकी अभिलाष करके बहुतसा बाण बरसाने लगे। हे महाराज! उस समय अर्ज्जुनने धनुषसे छूटे हुए कई सौ बाणोंसे उनके चलाये हुए बाणोंको काटके उन्हें पृथ्वीमें गिरा दिया। सूर्य्यवर्म्माके गिरनेपर उसका भाई युवा तेजस्वी केतुवर्म्मा भ्राताके निमित्त यशस्वी अर्ज्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ। परवीरघाती विभत्सु अर्ज्जुनने केतुवर्म्माको युद्ध करनेके लिये आया हुआ देखकर शिकल किये हुए बाणोंसे उसे घायल किया। केतुवर्म्माके घायल होनेपर महारथ धृतवर्म्मा शीघ्रगामी रथपर चढ़के आया और जिष्णु अर्ज्जुनको बाणोंसे छिपा दिया; महातेजस्वी गुड़ाकेश अर्ज्जुन उस बालक धृतवर्म्माका हस्तलाघव देखकर परम सन्तुष्ट हुए। जब धृतवर्म्मा बाण बरसाने लगा, उस समय इन्द्रपुत्र अर्ज्जुन उसके बाणग्रहण और सन्धानको लक्ष्य करनेमें समर्थ न हुए। बल्कि वह धृतवर्म्माको हर्षित करते हुए मुहूर्त्तभर मनहीमन उसकी प्रशंसा करने लगे; महाबाहु कुरुप्रवीर धनञ्जयने सर्पकी भांति क्रुद्ध उस धृतवर्म्माको मानो उपहास करते हुए प्रीतिपूर्व्वक उसका प्राण संहार न किया। उस समय धृतवर्म्माने अमित तेजस्वी अर्ज्जुनसे इस प्रकार रक्षित होकर उनके ऊपर प्रदीप्त बाण चलाया; धनञ्जयका हाथ धृतवर्म्माके द्वारा अत्यन्त बिद्ध होनेसे मोहवशसे उनके हाथसे गाण्डीव धनुष पृथ्वीपर गिरा। हे विभु! सव्यसाचीके हाथसे गाण्डीव धनुष गिरनेसे उस समय उसका इन्द्रधनुषके सदृश रूप प्रकट हुआ। हे महाराज! युद्धमें उस दिव्य महा धनुषके गिरनेपर धृतवर्म्मा ऊंचे स्वरसे हंसने लगा। अनन्तर जिष्णु धनञ्जय क्रोधित हो हाथसे रुधिर पोंछकर उस दिव्य धनुषको ग्रहण करके बाण बरसाने लगे। तब धनञ्जयके वैसे कर्म्मकी प्रशंसा करनेवाले अनेक प्रकारके प्राणियोंका हलहला शब्द आकाश मण्डलमें प्रकट हुआ। तिसके अनन्तर त्रिगर्त्तवासी योद्धाओंने कालान्तक यमकी भांति क्रुद्ध उस जिष्णु धनञ्जयको घेर लिया। अन्तमें उन लोगोंने धृतवर्म्माकी जयप्राप्तिके निमित्त उसके समीप जाकर गुड़ाकेशकी निन्दा करने लगे; उससे उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर महेन्द्रवज्र सदृश कई सौ आयत बाणोंसे शीघ्र ही उनकी अठारह सेना संहार की। धनञ्जय उस सारी सेनाको भागती हुई देखकर ऊंचे स्वरसे हंसते हुए शीघ्रतापूर्व्वक सर्पसदृश बाणोंसे शत्रुओंका संहार करने लगे, महाराज! वे त्रिगर्त्तबासी महारथगण अर्ज्जुनके बाणोंसे अर्द्दित होकर कई ओर भागने लगे। अनन्तर वे लोग संशप्तक निसूदन पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयके निकट आके उनसे बोले, हे पार्थ! हम सब तुम्हारे किङ्कर तथा अनुवर्त्ती हुए, हम सब प्रेष्य होकर स्थित हैं, आप हम लोगोंको आज्ञा करिये। हे कौरवनन्दन! हम लोग तुम्हारा समस्त प्रियकार्य्य करेंगे। उस समय अर्ज्जुनने उन त्रिगर्त्तबासियोंको इस प्रकार आज्ञा की, हे नृपगण! मैंने तुम लोगोंके जीवनकी रक्षा की है, तुम लोग मेरे शासनको प्रतिग्रह करो।

७४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर वह उत्तम घोड़ा प्रागज्योतिषपुरमें जाकर विचरने लगा, तब भगदत्तका पुत्र रणकर्कश वज्रदत्त वहां उपस्थित हुआ। पृथ्वीपति वज्रदत्तने अपने देशमें आये हुए उस पाण्डुपुत्रके घोड़ोंको पकड़नेकी इच्छा की। हे राजन्! अनन्तर वह भगदत्तका पुत्र नगरसे निकलकर समागत घोड़ेको उन्माथित करते हुए नगरकी ओर चला। उस समय कुरुश्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन उसे देखकर सहसा गाण्डीव धनुष चढ़ाकर उसकी ओर दौड़े। तब वीर वज्रदत्त धनञ्जयके बाणोंसे घायल तथा विमोहित होकर घोड़ेको छोड़के अर्जुनकी ओर दौड़ा। अनन्तर वह नृपश्रेष्ठ वज्रदत्त बाणोंसे घायल होकर नगरमें जाके फिर महामातङ्गपर चढ़के नगरसे बाहिर हुआ। उस समय उसके ऊपर पाण्डुर आतपत्र धरा था और अङ्गपर सुफेद चंवर सञ्चालित होता था। अनन्तर वह महारथ पार्थके समीप पहुंचके बाल्यस्वभाव तथा मोहनिबन्धनसे रणभूमिमें युद्धके लिये अर्जुनको आह्वान करने लगा। हे महाराज! उस वज्रदत्तने अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्वेताश्व अर्जुनके निकट अचल सदृश शास्त्रकी भांति कल्पित संग्राममें विषम युद्धदुर्म्मद महामेघकी भांति मदचूनेवाले मतवारे हाथीको चलाया। उस समय वह महाबली गजराज वज्रदत्तके अङ्कुशकी ताड़नासे मानो आकाशमार्गमें उड़ता हुआ मालूम हुआ। हे महाराज! अर्जुन उस हाथीको आया हुआ देखके अत्यन्त क्रुद्ध हुए, और पृथ्वीपर रहके हाथीपर चढ़े हुए उस वज्रदत्तके सङ्ग युद्ध करने लगे। तब वज्रदत्तने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र ही वेगवान शलभ समूहकी भांति अर्जुनके ऊपर अग्निसदृश बहुतसे तोमर चलाये। उस समय अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छुटे हुए बाणोंके समीपमें आये हुए तोमरोंको आकाशमें ही दो तीन टुकड़े कर डाला। भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तने तोमरोंको कटते हुए देखकर शीघ्रतापूर्व्वक बहुतसे असक्त बाण अर्जुनकी ओर चलाये। अनन्तर अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र ही वज्रदत्तके ऊपर शीघ्रगामी रुक्मपुङ्ख बाण छोड़ा। वह महातेजस्वी अर्जुनके बाणोंसे उस महायुद्धमें अत्यन्त घायल तथा विद्ध होकर पृथ्वीपर गिरा, परन्तु उसकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। तिसके अनन्तर वह जयकी इच्छा करनेवाला वज्रदत्त मोह परित्याग करके सावधानचित्तसे फिर युद्धभूमिमें अर्जुनकी ओर उस श्रेष्ठ हाथीको चलाया। जिष्णु धनञ्जयने अत्यन्त क्रुद्ध होकर बहुतसे आशीविष तथा अग्निसदृश बाण उस हाथीके ऊपर चलाया। उस समय वह श्रेष्ठहस्ती बाणोंसे विद्ध होकर रुधिर भरते हुए गेरूके झरनेयुक्त पर्व्वतकी भांति प्रकाशित हुआ।

७५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतर्षभ! जिस प्रकार पहले वृत्रासुरके सङ्ग इन्द्रका संग्राम हुआ था, उसही भांति राजा वज्रदत्तके सङ्ग अर्जुनका यह तीन रात्रितक युद्ध हुआ था। अनन्तर चौथे दिन महाबली वज्रदत्तने ऊंचे स्वरसे हंसकर अर्जुनसे कहा, कि अर्जुन! अर्जुन!! तुम खड़े रहो, जीवन रहते मेरे निकटसे तुम उबरने न पाओगे। तुमने अपने पितृसखा मेरे पिता वृद्ध भगदत्तको मारा है, मैं शिशु हूं, आज मेरे सङ्ग युद्ध करो। हे कौरव! नरनाथ वज्रदत्तने अर्जुनसे ऐसा कहके उनकी ओर हाथी चलाया। वह गजराज धीमान् वज्रदत्तके चलानेपर मानो आकाशमार्गसे कूदता हुआ वेगपूर्व्वक अर्जुनके समीप उपस्थित हुआ। जैसे बादल जलकी वर्षासे नीलगिरिको सेचन करते हैं, वैसे ही अग्रहस्त प्रयुक्त शीकरसमूहके द्वारा उस गजराजने गुड़ाकेशको सेचन किया। वह नागेन्द्र राजा वज्र-

दत्तके चलानेपर बार बार अर्ज्जुनकी ओर दौड़ा। हे महाराज! वज्रदत्तके द्वारा प्रेरित वह नागेन्द्र मानो नृत्य करते हुए वेगपूर्व्वक कौरवोंके महारथ अर्ज्जुनके पास आया। मधु-सूदन धनञ्जय वज्रदत्तके हाथीको आया हुआ देखकर विचलित न हुए। उन्होंने भगदत्तके पहले वैरको स्मरण करके बल पूर्व्वक क्रुद्ध होकर राजा वज्रदत्तके हाथीको कार्य्यमें विघ्न-कारी समझा। अनन्तर जैसे तट समुद्रको रोकता है, वैसे ही उन्होंने क्रुद्ध होकर शर-जालके द्वारा उस हाथीको निवारण किया। भगदत्तपुत्र राजा वज्रदत्त हाथीको निवारित होते देखकर क्रोधसे मूर्च्छित होके अर्ज्जुनकी ओर शिकल किये हुए बाण चलाने लगे। महाबाहु अर्ज्जुनने शत्रुसंहारक बाणोंके द्वारा उन बाणोंको अद्भुतरूपसे निवारण किया।

अनन्तर प्राग्ज्योतिषाधिपति राजा वज्रदत्तने क्रोधित होकर फिर पर्व्वतके सदृश बलवान हाथीको चलाया। इन्द्रपुत्र अर्ज्जुनने उस नागेन्द्रको आते हुए देखकर बलपूर्व्वक उसके ऊपर अग्निसदृश बाण चलाया। हे राजन्! बाणोंके द्वारा मर्म्मस्थलोंमें अत्यन्त चोट लगनेसे वह हाथी वज्रसे टूटे हुए पर्व्वतकी भांति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय वह गजेन्द्र अर्ज्जुनके बाणोंकी चोटसे गिरके वज्रसे प्रपीड़ित पृथ्वीमें प्रविष्ट पर्व्वतकी भांति शोभित हुआ।

जब वज्रदत्तका हाथी मरके गिर पड़ा, तब अर्ज्जुन पृथ्वीपर रहके राजा वज्रदत्तसे बोले, तुम्हें भय नहीं है। मेरे चलनेके समयमें महातेजस्वी युधिष्ठिरने मुझसे कहा था, कि हे "धनञ्जय! राजा लोग यदि तुम्हारे प्रतिकूलचारी होवें, तौभी तुम युद्धमें उन्हें तथा उनकी सेनाको न मारना; बल्कि उन्हें कहना, कि आप लोग सुहृदोंके सहित युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें अधिष्ठित होवें।" हे नरनाथ! मैं भाईकी आज्ञानुसार तुम्हें न मारूंगा, जो किया है, वह यहांतक ही हुआ, तुम्हें भय नहीं है, तुम उठके कुशलपूर्व्वक गमन करो। उपस्थित चैती पूर्णिमामें बुद्धिमान धर्म्मराजका अश्वमेध यज्ञ होगा, उस समय तुम वहां गमन करना।

अनन्तर भगदत्तका पुत्र राजा वज्रदत्त अर्ज्जुनके द्वारा निर्ज्जित तथा उनका ऐसा वचन सुनके बोला, कि 'वही होगा।'

७६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! अनन्तर मरनेसे बचे हुए सिन्धुराजवंशियोंके सङ्ग अर्ज्जुनका युद्ध होने लगा। सिन्धुराजगण श्वेताश्व अर्ज्जुनको राज्यमें आया हुआ सुनके असह्यता पूर्व्वक युद्ध करनेके लिये उनके सामने आये। उन सिन्धुराजगणने निज राज्यके बीच विषसदृश घोड़ेको पकड़ लिया, भीमसेनके भाई अर्ज्जुनसे भयभीत न हुए। उन महाक्रमी राजाओंने पहले शरनिकृत होनेसे जिगीषाके वशमें होकर अर्ज्जुनके समीप जाकर यज्ञीय अश्वके अनुगामी पदातिरूपसे स्थित धनुष्पाणि धनञ्जयको घेर लिया। उन लोगोंने युद्धमें अपना अपना नाम गोत्र और विविध कर्म्म कहके बाणोंकी वर्षासे इन्द्रपुत्र अर्ज्जुनको छिपा दिया। राजाओंने युद्धमें जयकी अभिलाषा करके वारणनिवारण बाणोंको चलाते हुए कुन्तीपुत्र धनञ्जयको घेरा; वे वीर लोग रथपर चढ़के पैदलस्थित श्यामवर्ण शरीरसे युक्त उग्र-कर्म्मा करनेवाले अर्ज्जुनको देखकर सब कोई एकवारही युद्ध करने लगे। अनन्तर उन लोगोंने निवात कवचान्तक संशप्तकोंके नायक सैन्धव संहारकारी अर्ज्जुनको घायल किया।

हे कौरव! युद्धमें सव्यसाचीके हाथसे सिन्धुराज जयद्रथका वध स्मरण करके वे लोग एक हजार रथ और दश हजार घोड़ोंके द्वारा अर्ज्जुनको घेरकर अत्यन्त हर्षित हुए। अनन्तर जब वे लोग अर्ज्जुनकी भांति बाणोंकी बरसाने

लगे, उस समय अर्ज्जुन उनके बाणोंसे छिपकर इस प्रकार शोभित हुए जैसे बादलोंके बीच सूर्य्य शोभित होता है। हे भारत! वह बाणोंसे छिपकर पक्षरान्तर-सञ्चारी शकुनकी भांति शोभायमान हुए; अनन्तर कुन्तीपुत्रके बाणोंसे अति पीड़ित होनेपर त्रिलोकवासी सब प्राणी हाहाकार करनेलगे और सूर्य्य तेजरहित होगया। हे महाराज! उस समय रोएंको खड़ा करनेवाला वायु बहने लगा, राहुने एक ही समयमें चन्द्रमा सूर्य्यको ग्रास किया, उल्का-समूहसे सूर्य्य सब प्रकारसे छिप गया, कैलाश-गिरि कांपने लगा और सप्तर्षि तथा देवर्षि लोग दुःखित तथा शोकार्त्त होकर अत्यन्त गर्म्म श्वास छोड़ने लगे। अनन्तर आकाशसे चन्द्रमंडल गगनमण्डलको भेदकर पतित हुआ, सब दिशा धूएंसे परिपूरित होनेसे विपरीत बोध होने लगीं, रासभारुणवर्ण विशिष्ट धनुष और बिज-लीयुक्त सब बादल आकाशमंडलमें भ्रमण करते हुए मांस और रुधिरकी वर्षा करने लगे। हे भरतर्षभ! जब वीरश्रेष्ठ धनञ्जय बाणोंकी वर्षासे छिप गये, तब इसही प्रकार अनेक भांतिकी अद्भुत घटना होने लगीं। अर्ज्जुनके शरजालसे छिपनेपर मोहवशसे उनके हाथसे गांडीव और हाथके रोदेकी चोटको रोकनेवाली चर्म्मपट्टिका गिर पड़ी, महारथ अर्ज्जुनके मूर्च्छित तथा चेत रहितहोनेपरभी सिन्धुराजगण उनकेऊपर शीघ्र शरजाल छोड़नेसे निवृत्त न हुए। तब द्युलोक-वासी देवतावृन्द अर्ज्जुनको मूर्च्छित जानकर त्रासित चित्तसे उनकेनिमित्त शान्तिकरनेमें प्रवृत्त हुए और देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा सप्तर्षिवृन्द बुद्धि-मान अर्ज्जुनके लिये विजयरूप जप करने लगे।

हे राजन्! तिसके अनन्तर देवताओंके द्वारा तेजसे प्रदीप्त होनेपर वह परमास्त्रवेत्ता बुद्धिमान अर्ज्जुनने युद्धमें अचलकी भांति निवास किया। फिर उनके दिव्य धनुषको कर्षण करते रहनेपर उसका बार बार महान् शब्द होने लगा। अनन्तर जैसे इन्द्र जल बरसते हैं, वैसेही अर्ज्जुन दिव्य धनुषके द्वारा विरुद्धाचारी शत्रु-ओंके ऊपर बाणोंको वर्षा करने लगे। जैसे वृक्ष समूह शलभ समूहसे परिपूरित होते हैं, वैसे ही राजाके सहित सिन्धुदेशीय योद्धा लोग अर्ज्जुनके बाणोंसे छिपकर अदृश्य हुए; सैन्धव-गण उनके शब्दसे त्रासित, भयार्त्त और शोकार्त्त होकर आखोंसे आंसू बहाते हुए इधर उधर होने लगे। हे महाराज! बलवान अर्ज्जुन शर-जालसे सैन्धव वीरोंको परिपूरित करते हुए अलात चक्रकी भांति भ्रमण करने लगे। शत्रु-घाती धनञ्जय वज्रधारी महेन्द्रकी भांति सब दिशाओंमें इन्द्रजाल सदृश बाणजाल चलाया। हे महाराज! कौरवेन्द्र धनञ्जय बाणवृष्टिके द्वारा मेघजाल सदृश सैन्धव-वीरोंकी सब सेना विदारित करते हुए शरदकालके सूर्य्यसमान सुशोभित हुए।

७७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर गांडीवधारी दुर्द्धर्ष अर्ज्जुन युद्धके निमित्त रण-भूमिमें उपस्थित होकर हिमाचलकी भांति प्रकाशित हुए; तब सैन्धवी सेना अधिक संर-म्भके सहित फिर युद्धमें उपस्थित होकर बाणोंकी वर्षा करने लगी।

महाबाहु कुन्तीपुत्र मुमूर्षु सैन्धवोंगणको फिर युद्धमें उपस्थित होते देखकर हंसते हुए यह मधुर बचन बोले, कि तुम लोग समधिक शक्तिके अनुसार युद्ध करके मुझे जीतनेके लिये यत्न करो और सब कार्य्य उत्तम रीतिसे पूरा करो; तुम लोगोंको महान् भय उपस्थित हुआ है। मैं अकेलाही शरजाल निवारण करके तुम लोगोंके साथ युद्ध करता हूं, तुम लोग युद्धमना होकर थोड़े समयतक स्थिर रहो, मैं शीघ्रही तुम लोगोंका घमंड तोड़ दूंगा।

हे भारत! अर्ज्जुन इतनी बात कहके उस

समय जेठे भाईने जो कहा था, कि हे तात! युद्धमें जिगीषु क्षत्रियोंको न मारना, केवल जय करना उसे स्मरण करके ऐसी चिन्ता करने लगे, कि राजेन्द्र धर्म्मराजने नरहत्या करनेको निषेध किया है, वह शुभवचन किस प्रकार मिथ्या न होगा! यदि राजा लोग मुझे न मारें, तभी उनकी आज्ञा प्रतिपालित होगी; पुरुष-श्रेष्ठ अर्ज्जुन ऐसाही विचार करके उन युद्धदुर्म्मद सैन्धव वीरोंसे बोले, कि जिससे तुम लोगोंका कल्याण होगा, मैं तुमसे वह वचन कहता हूं; तुम लोग मेरे समीप हार मानके मेरे शरणागत होनेसे मैं तुम्हें न मारूंगा, तुम लोग मेरा यह वचन सुनके अपने हितका उपाय करो। यदि इसके विपरीत कार्य्य करोगे तो मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर अत्यन्त क्लेश पाओगे।

कुरुपुङ्गव अर्ज्जुन उन वीरोंसे इतना वचन कहके अत्यन्त क्रुद्ध विजयकी इच्छा करनेवाले सैन्धवोंके सङ्ग क्रोध पूर्व्वक युद्ध करने लगे। हे महाराज! उस समय सैन्धवगण गांडीवधारी अर्ज्जुनके ऊपर सैकड़ों तथा सहस्रों नतपर्व्व बाण चलाने लगे, अर्ज्जुनने अपने चोखे बाणोंसे उनके समागत विषैले सर्प्प सदृश विषसे बुझे हुए बाणोंको आकाशमें ही काटके गिरा दिया फिर उन्होंने युद्धमें चोखे बाणोंसे सैन्धवोंके कङ्कपत्रयुक्त शिलापर घिसे हुए बाणोंको शीघ्र ही काटके उन्हें बेधने लगे। अनन्तर सिन्धुराजगण जयद्रथके बधका वृत्तान्त स्मरण करके फिर अर्ज्जुनके ऊपर प्रास और शक्ति चलाने लगे महाबली अर्ज्जुनने सैन्धवोंके प्रास और शक्तिको आकाशमें ही काटके उनके सङ्कल्पको व्यर्थ करके आक्रोश प्रकाश किया और जयकी इच्छा करनेवाले समागत सैन्धव वीरोंका सिर सन्नत पर्व्व भल्लास्त्रके द्वारा काटके गिराने लगे। उन लोगोंके लौटने और फिर वेगपूर्व्वक अर्ज्जुनके सामने आते रहनेपर परिपूर्ण समुद्रकी भांति तुमुल शब्द उत्पन्न हुआ। उस समय वे लोग अमित तेजस्वी अर्ज्जुनके द्वारा घायल होके शक्ति और उत्साह पूर्व्वक उनके सङ्ग युद्ध करने लगे। अनन्तर वे लोग वाहन तथा समस्त सेनाके सहित युद्धमें अर्ज्जुनके बाणोंकी चोटसे थककर चेत रहित होगये।

अनन्तर धृतराष्ट्रको पुत्री दुःशला सिन्धुराजगणको पीड़ित समझकर सेनामें शान्तिके लिये नाती सुरथपुत्रके सहित रथपर चढ़के अर्ज्जुनके समीप जाकर आर्त्तस्वरसे रोने लगी, धनञ्जयने उसे देखकर धनुष परित्याग किया। अर्ज्जुन धनुष परित्याग करके सम्मानपूर्व्वक भगिनी दुःशलासे बोले, कहो मैं कौनसा कार्य्य करूं? तब दुःशला उनसे बोली, हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारा स्वस्रीयात्मज शिशु तुम्हें प्रणाम करता है, हे पुरुषश्रेष्ठ पार्थ! तुम इसकी ओर कृपादृष्टि करो। हे राजन्! अर्ज्जुनने दुःशलाका ऐसा वचन सुनके पूछा, कि इसका पिता कहां है? ऐसा पूछनेपर दुःशला उससे कहने लगी, इस बालकका पिता पितृशोकसे सन्तापित तथा आर्त्त होकर जिस प्रकार विषादपूर्व्वक पञ्चत्वको प्राप्त हुआ है, वह मेरे निकट सुनो।

हे अनघ! उस सुरथने तुम्हारे हाथसे पिताका मरना तथा घोड़ेका अनुसरण करते हुए युद्धके लिये तुम्हारा यहांपर आना सुनकर पिताके मृत्युजनित दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर प्राण परित्याग किया है। हे प्रभु! मेरा सुरथ यह सुनके कि विभत्सु आये हैं, तथा तुम्हारा नाम सुनकर शोकसे अत्यन्त आर्त्त होकर पृथ्वीपर गिरके मर गया। हे पार्थ! मैं पुत्रको वहांपर गिरा तथा मरा हुआ देखकर उसके पुत्रको लेकर आज तुम्हारे शरणमें आई हूं। वह धृतराष्ट्रकी पुत्री दीना दुःशला आर्त्तस्वरसे ऐसा ही कहके आंसू बहाते हुए दीनभावसे स्थित सिर नीचा किये हुए अर्ज्जुनसे फिर कहने लगी। हे धर्म्मज्ञ! उस कुरुराज दुर्य्योधन और जयद्रथको भूलकर स्वसा तथा स्वस्रीय पुत्रको

कृपापूर्व्वक देखकर तुम्हें दया करनी योग्य है। हे कुरुकुल धुरन्धर! परवीरघाती परीक्षित जिस प्रकार अभिमन्युसे उत्पन्न हुआ है, मेरा यह महाभुज पौत्रभी उस ही भांति सुरथके द्वारा जन्मा है। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं उस पौत्रको लेकर सब सेनाकी शान्तिके लिये तुम्हारे निकट आई हूं। हे महाबाहो! यह मन्दसुर-पुत्र तुम्हारे समीप आया है, तुम इसपर अनुग्रह करो। हे अरिदमन! यह बालक शान्तिके लिये सिर नीचा करके तुम्हारे समीप यह प्रार्थना करता है, कि तुम शान्त होजाओ। हे पार्थ! इस बान्धवरहित अज्ञ बालकके ऊपर कृपा करो, इसपर क्रुद्ध न होना। धर्म्मज्ञ उस अनार्य्य अत्यन्त अपराधी नृशंस इस बालकके पितामहको भूलकर तुम्हें इसके ऊपर प्रसन्न होना उचित है। जब दुःशला करुणायुक्त ऐसा वचन बोली, तब धनञ्जय राजा धृतराष्ट्र और गान्धारी देवीको स्मरण करके दुःख तथा शोकसे अत्यन्त आर्त्त होकर चत्रधर्म्मकी निन्दा करते हुए कहने लगे, कि उस चुद्रचित्तवाले राज्यलोभी मानी दुर्य्योधनको धिक्कार है, उस-होके कारण ये सब बान्धव मेरे द्वारा यमलोकमें गये हैं। अर्ज्जुनने इसी भांति बहुतसे सान्त्व वाक्य कहके बालकपर कृपा प्रकाशित करके प्रीतिपूर्व्वक दुःशलाको अभिनन्दित करके गृह-पर भेजा। शुभानना दुःशला भी उस सेनाको युद्धसे लौटाकर अर्ज्जुनको प्रणाम करके गृह-पर गई। धनञ्जयने इसही प्रकार सैन्धव वीरोंको जीतकर कामचारी घोड़ेका अनुसरण किया। जैसे पिनाकी महादेवने आकाशमें हरिनका अनुसरण किया था, उस ही भांति महाप्रतापी तेजस्वी वीर अर्ज्जुन उस यज्ञीय अश्वका अनुगमन करने लगे। वह यज्ञका घोड़ा पुरुषश्रेष्ठ अर्ज्जुनके कर्म्मको वर्द्धित करते हुए इच्छानुसार क्रमसे सब देशोंमें विचरने लगा। हे पुरुषर्षभ! वह घोड़ा इस ही प्रकार पृथ्वीमें विचरते हुए धीरे धीरे पार्थके सहित मणिपुरपतिके देशमें उपस्थित हुआ।

७८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा बभ्रुवाहन पिता अर्ज्जुनकी आगमनवार्त्ता सुनके ब्राह्मण और अर्थ उपहार आगे करके विनीत भावसे उनके समीप उपस्थित हुए। मणिपुरेश्वर बभ्रु-वाहनके इस प्रकार समीप आनेपर बुद्धिमान अर्ज्जुनने चत्रधर्म्मको स्मरण करके उसे अभि-नन्दित न किया; बल्कि वह धर्म्मात्मा अर्ज्जुन क्रोधपूर्व्वक उससे बोले, कि तुम्हारी प्रक्रिया युक्तियुक्त नहीं हुई, तुम चत्रधर्म्मके बाहिर हो, मैं युधिष्ठिरके यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करते हुए तुम्हारे राज्यमें आया हूं, तुम किस निमित्त मेरे सङ्ग युद्ध नहीं करते हो? हे दुर्बुद्धि! तू चत्रियधर्म्मके बाहिर हुआ है, मेरे युद्धके लिये उपस्थित होनेपर जब तू युद्ध न करके सामके द्वारा प्रतिग्रह करता है, तब तुझे धिक्कार है। हे दुर्म्मति मैं युद्धके लिये यहांपर आया हूं, तू स्त्रियोंकी भांति मुझे प्रतिग्रह करता है; हे नराधम! यदि मैं शस्त्ररहित होकर तेरे पास आता, तो तेरा ऐसा कार्य्य युक्तियुक्त होता। पन्नगपुत्री उलूपी पतिके द्वारा पुत्रबभ्रुवाहनका ऐसा तिरस्कार होना जानके पातालको भेद-कर पुत्रके निकट आई। हे प्रभु! उलूपीने युद्धकी इच्छा करनेवाले पिताके द्वारा बारबार तिरस्कृत विमर्ष सिरनीचा करके खड़े हुए पुत्र बभ्रुवाहनको देखा। अनन्तर वह मनोहराङ्गी उरगपुत्री उलूपी धर्म्मविशारद पुत्रके समीप आके उससे धर्म्मयुक्त वचन बोली, कि मैं पन्न-गकन्या उलूपी हूं, तुम मुझे अपनी माता जानो। हे पुत्र! मैं जो कहती हूं, वैसा कर-नेसे तुम्हें परम धर्म्म होगा। हे तात! तुम इस युद्ध दुर्म्मद कुरुश्रेष्ठ पिताके सङ्ग युद्ध करो, तो ये तुम्हारे ऊपर निश्चय ही प्रसन्न होंगे।

हे भरतश्रेष्ठ! महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहनने माताका ऐसा वचन सुनके क्रुद्ध होकर युद्ध करनेमें चित्त लगाया। अनन्तर वह सुवर्णसे बने हुए प्रभायुक्त वर्म्म और शिरस्त्राण पहरकर एक सौ तूणीर युक्त युद्धकी सब सामग्रियोंसे पूरित मनके समान वेगगामी उत्तम घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़ा। राजा बभ्रुवाहनने चक्र और उपस्करणयुक्त परम शोभायमान, सुवर्ण कलशसे परिस्कृत परम पूजित, बहुत ऊंचा, सिंहध्वजाविशिष्ट सोनेके बने हुए रथपर चढ़के पार्थके निकट गमन किया। तिसके अनन्तर वीरश्रेष्ठ बभ्रुवाहनने यज्ञीय घोड़ेके निकट जाकर अस्त्रविद्याविशारद पुरुषोंके सहारे उस घोड़ेको ग्रहण किया। अर्ज्जुनने घोड़ेको बभ्रुवाहनके द्वारा पकड़ा हुआ देखकर प्रसन्नचित्तसे पृथ्वीपर खड़े होकर रथमें चढ़े हुए पुत्रको निवारित किया। राजा बभ्रुवाहनने युद्धमें विषैले सर्पसदृश विषसे बुझे हुए बाणोंसे वीर अर्ज्जुनको पीड़ित किया। इस ही प्रकार देवासुर संग्रामकी भांति उन प्रियमाण पितापुत्र दोनोंका तुमुल संग्राम होने लगा। अनन्तर बभ्रुवाहनने हंसकर अर्ज्जुनके जत्रुस्थानमें आनतपर्व्व बाण मारा, वह बाण बिलमें घुसनेवाले सर्पकी भांति पंखके सहित अर्ज्जुनके शरीरमें घुस गया। उस समय उस बाणके कुन्तीपुत्र अर्ज्जुनके शरीरको भेदकर पृथ्वीमें प्रविष्ट होनेपर द्युतिमान धनञ्जय अत्यन्त पीड़ायुक्त होके तेजको सम्भालकर दिव्य धनुष अवलम्बन करके प्रमत्तकी भांति अचेत हुए। अनन्तर महातेजस्वी इन्द्रपुत्र पुरुषश्रेष्ठ अर्ज्जुनने सावधान होकर पुत्रसे कहा, हे तात चित्राङ्गदापुत्र महाबाहो बभ्रुवाहन! तुम्हें धन्य हो। हे पुत्र! मैं तुम्हारा ऐसा कर्म्म देखकर परम प्रसन्न हुआ। हे पुत्र! तुम क्षणभर युद्धमें स्थित रहो, मैं तुम्हारे ऊपर बाणोंको छोड़ता हूं। शत्रुघाती अर्ज्जुन इतनी बात कहके बाण बरसाने लगे, राजा बभ्रुवाहनने भल्लके सहारे गाण्डीवसे छूटे हुए उन वज्रसदृश बाणोंको दो दो खण्ड करके काटके गिरा दिया। अर्ज्जुनने दिव्य बाण और क्षुरस्त्रसे बभ्रुवाहनके रथकी सुवर्णतालसदृश सोनेसे बनी हुई ध्वजा काट दी और हंसके उसके महाकाय घोड़ोंको मारके प्राणरहित कर दिया। राजा बभ्रुवाहन अत्यन्त क्रुद्ध होकर पैदल ही पिताके संग युद्ध करने लगा। इन्द्रपुत्र पार्थप्रवर अर्ज्जुनने पुत्रके विक्रमसे परमप्रसन्न होकर उसे अत्यन्त पीड़ित किया। अनन्तर बभ्रुवाहनने बाल स्वभावसे शिकलकारी हुई उत्तम पङ्खवाली पत्रीसे पिताका हृदय बिद्ध किया, वह बाण पाण्डवके मर्म्मस्थलको भेदकर प्रविष्ट होनेसे अत्यन्त दुःखदायक हुआ। हे महाराज! कुरुनन्दन अर्ज्जुन पत्रीसे अत्यन्त बिद्ध होनेपर अत्यन्त विमोहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े। कुरुकुलधुरन्धर धनञ्जयके गिरनेपर चित्राङ्गदापुत्र बभ्रुवाहन भी युद्धमें पिताको मरा हुआ देखकर शर संयम करके मृत्युको प्राप्त हुआ। अर्ज्जुनने भी पहले बाणोंसे उसे अत्यन्तही बिद्ध किया था, इसलिये वह भी युद्धमें पृथ्वीपर गिर पड़ा। मणिपुर पतिकी माता चित्राङ्गदा पति और पुत्रको मरके पृथ्वीपर गिरे हुए देखकर अत्यन्त त्रासित होकर रणभूमिमें आई और पतिको मरा हुआ देखके बहुतही कांपती हुई शोक सन्तप्त हृदयसे रोदन करने लगी।

७९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वह कमलनयनी चित्राङ्गदा दुःखसे सन्तापित होकर बहुत ही बिलाप करती हुई विमोहित होकर पृथ्वीमें गिरी। क्षणभरके अनन्तर वह मनोहराङ्गी चित्राङ्गदा देवी सावधान होकर पन्नगपुत्री उलूपीको देखकर बोली, हे

उलूपी! यह देखो तुम्हारे ही कारणसे मेरे बालक पुत्र बभ्रुवाहनके द्वारा समिञ्जय स्वामी युद्धमें मरके सोये हुए हैं। हे उलूपी! तुम धर्म्म जाननेवाली तथा पतिव्रता स्त्रियोंमें मुख्य हो, तुम्हारे ही कारणसे पति रणमें मरके पड़ा हुआ है, यदि अर्ज्जुन तुम्हारा अनेक अपराध किये हों, तोभी मैं तुम्हारे समीप प्रार्थना करती हूं, कि तुम क्षमा करके उन्हें जीवित करो। हे आर्य्ये! तुम तीनों लोकके बीच धर्म्म जाननेवाली कहके विदित हो, तोभी पुत्रके हाथसे पतिको मरवाके शोक नहीं करती हो? हे पन्नगनन्दिनी! मैं अपने पुत्रके मरनेसे शोक नहीं करती हूं, जिसके निमित्त यह आतिथ्य किया गया, उस पतिहीके लिये शोक करती हूं। यशस्विनी चित्राङ्गदा देवी उरगपुत्री उलूपीसे ऐसा कहके स्वामीके निकट जाके उन्हें कहने लगी। हे प्यारे! आप कुरुकुलके परमप्रिय हैं, आप उठिये। हे महाबाहो! मैं आपका यह घोड़ा परित्याग करती हूं। हे विभु! आपको धर्म्मराजके यज्ञीय घोड़ेका अनुसरण करना योग्य है, आप उस कार्य्यको न करके किस लिये पृथ्वीपर सोये हुए हैं? हे कुरुनन्दन! मेरा प्राण आपके वशमें है, इसलिये आपने प्राणद होके किस प्रकार दूसरेके प्राणको परित्याग किया?

चित्राङ्गदा बोली, हे उलूपी! तुम पृथ्वी तलमें पड़े हुए पतिको भली भांति देखो, तुम पुत्रको इस प्रकार समुत्साहित कर तथा मरवाके शोक नहीं करती हो? यह बालक मृत्युके वशमें होकर पृथ्वीपर सोया रहे, परन्तु लोहितनयन गुड़ाकेश विजय जीवित होवें। हे सुभगे। मनुष्योंका बहुभार्य्यता अपराध कहके परिगणित नहीं होता, तुम सन्देह न करके ऐसा निश्चय बोध करो, कि ये सब स्त्रियोंके स्वामी होते हैं; बिधाताने यह नित्य सख्यता उत्पन्न की है, तुम निश्चय जानो, कि तुम्हारी वह नित्य सख्यता बनी रहेगी। तुमने पुत्रके द्वारा पतिका बध कराया है, परन्तु यदि आज मुझे पतिको जीवित न दिखाओगी, तो मैं जीवन परित्याग करूंगी। हे देवि! मैं पति और पुत्रके बिरहसे अत्यन्त दुःखी हुई हूं, इस स्थानमें तुम्हारे सामने निश्चय ही योग व्रत अवलम्बन करके प्राण परित्याग करूंगी। हे प्रजानाथ! चैत्रबाहिनी चित्राङ्गदाने पन्नगनन्दिनी सौतसे ऐसाही कहके योगव्रत अवलम्बन करके मौनभावसे निवास किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पुत्रकी इच्छा करनेवाली चित्राङ्गदा लम्बी सांस छोड़ती और बहुत विलाप करती हुई शोकसे विरत होकर पतिका दोनों पांव पकड़के दीन-भावसे बैठी। अनन्तर बभ्रुवाहनने फिर साव-धान होके रणभूमिमें बैठी हुई माताको देख-कर कहा। जब कि सदा सुख भोगने योग्य मेरी माताने पृथ्वीमें गिरे हुए महावीर पतिका अनुशयन किया है, तब इससे बढ़के और कौनसा दुःख होगा? हाय! माताने मेरेहाथसे युद्धमें मरे हुए शत्रुनाशन सर्व्वशस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ दुर्द्धरणको भांति मृत पतिको देखा है। ओहो! बढ़ारस्क महाबाहु पतिको युद्धमें मरा हुआ देखकर इसका दृढ़ हृदय अबतक भी विदीर्ण नहीं होता है? जब मैं और मेरी माता, हम दोनों ही जीवित हैं, तब मुझे बोध होता है, कि इस लोकमें मृत्यु कालके बिना उपस्थित हुए किसी प्रकार पुरुषकी मृत्यु नहीं होती। हाय! जब मैं पुत्र होकर सम्मुखमें मारके पिताका सनाह (कवच) काटा है, तब कुरुधोरके इस सुवरण-सन्नाहको महा धिक्कार है। हे ब्राह्मणगण! देखिये मेरे पिता महावीर धनञ्जय मेरे द्वारा मरके वीरशय्या पर सोये हैं। यदि ये युद्धमें मेरे हाथसे मारे गये, तब अश्वका अनुसरण करनेवाले इस कुरुप्रधान धनञ्जयकी शान्तिके लिये जो सब

ब्राह्मण युधिष्ठिरको आज्ञासे उनके साथ आये हैं, वे क्यों शान्ति करते हैं? मैं नृशंसकी भांति रणभूमिमें पितृहत्या करके महापापी हुआ हूं, इसलिये आज मुझे इस विषयमें कैसा प्रायश्चित्त करना उचित है, उसके लिये ब्राह्मण लोग आज्ञा करें। जब मैंने अत्यन्त निठुर होकर पितृहत्या की है, तब आज इनका चर्म्म पहरकर इस स्थानमें दुःखपूर्व्वक मुझे बारह बर्ष व्यतीत करना योग्य है। जब मैंने पिताके मस्तक तथा सिरमें बाण मारके इन्हें मारा है, तब मुझे प्रायश्चित्तके लिये और कुछ भी नहीं दीखता है।

हे नागोत्तमपुत्री! देखो मैंने तुम्हारे पतिको मारा है, आज मैंने युद्धमें अर्ज्जुनका बध करके तुम्हारा प्रियकार्य्य किया है। हे शुभे! इसके अनन्तर मैं निज शरीरको धारण करनेमें समर्थ नहीं होता हूं, इसलिये आज ही मैं पितृनिषेवित स्थानमें गमन करूंगा। हे माता! मेरे तथा गाण्डीवधारी अर्ज्जुनके मरनेसे तुम प्रसन्न होओ, मैं सत्यपथ अवलम्बन करके परमात्म-लाभ करूं।

महाराज! दुःख और शोकसे पीड़ित राजा बभ्रुवाहन ऐसा ही कहके जलसे आचमन करके दुःखपूर्व्वक बोला। हे सर्व्वभूत चराचर! तुम लोग मेरी प्रतिज्ञा सुनो; हे माता भुजगोत्तमे! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, यदि मेरे पिता विजय न उठेंगे, तो मैं इस रणभूमिमें अपना शरीर सुखा दूंगा। पितृहत्या करनेसे मेरी किसी भांति निष्कृति नहीं है, मैं गुरुबधसे अर्द्दित होकर निश्चय ही नरकमें गमन करूंगा। पुरुष क्षत्रिय बीरका बध करके एक सौ गऊ दान करनेसे उस पापसे मुक्त होके निष्कृति लाभ कर सकता है, परन्तु मैंने पितृहत्या की है, इसलिये इस समय मेरी निष्कृति होनी दुर्लभ है। ये महातेजस्वी धर्म्मात्मा पाण्डुपुत्र धनञ्जय मेरे पिता और विशेष करके अकेले हैं, इनका बध करनेसे मेरी निष्कृति क्यों होगी? हे नरनाथ! महाबुद्धिमान् धनञ्जयका पुत्र बभ्रुवाहनने ऐसाही कहके आचमन करते हुए योगव्रत अवलम्बन करके मौनभावसे निवास किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! उस समय पितृशोकसे व्याकुल मणिपुरेश्वर राजा बभ्रुवाहनके मातासहित अनशन व्रत अवलम्बन करके बैठनेपर उलूपीने सञ्जीवन मणिका ध्यान किया, ध्यान करते ही वह पन्नगपरायण मणि उस ही समय वहां उपस्थित हुई। हे कौरव्य! पन्नगराजपुत्री उलूपी उस मणिको लेकर सैनिक पुरुषोंके चित्तको आनन्दित करनेवाले बचन कहने लगी। उलूपी बभ्रुवाहनसे बोली, हे पुत्र! अब शोक परित्याग करके, उठो, जिष्णु, तुम्हारे द्वारा निर्ज्जित नहीं हुए हैं; ये इन्द्रके सहित देवताओं तथा सब पुरुषोंसे अजेय हैं; परन्तु मैंने आज पुरुषश्रेष्ठ तुम्हारे यशस्वी पिताकी प्रीतिके लिये यह मोहनी माया दिखाई है। तुम्हें पुत्र समझके तुम्हारा बल जाननेके लिये ये शत्रुनाशन अर्ज्जुन तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेके लिये आये थे। हे पुत्र! इस ही लिये मैंने तुम्हें युद्ध करनेके लिये भेजा था, इस निमित्त इस विषयमें तुम तनिक भी पापकी आशङ्का मत करो। हे प्रभु! ये महात्मा पुराणऋषि शाश्वत तथा अक्षर हैं; हे पुत्र! इसलिये इन्द्र भी इन्हें युद्धमें जय नहीं कर सकते। हे प्रजानाथ! जो सदा, बार बार मृत पन्नगोंको जीवित करती है, मैंने उस मणिको मगाया है, हे प्रभु! तुम इस मणिको लेकर अपने पिताके बक्षस्थलपर रखनेसे इन्हें जीवित देखोगे।

अनन्तर पापरहित अमित तेजस्वी बभ्रुवाहनने उलूपीका ऐसा बचन सुनके पितृस्नेहके वशमें होकर शीघ्र ही अर्ज्जुनके बक्षस्थलपर उस मणिको रक्खा। वह मणि अर्ज्जुनके बक्षस्थलपर रखते ही बीरवर प्रभु जिष्णु जीवित

होकर बहुत समयके सोये हुए पुरुषकी भांति लोहित नेत्र मार्ज्जन करते हुए उठे। तब बभ्रुवाहन महात्मा मनस्वी पिताको उठते तथा सावधान होते देखकर उनकी स्तुति करने लगा।

हे प्रभु! लक्ष्मीवान पुरुषश्रेष्ठ पार्थके फिर उठनेपर इन्द्र दिव्य तथा पुण्य गन्धयुक्त फूलोंकी वर्षा करने लगे। आकाशमें बादलकी भांति गम्भीर शब्दसे दिव्य दुन्दुभिका शब्द तथा ऊंचे स्वरसे साधुध्वनि प्रकट हुई। अनन्तर महाबाहु धनञ्जयने सब भांतिसे आश्वस्त होकर उठके बभ्रुवाहनको आलिङ्गन करके उसका मस्तक सूंघा। फिर कुछ दूरपर उलूपीके सङ्ग स्थित शोककर्षित बभ्रुवाहनकी माता चित्राङ्गदाको देखकर उससे पूछने लगे। हे शत्रुनाशन पुत्र! इस रणभूमिमें सब लोगोंको शोकसे विस्मित तथा हर्षित देखता हूं, इसका क्या कारण है। यदि तुम जानतेहो, तो मुझसे कहो। तुम्हारी माता चित्राङ्गदा और नागेन्द्रपुत्री उलूपी किस लिये रणभूमिमें आई है? मेरे कहनेके अनुसार तुमने यह युद्ध किया था, उसे मैं जानता हूं; परन्तु स्त्रियोंके आनेका कारण जाननेकी इच्छा करता हूं। तब मणिपुरपति विद्वान् बभ्रुवाहन अर्जुनका ऐसा वचन सुन सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करके बोला,—आप इस उलूपीसे सब वृत्तान्त पूछिये।

८० अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे कौरवकुलनन्दिनि! तुम मणिपुरके राजा बभ्रुवाहनकी जननी होकर किस लिये रणभूमिमें आई हो? हे चपलाङ्गि भुजगात्मजे! क्या तुम इस राजा बभ्रुवाहनकी कुशलकामना करती हो? अथवा मेरे मङ्गलकी इच्छा करती हो? हे पृथुल श्रोणि प्रियदर्शन! मैंने अथवा बभ्रुवाहनने बिना जाने तुम्हारे विषयमें कुछ अप्रिय आचरण तो नहीं किया है? इस वरारोहा राजपुत्री तुम्हारी सौत चैत्रवाहिनी चित्राङ्गदाने तुम्हारा कोई अपराध तो नहीं किया?

उरगराजपुत्री उलूपी अर्जुनका वचन सुनकर हंसके उनसे बोली। आप बभ्रुवाहन अथवा बभ्रुवाहनकी जननी प्रेष्यकी भांति स्थित यह चित्राङ्गदा, आपलोगोंमेंसे किसीने भी मेरा कुछ अपराध नहीं किया है; परन्तु मैंने जो कुछ जिस प्रकार किया है, मेरा वह समस्त कार्य्य सुनिये। हे विभु! मैं सिर नीचा करके आपको प्रणाम करती हूं, आप मुझपर क्रोध न करिये। हे कौरव्य! मैंने आपकी प्रीतिके लिये ऐसा किया है। हे महाबाहो! पहले जो घटना हुई थी आप उसे पूरी रीतिसे सुनिये। हे धनञ्जय! आप जो महाभारत युद्धमें अधर्म्माचरण करके शान्तनुपुत्र भीष्मको मारके पापग्रस्त हुए थे, आज उस पापसे तुम्हारा निस्तार हुआ। हे वीरवर! आप सामने लड़के भीष्मका वध न कर सकते, इसी लिये शिखण्डी युक्त रथको अवलम्बन करके उनका वध किया। यदि आप उसकी शान्ति न करके जीवन परित्याग करते, तो निश्चय ही आपको उस कर्म्मरूपी पापसे नरकमें गिरना होता। हे महाबुद्धिमान पृथ्वीनाथ! भीष्मके मरनेपर गङ्गा और वसुगणने यही शान्ति की थी, इस ही लिये पुत्रके हाथसे आपको पीड़ा प्राप्त हुई। हे राजन्! पहले शान्तनुपुत्रके मरनेपर वसुगणने गंगाके तटपर आके जिस समय आपको शाप दिया था, उस समय मैंने इस विषयको सुना था; वसुगण महानदी भागीरथीके निकट आके सब कोई एकत्रित होकर उससे यह घोर वाक्य बोले, हे भाविनि! सव्यसाचीने रणभूमिमें युद्ध न करके दूसरेके सङ्ग मिलके शान्तनुपुत्र भीष्मको मारा है, इस ही लिये आज हम लोगोंने धनञ्जयको शापयुक्त किया; भागीरथी गङ्गा इतना वचन सुनके बोली, कि 'ऐसा ही होवे'। मैंने यह वृत्तान्त पिताको सुनाकर

व्यथितचित्तसे गृहमें प्रवेश किया, पिता भी उनके परम शोकित हुए; अनन्तर पिताने वसुओंके निकट जाकर उन्हें बार बार प्रसन्न करके आपके निमित्त प्रार्थना की। तब वे लोग मेरे पितासे बोले,—हे महाभाग! उसका पुत्र मणिपुरका राजा युवा बभ्रुवाहन जब रणभूमिके बीच उसे बाणसे मारके पृथ्वीपर गिरावेगा, तब वह शापसे मुक्त होगा, देवराज भी युद्धमें आपको पराजित नहीं कर सकते; परन्तु आत्मा पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, इस ही लिये उस पुत्रके द्वारा आप पराजित हुए हैं। हे विभु! इस विषयमें मेरा कुछ भी दोष नहीं हो सकता; परन्तु आप इस विषयकी कैसा सम्मति हैं, उसे मैं नहीं कह सकती।

अर्ज्जुन उलूपीका ऐसा बचन सुनके उससे प्रसन्नचित्तसे बोले, हे देवि! तुमने जो कुछ किया, वह सब मुझे प्रिय बोध हुआ है। धनञ्जय उलूपीसे ऐसा कहके चित्राङ्गदाके सम्मुख मणिपुरपति अपने पुत्र बभ्रुवाहनसे बोले, हे पुत्र! आगामी चैती पूर्णिमामें युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ होगा, तुम दोनों माता और मन्त्रियोंके सहित वहां गमन करना, बुद्धिमान राजा बभ्रुवाहनने पार्थका ऐसा बचन सुनके आंखोंमें आंसू भरके पितासे कहा। हे धर्म्मज्ञ! आपकी आज्ञानुसार मैं अश्वमेध महायज्ञमें जाकर द्विजातियोंका परिवेषक हूंगा। हे धार्म्मिकश्रेष्ठ! परन्तु आप कृपा करके अपनी इन दोनों भार्य्याओंके सहित निज पुरीमें प्रवेश करिये, इसमें कुछ भी विचार न करिये। हे प्रभु! निज भवनमें एक रात्रि सुखसे वासकरके दूसरे दिन फिर घोड़ेका अनुगमन करना

कपिध्वज कुन्तीपुत्र धनञ्जय पुत्रका ऐसा बचन सुनके उस चित्राङ्गदानन्दन बभ्रुवाहनसे बोले, हे महाबाहो! मैंने तुम्हारा अभिप्राय मालूम किया; हे पृथुलोचन! परन्तु मैं जिस प्रकार दीक्षित हुआ हूं, उस ही भांति परिभ्रमण करूंगा; मैं इस समय तुम्हारे नगरमें नहीं जा सकता। हे नरेन्द्र! यह यज्ञीय घोड़ा इच्छानुसार बिचरेगा, इसकी गति रोध न होगी; इसलिये घोड़ा न रहनेसे मैंभी नहीं रह सकता, तुम्हारा मङ्गल होवे, अब मैं जाता हूं। भरतसत्तम इन्द्रपुत्र धनञ्जयने वहांपर पुत्रके द्वारा विधिपूर्व्वक पूजित तथा दोनों भार्य्याओंसे अनुज्ञात होकर घोड़ेका अनुगमन किया।

८१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वह घोड़ा समुद्र सहित पृथ्वीपर भ्रमण करके हस्तिनापुरकी ओर लौटा। अर्ज्जुन भी इच्छानुसार घोड़ेका अनुगमन करते हुए क्रमसे मगधदेशके राजभवनके समीप आये। हे प्रभु! क्षत्रधर्म्ममें स्थित महावीर सहदेवपुत्र मेघसन्धिने अर्ज्जुनको समीप आया हुआ देखकर आह्वान किया। अनन्तर वह रथी धनुष, बाण और तलवाणधारी मेघसन्धि निज नगरसे निकलकर पदाति अर्ज्जुनके समीप उपस्थित हुआ; महातेजस्वी मेघसन्धि धनञ्जयको पाके बालस्वभावके वशमें होकर अकौशल-पूर्व्वक अर्ज्जुनसे बोला, हे भारत! क्या आप स्त्रियोंके बीच बिचरनेवाले पुरुषकी भांति इस घोड़ेको जगत्के बीच घुमावेंगे? मैं इस घोड़ेका हरता हूं, आप इसके छुड़ानेका यत्न करिये। यद्यपि आपने युद्धमें मेरे पितापितामहगणको अनुनय नहीं की है, तौभी मैं तुम्हारा रथातिथ्य करूंगा; इसलिये आप मेरे ऊपर प्रहार करिये और मैंभी तुम्हारे ऊपर प्रहार करूं। पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन मेघसन्धिका ऐसा बचन सुनके हंसकर उससे बोले, कि विघ्न करनेवालेको निवारण करना ही मेरा व्रत है। हे राजन्! जेठे भाईने मेरे ऊपर यह भार अर्पण किया है, उसे तुम विशेष रीतिसे जानते हो, तुम सामर्थके अनुसार मुझपर प्रहार करो, उससे

मैं क्रुद्ध न हूंगा । मगधेश्वर पाण्डवका ऐसा वचन सुनके वर्षा करनेवाले इन्द्रकी भांति अर्जुनके ऊपर सैकड़ों सहस्रों बाण बरसाने लगा । तब गाण्डीवधारी अर्जुनने गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंसे मगधराजके यत्नपूर्व्वक चलाये हुए बाणोंको निष्फल कर दिया । हे भरत-श्रेष्ठ ! कपिध्वज कुन्तीपुत्र अर्जुन मगधराजके बाणोंको व्यर्थ करके प्रदीप्त मुखवाले सर्पकी भांति प्रज्वलित बाण चलाने लगे, परन्तु अर्जुन मगधेश्वरके शरीर और सारथीके ऊपर बाण न चलाकर उनकी ध्वजा, पताका, दण्ड, रथ, यन्त्र, घोड़ों तथा अन्यान्य रथाङ्गोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ।

मगधेश्वरका शरीर सव्यसाचीके द्वारा रक्षित होनेसे उन्होंने निज वीर्य्यबलसे शरीरको रक्षित हुआ समझकर पार्थके ऊपर बाण चलाया । तब गाण्डीवधारी अर्जुन मगधराजके द्वारा अत्यन्त घायल होकर वसन्तकालमें फूले हुए पलासवृक्षकी भांति शोभित हुए । हे कुरुवंशावतंस ! मगधराज अवध्यमान होकर अर्जुनको घायल करके लोकस्थित वीरोंको देखनेके लिये स्थित हुए । सव्यसाचीने बलपूर्व्वक धनुष खींचकर मगधराजके घोड़ोंको प्राणरहित करके उनके सारथीका सिर काट दिया और क्षुरप्रसे उनके विचित्र धनुष हस्तावाप पताका और ध्वजा काटके पृथ्वीपर गिरा दिया । मगधराज बाणोंसे पीड़ित और घोड़े तथा सारथीसे रहित होकर गदा उठाकर वेगपूर्व्वक अर्जुनकी ओर दौड़ा ; अर्जुनने गिद्ध-पङ्खयुक्त बाणोंसे उस समागत मगधराजकी सुवर्णभूषित गदाको काटकर कई टुकड़े कर दिया । वह गदा शकलीभूत तथा मणिबन्धन-च्युत होकर छूटी हुई व्यालीकी भांति पृथ्वीमें गिरी । मगधराजके रथविहीन तथा धनुष और गदारहित होनेपर समराग्रणी बुद्धिमान अर्जुनने उन्हें फिर पीड़ित करनेकी इच्छा नहीं की,

अनन्तर कपिध्वज अर्जुन उस विमनस्क क्षत्रधर्म्ममें स्थित मगधराजको धीरज देते हुए बोले । हे पुत्र ! बालक होके युद्धमें तुम्हारे ऐसा महत् कर्म्म करनेसे क्षत्रधर्म्म पर्य्याप्तरूपसे दीख पड़ा, अब लौट जाओ । हे राजन् ! राजाओंको मारनेके लिये धर्म्मराज युधिष्ठिरने निषेध किया है, इस ही निमित्त तुम युद्धमें अपराध करके भी जीवित हो ।

उस समय मगधराजने अपनेको यथार्थमें ही निराकृत समझके हाथ जोड़के अर्जुनके निकट जाकर उनकी पूजा करके कहा । हे पार्थ ! मैं तुम्हारे निकट पराजित हुआ हूं, अब आपके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है, इसके अनन्तर जो करना होगा, उसके लिये आप मुझे आज्ञा करिये, मैं वही कार्य्य करूंगा ।

अर्जुन मगधराजको धीरज देके फिर उससे बोले, आगामी चैती पूर्णिमामें राजा युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ होगा, उस समय तुम वहांपर जाना ।

हे महाराज ! सहदेवपुत्र मेघसन्धि अर्जुनका ऐसा वचन सुनके उसे स्वीकार कर वीरश्रेष्ठ अर्जुन और घोड़ेकी विधिपूर्व्वक पूजा की । अनन्तर वीरकेशरी धनञ्जयने इच्छानुसार समुद्रके तटसे होते हुए क्रमसे वङ्ग, पुण्ड्र और कोशल प्रभृति देशोंमें पुनर्व्वार घोड़ेके पीछे गमन किया । हे महाराज ! अर्जुनने गाण्डीव धनुषके सहारे इन सब देशोंमें राजाओंको म्लेच्छ प्रभृति समस्त सेना जय की ।

८२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज ! श्वेतवाहन अर्जुन मगधराजके द्वारा पूजित होकर दक्षिण देशमें जाकर घोड़ेके सङ्ग विचरने लगे । अनन्तर वह बलवान घोड़ा लौटकर चेदीवालोंकी शुक्ति नामी रमणीय नगरीमें पहुंचा । वहांपर महाबलवान् अर्जुन शिशुपा-

लपुत्र शरभके द्वारा युद्धमें पूजित हुए। फिर वह घोड़ा पूजित होकर काशी, अङ्ग, कोशल, किरात और तङ्गन देशमें गया; कुन्तीपुत्र अर्जुनने वहांपर यथाक्रमसे पूजा प्रतिग्रह करके दशार्ण देशमें गमन किया। वहां बलवान अरिमर्द्दन चित्राङ्गदके सङ्ग अर्जुनका अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ।

पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन चित्राङ्गदको वशमें करके निषादराज एकलव्यके राज्यमें गये। उस समय एकलव्य पुत्रने युद्ध करके घोड़ा ग्रहण किया, तब अर्जुनके सङ्ग निषादोंका रोएंको खड़ा करनेवाला संग्राम हुआ। अनन्तर युद्धमें दुर्द्धर्ष अपराजित कुन्तीपुत्रने यज्ञमें विघ्न करनेके लिये समागत एकलव्यपुत्रको जय किया। हे महाराज! इन्द्रपुत्र अर्जुन निषादराजके पुत्रको जीतकर उसके द्वारा परमादर पूर्व्वक पूजित होके फिर दक्षिण समुद्रकी ओर गये। वहां द्राविड़, अन्ध्र, रौद्रकर्म्मा माहिषक और कालगिरेय लोगोंके सङ्ग किरीटिका युद्ध हुआ था। उन लोगोंको जीतकर घोड़ेके वशवर्त्ती होकर अर्जुनने सुराष्ट्रकी ओर गमन किया, फिर घोड़ा गोकर्णमें पहुंचके प्रभासमें जाकर वहांसे वृष्णिवीरोंसे पालित रमणीय द्वारकापुरीमें पहुंचा।

कुरुराजके यज्ञीय घोड़ेको द्वारवतीपुरीमें आया हुआ देखकर यादवकुमारगण उसे उन्मथित करने लगे, परन्तु वृष्णान्धकपति उग्रसेनने नगरसे बाहिर होकर कुमारोंको निवारण किया। फिर वह किरीटीके मामा वसुदेवके सङ्ग मिलकर कुरुश्रेष्ठ अर्जुनके निकट जाकर प्रीतिके सहित विधिपूर्व्वक परम आदरसे उनकी अभ्यर्थना करते हुए स्थित हुए; तब अर्जुन उन लोगोंसे अनुमति लेकर घोड़ेके पीछे गमन करने लगे। अनन्तर घोड़ा समुद्रके पश्चिम देशमें विचरते हुए स्फीत होकर क्रम क्रमसे पञ्चनदमें गया। हे कौरव्य! घोड़ा उस देशसे इच्छानुसार गान्धार देशमें गया; वहां-पर पहिले वैरके अनुसार गान्धारराज शकुनिके पुत्रके सङ्ग सव्यसाचीका तुमुल संग्राम हुआ।

८३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गान्धारराज महारथ वीरश्रेष्ठ शकुनिपुत्र पताका, ध्वजा माला हाथी घोड़े और रथयुक्त महासेनाके बीच घिरकर युद्ध करनेके लिये अर्ज्जुनके निकट गया। योद्धाओंने राजा शकुनिके मरनेसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर धनुष ग्रहण करके रणभूमिमें अर्जुनके सामने गमन किया। युद्धमें अपराजित धर्म्मात्मा बीभत्सु अर्ज्जुनने उन लोगोंको युधिष्ठिरका हित बचन सुनाया, उन लोगोंने उस वचनको नहीं माना। जब पाण्डुपुत्र अर्जुनके सान्त्वभावसे निवारण करनेपर भी उन लोगोंने उस बचनको न सुनके क्रोधपूर्व्वक घोड़ा पकड़नेके लिये गमन किया, तब अर्ज्जुन क्रुद्ध होकर खिलवाड़की भांति गाण्डीवसे छूटे हुए दीप्ताग्र क्षुरके सहारे उनका शिर काटने लगे। हे महाराज! योद्धा लोग अर्जुनके द्वारा घायल तथा बाणोंकी बर्षासे अत्यन्त पीड़ित होकर घोड़ेको छोड़के सम्भ्रमके सहित निवृत्त हुए। अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुनने फिर गान्धार योद्धाओंके द्वारा एकबारही रोके जानेपर भी बार बार बाण चलाकर उन लोगोंका सिर काटे।

जब अर्ज्जुन युद्धमें गान्धार सेनाको सब भांतिसे संहार करने लगे, तब राजा शकुनिके पुत्रने युद्ध करते हुए पार्थको निवारण किया। क्षत्रधर्म्ममें स्थित राजा शकुनिपुत्रके युद्ध करते रहनेपर अर्जुनने उससे कहा, कि राजा युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार राजा लोग मेरे बध्य नहीं हैं; इसलिये अब युद्धकी आवश्यकता नहीं है, और आज तुम्हारी भी पराजय न होवे। जब पार्थने शकुनिपुत्रसे ऐसा कहा, तब वह अज्ञानसे मोहित होकर उस वचनका अनादर करते हुए शक्रसदृश कर्म्मकारी अर्ज्जुनकी

बाणोंसे छिपा दिया। अमियात्मा पृथापुत्र अर्ज्जुनने जिस प्रकार जयद्रथका सिर काटा था, उसी भांति कङ्कपत्र बिभूषित अर्द्धचन्द्र बाणसे शकुनिपुत्रका सिरस्त्राण हरण किया। गान्धार सेना अर्ज्जुनके उस कार्य्यको देखकर परम विस्मित हुई; अर्ज्जुनने इच्छा रहनेपर भी शकुनिपुत्रका बध नहीं किया; उससे सबने उन्हें राजा कहके बोध किया।

अनन्तर गान्धारराजका पुत्र पलायनपरायण होकर डरे हुए क्षुद्र मृगोंकी भांति उस डरी हुई सेनाके सहित भागा। योद्धाओंके भागनेपर पृथापुत्र अर्ज्जुन सन्नत पर्व्वयुक्त भल्लास्त्रसे उनके सिर काटने लगे। अर्ज्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए पृथुल बाणोंसे उंचो भुजाओंके कटनेसे किसीकिसीको मालूम हो न हुआ। मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बीच कोई दौड़ने, कोई गिरने तथा कोई विध्वस्त होकर बार बार लोटने लगा। जो सब शत्रु अर्ज्जुनके संग युद्ध करनेमें समर्थ थे उनके मारे जानेपर उस प्रधान कर्म्मा वीरश्रेष्ठ पार्थके सामने कोई भी न दीख पड़ा।

अनन्तर गान्धारराजकी जननी भयभीत होकर वृद्ध मन्त्रियोंके सहित हाथमें उत्तम अर्घ लेकर अर्ज्जुनके निकट गई। वह सावधानचित्तसे युद्धदुर्म्मद पुत्रको संग्रामसे निवारण करती हुई जिष्णु धनञ्जयको प्रसन्न करने लगी। प्रभु विभत्सु पार्थ उसे सम्मानपूर्व्वक प्रसन्न करके शकुनिपुत्रको धीरज देते हुए बोले।

हे महाबाहो! तुमने इस समय जिस बुद्धिके वशवर्त्ती होकर मेरे विरुद्ध युद्ध करनेकी अभिलाष की थी, तुम्हारे संग मेरा भ्रातसम्बन्ध रहनेसे मैं उससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। हे पापरहित राजन्! धृतराष्ट्रके कार्य्य और गान्धारी माताका स्मरण होनेसे ही तुम्हें जीवन लाभ हुआ है, परन्तु तुम्हारे सब अनुचर मारे गये। जो हो, तुम्हारे सहित तथा तुम्हारे संग मेरे वैरको शमता रहो; परन्तु फिर कभी तुम्हारी ऐसी बुद्धि न होवे; तुम आगामी चैती पूर्णिमामें हमारे राजा युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें गमन करना।

८४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्ज्जुन गान्धारराजसे इतनी बात कहके कामविहारी घोड़ेको निवृत्त करके वहांसे चले, घोड़ा भी लौटकर हस्तिनापुरकी ओर चला।

राजा युधिष्ठिर दूतके मुखसे घोड़ेकेसहित अर्ज्जुनके कुशलपूर्व्वक लौटनेकी वार्त्ता सुनाके अत्यन्त हर्षित हुए और गान्धारराज तथा अन्यान्य देशोंमें पराक्रमी अर्ज्जुनको जयका वैसा कर्म्म सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए।

महातेजस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिरने इतने समयके बीच माघी द्वादशी और इष्ट पुष्यनक्षत्र पाके भीमसेन, नकुल और सहदेव प्रभृति भाइयोंको बुलाया, उस समय धार्म्मिकश्रेष्ठ पृथ्वीनाथ युधिष्ठिर महायोद्धा वाग्मिवर भीमसेनको सम्बोधन करके बोले, हे भीम! तुम्हारे भाई धनञ्जय घोड़ेके सहित आरहे हैं, यह सम्वाद मुझसे उनके सेवकोंने आकर कहा है। हे वृकोदर! यही समय उपस्थित है, घोड़ा भी अभिमुखी हुआ है, यही माघी पौर्णमासी है, इसके बाद माघ बीतेगा; इसलिये अश्वमेधको सिद्धि तथा यज्ञस्थान निरूपण करनेके लिये तुम विद्वान वेदपारग ब्राह्मणोंको भेजो।

भीमसेनने ऐसा बचन सुनके राजा युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार कार्य्य किया और पुरुषश्रेष्ठ गुड़ाकेशके आनेकी वार्त्ता सुनके अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर वृकोदरने यज्ञकर्म्ममें कुशल ब्राह्मणोंको आगे करके बुद्धिमान स्थपति गणोंके सहित गमन किया। उस कुरुवंशीय भीमसेनने स्थपतिगणोंके सहारे गृहसमूहसे परिपूरित परम शोभित प्रशस्त प्रतोलीयुक्त यज्ञवाटको

विधिपूर्व्वक मापा। अनन्तर सेकड़ों प्रासादोंसे घिरा हुआ उत्तम मणियुक्त सुवर्ण तथा अनेक रत्नोंसे विभूषित कुटिम निर्म्माण कराया। उस गृहके स्तम्भों और बृहत् तोरणोंको सोनेसे चित्रित कराया तथा यज्ञस्थानमें शुद्धकाञ्चन प्रदान करके उस स्थानमें विधानपूर्व्वक अन्तः-पुर और अनेक देशोंसे आये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंके निमित्त बहुतसे गृह बनाये। फिर उन्होंने राजा युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार अक्लिष्ट-कारी राजाओंके पास दूत भेजा; राजा लोग कुरुराज युधिष्ठिरकी प्रियकामनासे बहुतसे रत्न स्त्री, अश्व और अनेक प्रकारके शस्त्र लेकर आये। महात्मा महीपालोंके शिवरोंमें प्रवेश करनेके समय शब्दायमान समुद्रके शब्द समान उन लोगोंके कोलाहलका शब्द आकाशमण्ड-लको स्पर्श करने लगा।

कुरुनन्दन धर्म्मराज राजा युधिष्ठिरने समा-गत राजाओंको उत्तम अन्न जल और उत्कृष्ट शय्या प्रदान करनेके लिये सेवकोंको आज्ञा की और वाहनोंके लिये गृह, धान्य, ऊख तथा दूध प्रदान करनेके लिये आज्ञा दी। बुद्धिमान् धर्म्मराजके उस महायज्ञमें बहुतसे ब्रह्मवादी ब्राह्मण मुनिगण आये। हे पृथ्वीपाल! जो सब द्विजवर शिष्योंके सहित आये, कुरुपतिने उन सबको आदरपूर्व्वक बैठाया। महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर दम्भ त्यागके स्वयं सबके गृहपर गये तथा ब्राह्मणों और राजाओंका अनुगमन करने लगे।

अनन्तर स्थपति तथा अन्यान्य शिल्पोगणने यज्ञीय गृहादि तैयार करके धर्म्मराजके समीप सब वृत्तान्त कहा। धर्म्मराज युधिष्ठिर सब कार्य्योंको पूरा हुआ सुनके भाइयोंसे आदरयुक्त तथा अतन्द्रित होकर आनन्दित हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस यज्ञके आरम्भ होनेपर हेतुवादी वाग्मी ब्राह्मणगण आपसमें जिगीषु होकर बहुतसे हेतुवाद कहने लगे। हे भारत! राजालोग देवेन्द्रयज्ञकी भांति भीमसे-नके द्वारा विहित उस उत्तम यज्ञकी विधि और इधर उधर सुवर्णमय तोरणोंको देखने लगे; वहांपर शय्या, आसन, विहार, बहुतसे जलपात्र घड़े पात्र, कलश और शराव प्रभृति जितनी वस्तु थीं, उन सबको स्वर्णमयके अतिरिक्त अन्य धातुओंकी नहीं देखा। राजा लोग इच्छानु-सार विधिपूर्व्वक बने हुए सुवर्णभूषित दारुमय मन्त्रसंस्कृत यूप तथा वहां आये हुए स्थलज और जलज पशुओंको देखने लगे। वे लोग वहांपर गऊ, महिष, महाबृढ़ास्त्री, जलजन्तु, श्वापद, पक्षी, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज पर्व्वतीय और अनूप जात प्राणियोंको देखने लगे। इसही प्रकार राजा लोग पशु, गोधन और धान्यके द्वारा प्रमुदित होकर परम विस्मित हुए। उस यज्ञमें सेकड़ों सहस्रों ब्राह्मण तथा अन्यान्य मनुष्यगण उत्तम रीतिसे बनी हुई बहुमूल्य वस्तुओंको खाने लगे, दिन बीतनेपर बादलके शब्द सदृश शब्दायमान नगाड़ा बार बार बाजने लगा; बुद्धिमान् धर्म्म-राजका यज्ञ इसही भांति वर्द्धित होने लगा।

हे महाराज! उस समय पर्व्वतके सदृश बहु-तसे अन्नके ढेर तथा दही, दूध और घृतके तला-वोंको देखकर सब कोई विस्मित हुए। हे राजन्! महाराजके महायज्ञमें समस्त जम्बू-द्वीप अनेक जनपदोंसे परिपूरित होनेसे कोई एक स्थानमें रहके देखनेमें समर्थ न हुआ। वहांपर कई जातिके पुरुषोंने अनेक भांतिके पात्रोंको ग्रहण करके गमन किया। उत्तम रीतिसे परिष्कृत मणिमय कुण्डल और माला पहरे हुए सहस्रों पुरुष द्विजातियोंको भोज्य-वस्तु परिवेषण करने लगे। जो सब सेवक आये थे, वे लोग राजभोग्य विविध अन्न और जल ब्राह्मणोंको प्रदान करने लगे।

८५ अध्याय समाप्त।

———

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिरने वेद जाननेवाले ब्राह्मणों और राजाओंको आया हुआ देखकर भीमसेनसे कहा। हे पुरुषश्रेष्ठ! जो ये सब राजा लोग आये हैं, सभी पूजनीय हैं; इसलिये इनकी पूजा करो।

महातेजस्वी भीमसेन यशस्वी नरनाथ युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके यमज नकुल और सहदेवके सहित उन राजाओंकी पूजा करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर सर्व्वप्राणिश्रेष्ठ गोविन्द बलदेवको आगे करके सात्यकि प्रद्युम्न गद निशठ शाम्ब और कृतवर्म्मा प्रभृति वृष्णिवंशियोंके सहित धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके निकट आये। महारथ भीमसेनने उन लोगोंकी भी पूजा की और वे लोग भीमसेनके द्वारा पूजित होकर अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण गृहके बीच गये।

अनन्तर मधुसूदनने युधिष्ठिरके सङ्ग वार्त्तालाप करके उनके समीप संग्रामकर्षित महाबाहु अर्जुनको उद्देश्य करके अनेक प्रकारके वचन कहे। कुन्तीपुत्र धर्म्मनन्दन जगश्रेष्ठ युधिष्ठिरने अरिदमन देवकीनन्दनसे बार बार स्वागत प्रश्न किया, तब उन्होंने धर्म्मराजसे कहा, हे प्रभु! जिसने संग्राम कर्षित उस पाण्डवश्रेष्ठ धनञ्जयकी रक्षा की थी, वह द्वारकावासी आप्त पुरुष तुम्हारे समीप आये हैं; अब आप अश्वमेध सिद्धिके निमित्त सब कार्य्य करिये।

धर्म्मराज युधिष्ठिर कृष्णका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, हे माधव! वह जिष्णु धनञ्जय मेरे भाग्यसे ही कुशली होकर आये हैं। उस पाण्डव-बलाग्रणी धनञ्जयने इस यज्ञमें जो व्यवस्था की है, उसे तुम्हारे समीप जतानेकी इच्छा करता हूं।

अनन्तर शास्त्रिवर वृष्णि और अन्धकपति कृष्ण धर्म्मात्मा धर्म्मराज युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके अर्ज्जुनकी बात स्मरण करके बोले, हे महाराज! अर्ज्जुनने मुझसे यह बात कही है, कि कृष्ण तुम समयके अनुसार राजा युधिष्ठिरसे मेरा यह वचन कहना, कि 'हे कौरवर्षभ! इस यज्ञमें जो सब महात्मा राजा लोग आवेंगे, हम लोगोंको विशेष करके उनकी पूजा करनी होगी। हे मानद! इसके अतिरिक्त राजाको मेरा यह हित वचन सुनाना, कि जिसमें अर्घप्रदान विषयमें आत्ययिक न हो, वही आप करिये तथा उस विषयमें अनुमति करियेगा। हे महाराज! राजद्वेषके हेतु जिसमें यह प्रजासमूह विनष्ट न होवे"।

हे कौन्तेय! उस पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयने इतना कहके और एक बात जो मुझसे कही है, उसे सुनो; उन्होंने कहा है, मेरा परमप्रिय पुत्र मणिपुरका राजा महातेजस्वी बभ्रुवाहन इस यज्ञमें आवेगा; आप मेरे अनुरोधसे उसका विधिपूर्व्वक समादर करना। हे प्रभु! वह मेरा अत्यन्त भक्त और अनुरक्त है।

धर्म्मराज युधिष्ठिर इतनी बात सुनके उनके उस वचनका अभिनन्दन करते हुए यह वचन कहने लगे।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण! मैंने इस प्रिय वचनको सुना, हे प्रभु! तुम्हारे मुखसे निकली हुई अमृतरस सदृश पवित्र वाणी मेरे चित्तको अत्यन्त आनन्दित करती है। हे हृषीकेश! मैंने सुना है, कि अर्ज्जुन जिन स्थानोंमें गये थे, उन स्थानोंमें राजाओंके सङ्ग उनका फिर बहुत युद्ध हुआ था, बुद्धिमान् पृथापुत्र अर्ज्जुन किस लिये सदा सुखरहित हुआ है, उसे मैं नहीं जानता; इससे मेरा चित्त बहुतही दुःखित होता है। हे जनार्द्दन! मैं निर्ज्जनमें कुन्तीपुत्र धनञ्जयके विषयमें विचार करके देखता हूं, कि वह सदाही दुःख भोग किया करता है। हे कृष्ण! जिन लक्षणोंसे दुःख भोगना होता है, धनञ्जयके सब लक्षणोंसे पूजित शरीरमें क्या वे

अनिष्ट-सूचक लक्षण हैं? सदा अत्यन्त सुख-भोगी कुन्तीपुत्र विभत्सुके शरीरमें मैं तो कुछभी अनिष्ट चिन्ह नहीं देखता? हे कृष्ण! यदि मेरे सुनने योग्य हो, तो मेरे समीप तुम्हें यह विषय कहना उचित है।

भोज राजन्य वर्द्धन हृषीकेश युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके उत्तम महत् उत्तर सोचके राजासे बोले, हे राजन्! पुरुषसिंह धनञ्जयकी पिण्डिका अर्थात् दोनों जानुके नीचे पश्चद्भागीय मांसल स्थानके अतिरिक्त दूसरा कोई अविवित्त लक्षण नहीं मालूम होता। दोनों पिण्डिकाके अधिक रहनेसे ही पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जय सदा मार्गमें भ्रमण किया करते हैं; इसके अतिरिक्त जिससे वह दुःखभागी हों, वैसा मैं कोई लक्षण नहीं देखता। तब पुरुष प्रवीर युधिष्ठिर बुद्धिमान कृष्णका ऐसा वचन सुनके बोले, हे प्रभु! तुमने जो कहा, वही सत्य है।

अनन्तर कृष्णा द्रौपदीने असूयापूर्व्वक कृष्णका -दर्शन किया, सखी द्रौपदीके सखा केशिहा हृषीकेशने साक्षात् धनञ्जयकी भांति उसके उस प्रणयको प्रतिग्रह किया। वहांपर जो सब भीम प्रभृति कौरव तथा याजकवृन्द विद्यमान थे, वे लोग अर्जुनकी उस विचित्र शुभ कथाको सुनके आनन्दके सहित क्रीड़ा करने लगे। वे लोग आपसमें अर्जुनकी कथा कह रहे थे, उसी समय महात्मा विजयको आज्ञासे एक दूत वहांपर उपस्थित हुआ; उस बुद्धिमान दूतने निकटमें जाकर कुरुपति युधिष्ठिरको प्रणाम करके पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके आनेकी वार्त्ता सुनाई। राजाने दूतके उस वचनको सुनके हर्षसे वाष्पकुलनयन होकर प्रियाख्यानके निमित्त बहुतसा धन दान किया।

अनन्तर दूसरे दिन कुरुकुल धुरन्धर पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयके आनेके समय महान् शब्द प्रकट होने लगा। अनन्तर उच्चैश्रवाकी भांति चारों ओर वर्त्तमान घोड़ोंके पांवकी धूली उड़ी। वहां अर्ज्जुन मनुष्योंका ऐसा हर्षयुक्त वचन सुनने लगे, कि हे पार्थ! तुम भाग्यसे ही कुशलपूर्व्वक लौटे हो; तुम्हें और युधिष्ठिरको धन्य है। अर्ज्जुनके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है, जो युद्धमें राजाओंको जीतकर समुद्रके सहित पृथ्वी भरमें घोड़ेके सङ्ग घूमके फिर लौट आवे। सगर प्रभृति जो सब राजा होगये, उनका भी हम लोगोंने ऐसा अत्यन्त कठिन कर्म्म नहीं सुना था। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! तुमने जो दुष्कर कर्म्म किया है, इस आगेको बोध होता है, वैसा कर्म्म भविष्यमें राजा लोग न कर सकेंगे।

धर्म्मात्मा फाल्गुनने उन लोगोंका ऐसा कर्णसुखकर वचन सुनके यज्ञसंस्तरमें प्रवेश किया, तब मन्त्रियोंके सहित राजा युधिष्ठिर और यदुनन्दन कृष्ण धृतराष्ट्रको आगे करके उनके समीप गये।

धनञ्जयने पिता धृतराष्ट्र और बुद्धिमान धर्म्मराजके दोनों चरण छूके भीम प्रभृतिको पूजाकर केशवको आलिङ्गन किया। महाबाहु अर्ज्जुन उन लोगोंके द्वारा पूजित होके उनकी पुनर्व्वार पूजाकर तटप्राप्त करनेवाले पारगामी पुरुषकी भांति विश्राम करने लगे।

इस ही समय धीमान् राजा बभ्रुवाहन दोनों माताओंके सहित कुरुगणके निकट उपस्थित हुआ। वहांपर उसने बूढ़ों तथा अन्यान्य राजाओंको प्रणाम कर उनसे प्रतिनन्दित होके पितामही कुन्तीके उत्तम गृहमें गया।

८७ अध्याय समाप्त।

———

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबाहु बभ्रुवाहनने पाण्डवोंके उत्तम शोभायमान गृहमें प्रवेश करके शान्तभावसे पितामहीको प्रणाम किया। अनन्तर चित्राङ्गदा देवी तथा कौरव्य-नागपुत्री उलूपी दोनोंने एकत्रित होकर विनयपूर्व्वक पृथा और कृष्णा द्रौपदीको प्रणाम करती हुई सुभद्रा प्रभृति अन्यान्य कुरुस्त्रियोंको न्यायके अनुसार प्रणाम किया।

अनन्तर कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य कुरुस्त्रियोंने उन्हें विविध रत्न दान किया; वे महामूल्यवान् शय्या तथा आसनपर बैठीं। पार्थकी हितकामनासे कुन्तीने स्वयं उनका उत्तम रीतिसे आदर किया।

इधर महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहनने कुरुवृद्धजनोंसे सम्मानित होकर पृथ्वीपति धृतराष्ट्रकी विधिपूर्व्वक पूजा की; फिर राजा युधिष्ठिर और भीमादि पाण्डवोंके निकट जाके उन्हें विनयपूर्व्वक प्रणाम किया। वह पाण्डवोंसे प्रेमके सहित आलिङ्गित तथा सम्मानित हुआ और महारथ पाण्डवोंने परम प्रसन्न होके उसे धन दान किया। अनन्तर पृथ्वीपति बभ्रुवाहनने प्रद्युम्नकी भांति चक्र तथा गदाधारी कृष्णकी विनयपूर्व्वक पूजा की; कृष्णने उस राजा बभ्रुवाहनको दिव्य घोड़ोंसे युक्त सुवर्णभूषित शोभायमान रथ प्रदान किया। धर्म्मराज, भीमसेन, नकुल और सहदेव; इन्होंने भी पृथक् रीतिसे उसे सम्मानित करते हुए बहुतसा धन दिया।

तिसके अनन्तर तीसरे दिन महामुनि वाग्मी सत्यवतीपुत्र व्यास युधिष्ठिरके पास आके उनसे बोले, हे कौन्तेय! आजसे तुम यज्ञ करो, तुम्हारे यज्ञ करनेका मुहूर्त्त उपस्थित होनेसे यज्ञ करानेवाले पुरुष तुम्हें यज्ञ करनेके लिये आज्ञा कर रहे हैं। हे राजेन्द्र! बहुतसा सुवर्ण सञ्चित होनेसे तुम्हारा यह यज्ञ बहु सुवर्णान्वित कहके विख्यात हुआ है; इसलिये यह यज्ञ पूरी रीतिसे सिद्ध होगा। हे महाराज! इस यज्ञमें तिगुनी दक्षिणा और यज्ञवाले तिगुने ब्राह्मणोंको नियुक्त करो; हे नरनाथ! ऐसा करनेसे तुम इस एक ही यज्ञसे तीन अश्वमेध यज्ञका फल पाके स्वजन वध जनित पापसे मुक्त होगे। हे कुरुनन्दन! तुम जो अश्वमेधका अवभृत लाभ करोगे, वह परम पवित्र है।

अनन्तर तेजस्वी धर्म्मात्मा धर्म्मराज अमित बुद्धिमान व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके अश्वमेधकी सिद्धिके निमित्त दीक्षा लेनेके लिये गये। फिर महाबाहु राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध महायज्ञको अनेक दक्षिणा, सर्व्वकाम तथा सर्व्वगुणोंसे युक्त किया। हे राजन्! उस यज्ञमें सर्व्वज्ञ वेद जाननेवाले याजकवृन्द परिक्रमा करते हुए उत्तम शिक्षा तथा विधिके अनुसार सब कार्य्य करने लगे; उन लोगोंके कार्य्य किसी अंशमें स्खलित तथा अधूरे नहीं हुए; बरन वे लोग रीति तथा योग्यताके अनुसार सब कार्य्य करने लगे।

हे राजन्! द्विजगणने प्रवर्ग अर्थात् अश्वमेध विहित धर्म्मोख्य समस्त ऋक् एकत्रित करके विधिपूर्व्वक सोमवल्ली कूटा। सोम पीनेवाले ब्राह्मण लोग शास्त्रके अनुसार उस सोमलतासे रस बाहिर करते हुए आनुपूर्व्विक प्रातःसेवन करने लगे; उस यज्ञमें जितने मनुष्य विद्यमान थे, उनके बीच कोई कृपण, दरिद्र भूखा, दुःखी वा प्राकृत नहीं था। प्रजानाथक महातेजस्वी भीमसेन राजाकी आज्ञानुसार सदा भोजनार्थी पुरुषोंको भोज्यवस्तु प्रदान करने लगे। संस्तर अर्थात् इष्टका सञ्चलनाख्य स्थण्डिल रचनामें निपुण याजकगण प्रतिदिन शास्त्रदृष्टिके अनुसार सब कार्य्य करने लगे; बुद्धिमान धर्म्मराजके यज्ञमें षड़ङ्गनभिज्ञ और व्रतविहीन तथा वादाविचक्षण उपाध्यायन थे।

हे भरतर्षभ! अनन्तर यूपके उच्छ्रय उपस्थित होनेपर याजकोंने कुरुराजके यज्ञमें छः बेल, छः खदिर, छः पलास, दो देवदारु और एक श्लेष्मातक काष्ठसे यूप तैयार किया। फिर भीमसेनने धर्म्मराजकी आज्ञानुसार शोभाके लिये सुवर्णके द्वारा बहुतसा यूप निर्म्माण कराया। हे राजर्षि! सुरलोकमें सप्तर्षियोंसे घिरे हुए महेन्द्रके अनुगत देवताओंकी भांति वे सुवर्णमय यूप विचित्र वस्त्रोंसे चित्रित होकर अत्यन्त शोभित हुए। उस यज्ञमें अग्नि रखनेके लिये सुवर्णमय इष्टिका बनी थीं, इससे दक्ष-

प्रजापतिके अग्निचयनकी भांति वह अग्निचयन सुशोभित हुआ। चार स्थण्डिलोंसे युक्त उस यज्ञकी वेदी अठारह हाथ परिमित रुक्मपक्ष-युक्त त्रिकोण तथा गरुड़ाकारसे बनाई गई।

अनन्तर मनीषियोंके द्वारा शास्त्रके अनुसार देवताओंके उद्देश्यसे जो सब पशु, पक्षी, ऋषभ तथा जलचर नियुक्त हुए थे, ऋत्विकोंने उस अग्निचयन कर्म्ममें उन पशुओंका अभियोग किया। महात्मा कुन्तीपुत्रके यज्ञमें अश्व प्रभृति तीन सौ पशु यूपमें निबद्ध हुए; युधिष्ठिरका यज्ञ स्थान देवताओं तथा ऋषियोंके समागम, गन्धर्व्वोंके सङ्गीत और अप्सराओंका नृत्य होनेसे अत्यन्त शोभित होने लगा। किम्पुरुषोंसे समाकीर्ण्ण किन्नरोंसे उपशोभित, सिद्ध और ब्राह्मणोंसे परिवेष्टित हुआ।

उस सभामण्डपके बीच सर्व्वशास्त्र प्रणेता यज्ञ संस्कारमें निपुण द्विजश्रेष्ठ व्यासशिष्योंके बैठनेपर महातेजस्वी गीतकोविद नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, चित्रसेन तथा नृत्यगीत जाननेवाले गन्धर्व्वगण उन ब्राह्मणोंको आनन्दित करने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, याजक द्विजातियोंने अन्यान्य रमणीय पशुओंका विधानपूर्व्वक श्रपण अर्थात् संस्कार करके शास्त्रके अनुसार उस घोड़ेका बध किया। अनन्तर याचकगणने यथा रीति घोड़ेको मारके मन्त्र द्रव्य और श्रद्धायुक्त विधिपूर्व्वक मनस्विनी द्रुपदपुत्रीको बैठाया। हे भरतश्रेष्ठ! तिसके अनन्तर द्विजातियोंने शास्त्रके अनुसार उस घोड़ेके बक्षस्थलसे वपा उठाकर सावधानचित्तसे उसे अग्निमें संस्कार किया। उस समय धर्म्मराजने भाइयोंके सहित सर्व्वपापनाशक उस वपाके धूमयुक्त गन्धको शास्त्रके अनुसार सूंघा; हे नरनाथ! वे धीरवर सोलह ऋत्विक् उस घोड़ेके अवशिष्ट अङ्गोंको अग्निमें होम करने लगे; भगवान व्यासदेव शिष्योंके सहित इन्द्रसदृश तेजस्वी धर्म्मराजके उस यज्ञको इस ही भांति पूरा करके बचनसे राजा युधिष्ठिरको बर्द्धित करने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको विधिपूर्व्वक एक एक सहस्र निष्क (स्वर्णमुद्रा) दान करके वेदव्यास मुनिको बसुन्धरा प्रदान की। हे महाराज! सत्यवती पुत्र व्यासदेव पृथ्वी प्रतिग्रह करके भरतश्रेष्ठ धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बोले, हे राजसत्तम! यह पृथ्वी तुम्हें ही अर्पित हुई, ब्राह्मण लोग धन पानेसेही परम सन्तुष्ट होते हैं, इसलिये मुझे तथा उन लोगोंको इसका मूल्यदो।

महामना युधिष्ठिर भाइयोंके सामने उन ब्राह्मणोंसे बोले, कि अश्वमेध यज्ञमें पृथ्वी-दक्षिणा ही विहित है; इस ही लिये मैंने अर्ज्जुनके द्वारा अर्ज्जित यह बसुन्धरा ऋत्विकोंको प्रदान की है। हे विप्रगण! आप लोग इस पृथ्वीको विभाग करके ग्रहण करिये, मैं बनको जाऊंगा। चातुर्होत्रके प्रमाण अनुसार इस पृथ्वीको मेरे चार भागोंमें विभक्त करनेसे यह ब्रह्मस्व हुई, मैं फिर इसे लेनेकी इच्छा नहीं करता। हे विप्रगण! मैंने जो कहा, मेरे भाइयोंका भी ऐसा ही अभिप्राय है।

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उनके भाइयों और द्रौपदीने कहा, कि महाराजने जो कह दिया, 'हमारा भी वही अभिप्राय है।' उस समय उन लोगोंका ऐसा बचन सुनकर सबके शरीरके रोएं खड़े होगये।

हे भारत! तिसके अनन्तर आकाशसे साधुवाद और सभाके बीच द्विजगणका प्रशंसावाद प्रकट हुआ। मुनिश्रेष्ठ वेदव्यास और कृष्ण ब्राह्मणोंके बीच युधिष्ठिरकी पूरी रीतिसे पूजा करते हुए फिर बोले, कि तुमने मुझे पृथ्वी दान किया था, मैंने इसे तुम्हें फिर दे दी; तुम ब्राह्मणोंको पृथ्वीके पलटेमें सुवर्ण दान करो; यह बसुन्धरा तुम्हारी ही रहे।

अनन्तर कृष्णने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे कहा, कि भगवान वेदव्यासने जैसा कहा आपको वैसा ही करना उचित है।

कुरुराज युधिष्ठिर व्यासदेव और श्रीकृष्णचन्द्रका ऐसा वचन सुनके प्रसन्नचित्तसे भाइयोंके सहित यज्ञके त्रिगुण कोटि कोटि सुवर्णदक्षिणा ब्राह्मणोंको दान की। हे भरतसत्तम! मरुत्त यज्ञके अनुकारी कुरुराजने जो किया, इस लोकमें उनके अतिरिक्त कोई राजा भी वैसा कार्य्य करनेमें समर्थ न होगा।

मुनिसत्तम विद्वान् व्यासदेवने युधिष्ठिरके दिये हुए रत्नोंको प्रतिग्रह करके ऋत्विकोंको प्रदान किया, उन लोगोंनेचार भाग कर लिया। युधिष्ठिर पृथ्वीके मूल्य स्वरूप उस सुवर्णको दान कर भाइयोंके सहित निष्पाप होकर स्वर्ग जय करते हुए अत्यन्त आनन्दित हुए।

उस समय ऋत्विकोंने अपरिसीम आनन्द और उत्साहके सहित द्विजातियोंके समीप वह अपर्य्याप्त सुवर्ण आपसमें बांटके ले लिया। यज्ञवाटमें जो सब सुवर्णमय विभूषण तोरण, धूप, घट, इष्टका और पात्र विद्यमान थीं, ब्राह्मणोंने धर्म्मराजकी आज्ञानुसार उन द्रव्योंको भी विभाग करके ले लिया। अनन्तर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंने उन ब्राह्मणोंको वसु हर लिया; फिर बुद्धिमान धर्म्मराजने वसुके द्वारा ब्राह्मणोंको परितृप्त किया, तब वे लोग अधिक सन्तुष्ट होके अपने अपने गृहपर गये।

इधर महातेजस्वी भगवान् व्यासदेवने महामूल्य हिरण्यके परिमाण अनुसार अपना हिस्सा कुन्तीको दे दिया। पृथा श्वशुर व्यासदेवके पास प्रीतिपूर्व्वक दान पाके प्रसन्नचित्तसे उस वसुके सहारे उत्तम महत् पुण्यकर्म्म करने लगी। राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित अवभृतस्थानमें जाकर पापरहित होके देवताओंसे परिसेवित महेन्द्रकी भांति शोभित हुए। हे महाराज! पाण्डवगण राजाओंसे घिरके तारासमूहसे घिरे हुए ग्रहोंकी भांति शोभित होने लगे। अनन्तर युधिष्ठिरने राजाओंको विविध रत्न, हाथी, घोड़, आभूषण, स्त्री, वस्त्र तथा सुवर्ण प्रदान किया। हे राजन्! उस राज-मण्डलीके बीच अपर्य्याप्त धनदेनेके समय पार्थ विश्रवापुत्र कुबेरकी भांति शोभित हुए।

उसही समय वीरश्रेष्ठ राजा बभ्रुवाहनको समीप बुलाके बहुतसा धन देके गृहमें भेजा और भगिनी दुःशलाके पौत्र उस बालकको प्रीतिपूर्व्वक उसके राज्यपर अधिष्ठित किया। अनन्तर कुरुराज युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित सावधानचित्तसे उन समागत सुविभक्त भली भांतिसे पूजित राजाओंको उनके निज निज स्थानपर भेजकर महात्मा गोविन्द, महाबली बलदेव और प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशियोंको विधिपूर्व्वक सम्मानित करते हुए प्रस्थापित किया।

हे भरतर्षभ! बुद्धिमान धर्म्मराजके बहुतसे अन्न, धन, रत्न, मैरेय सुराके सागर, घृतके पङ्किल तालाव, अन्नके पर्व्वत और रसकी सक-र्दम युक्त वह महायज्ञ इस ही भांति पूर्ण हुआ। कहांतक कहें, उस यज्ञमें इतने खाण्डवराज खाद्य अर्थात् पिप्पली शुण्ठी और शर्करयुक्त मुद्गकी खाद्य सामग्री बनी थीं तथा भोजनकी वस्तु वा पशुवध हुए थे, कि कोई उसकी सीमा करनेमें समर्थ न हुआ। उस समय यज्ञस्थल मत्त, प्रमत्त, मुदित युवतियांसे और मृदङ्ग तथा शङ्खके शब्दसे परिपूरित होनेसे अत्यन्त मनोरम हुआ; अनेक देशवासी पुरुषोंके सदा 'दीयतां भुज्यतां' इस ही प्रकार कोलाहल करते रहने तथा हृष्ट पुष्टजनोंसे परिपूर्ण होनेसे महान् उत्सव होगया। इधर भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरने धनधारा तथा अभिलषित रत्न रूपी रसकी बरसाते हुए कृतार्थ होकर नगरमें प्रवेश किया।

८९ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, मेरे पितामह बुद्धिमान धर्म्मराजके यज्ञमें कौनसा अद्भुत कार्य्य हुआ था, उसे आप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र ! अश्वमेध महायज्ञके निवृत्त होनेपर जो उत्तम आश्चर्य व्यापार हुआ था, उसे आप सुनिये। हे प्रभु ! द्विजवर ब्राह्मणों, स्वजनों, बन्धुसम्बन्धी दीन, अन्ध और दयापात्र लोगोंके तृप्त, महादानके सर्व्वत्र प्रचारित और धर्म्मराजके सिरपर पुष्पवृष्टि होनेपर वहां रुक्मपार्श्व अत्यन्त प्रगल्भ बिलमें बसनेवाला वृहदाकार नीललोचन युक्त एक नकुलने वज्र सदृश शब्द किया। वह नेवला एक बार वैसा शब्द कर मृग तथा पक्षियोंको भयभीत करते हुए मनुष्य वाक्यसे बोला, "हे नराधिपगण ! आपने जो यज्ञ किया है, वह कुरुक्षेत्र निवासी वदान्य उञ्छवृत्ति ब्राह्मणके शक्तुप्रस्थ प्रदानके सदृश नहीं हुआ।"

हे नरनाथ ! ब्राह्मण लोग उस नेवलेका ऐसा वचन सुनके सब कोई अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर उन सबने मिलके उस नेवलेसे पूंछा, कि तुम कहांसे इस साधुसमागम युक्त यज्ञमें आये ? तुम्हारा बल, बुद्धि और अवलम्ब कैसा है ? हम लोग किस प्रकारसे तुम्हें जान सकेंगे ? हमने आगमको उल्लङ्घन न करके शास्त्र तथा न्यायके अनुसार विविध यज्ञीय सामग्रीके द्वारा उत्तम रीतिसे इस यज्ञको सम्पन्न किया है, यह यज्ञ पूजनीय पुरुषोंके शास्त्रदृष्टिके अनुसार विधिपूर्व्वक पूजित, मन्त्र और आहुतिके द्वारा अभिहुत तथा बिना मत्सरके इसमें सब वस्तु दान की गई हैं, अनेक प्रकारके दानसे द्विजातिगण, उत्तम युद्धसे क्षत्रियगण, श्राद्धसे पितामहगण, पालन करनेसे वैश्य, कामसे वरस्त्री, अनुक्रोशके सहारे शूद्र और दानशेषके द्वारा पृथक् जनगण परितुष्ट हुए हैं। हमारे राजाकी पवित्रतासे स्वजन और सम्बन्धीगण, पुण्य हविसे देववृन्द और रक्षा करनेसे शरणागत लोग सन्तुष्ट हुए हैं। ब्राह्मण लोग इच्छापूर्व्वक तुमसे यह पूछते हैं, कि इस यज्ञमें तुमने द्विजातियोंका जो यथार्थ कार्य्य देखा वा सुना है, उसे सत्य कहो। तुम प्राज्ञ हो, दिव्यरूप धारण करके ब्राह्मणोंके सङ्ग तुम्हारा समागम हुआ है ; इसलिये तुम जो कहोगे, उस विषयमें हम लोगोंको श्रद्धा होगी।

नकुल द्विजगणके ऐसा पूछनेपर हंसके बोला। हे द्विजगण ! मैं कभी मिथ्या वा अभिमानयुक्त वचन नहीं कहता। हे द्विजसत्तमगण ! मैंने जो कहा, कि "तुम्हारा यज्ञ शक्तुप्रस्थके तुल्य नहीं हुआ" उसे तुम लोगोंने भी सुना। परन्तु मैंने जिस प्रकार उस कुरुक्षेत्रनिवासी उञ्छवृत्ति वदान्य ब्राह्मणका अद्भुत अनुत्तम शक्तुप्रस्थ देखा तथा अनुभव किया है ; जिसके सहारे वह ब्राह्मण पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूके सहित स्वर्गमें गया है और जिससे मेरा आधा शरीर सुवर्णमय हुआ है, वह मुझे अवश्य कहना योग्य है ; इसलिये तुम लोगोंके समीप विस्तारपूर्व्वक यथार्थ रीतिसे वह सब वृत्तान्त कहता हूं, तुम लोग एकाग्रचित्त होकर सुनो।

नेवला बोला, हे विप्रगण ! न्यायसे प्राप्त ब्राह्मणके दिये हुए उस सूक्ष्म शक्तुप्रस्थका जो उत्तम फल मैं तुम लोगोंसे कहता हूं, उसे तुम सब कोई सावधान होके सुनो। अनेक धार्म्मिकोंसे परिवृत्त धर्म्मक्षेत्र उस कुरुक्षेत्रमें कोई उञ्छवृत्ति ब्राह्मण कापोतिक वृत्ति अवलम्बन करके निवास करता था। वह धर्म्मात्मा जितेन्द्रिय सदाचारयुक्त द्विजवर भार्य्या पुत्र और पुत्रवधूके सहित सदा तपस्या करता और दिनके छठें भागमें उनके सङ्ग भोजन करता था। किसी समय दारुण दुर्भिक्ष उपस्थित होनेपर दिनके छठें भागमें उसके भोजनकी वस्तु सञ्चित न होनेसे वह अन्य समयमें भोजन करने लगा।

हे विप्रगण ! उस समय शस्य समाविष्ट शेष होनेसे उसके पास कुछ भी सञ्चय न रहा, इसलिये वह द्रव्यहीन हुआ। किसी समय उसके पास भोजनकी वस्तु न रहनेसे वह परिवारके सहित अत्यन्त क्षुधित हुआ। तब वह तपस्वी

विप्र शुक्लपक्षमें प्रचण्ड सूर्य्यकी धूपसे युक्त मध्यान्ह समयमें उञ्छवृत्तिके सहारे अन्नका दाना इकट्ठा करते हुए तृष्णार्त्त तथा क्षुधार्त्त हुआ। वह उञ्छ अर्थात् अन्नका दाना न पानेसे परिजनोंके सहित भूखे ही रहा। उस समयको अत्यन्त कष्टसे बिताकर तिसके अनन्तर यव-प्रस्थ उपार्ज्जन किया। अनन्तर उस ब्राह्मणने यवप्रस्थसे सत्तू बनाकर जप सन्ध्या तथा होम आदिक अनेक सत्कर्म्मोंको विधि पूर्व्वक पूरा किया।

अनन्तर उन हरएक तपस्वियोंके कुडव परिमाणसे सत्तू विभाग करके लेनेपर कोई ब्राह्मण अतिथि होकर वहां आके बोला, कि 'मुझे भोजन कराओ'।

हे द्विजसत्तमगण! पवित्रचित्तवाले दान्त, श्रद्धा, दम और शम गुणसे युक्त, असूया, क्रोध, मत्सर मान और अहङ्काररहित उन साधुतपस्वियोंने उस आये हुए अतिथिको देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट चित्तसे उसे प्रणाम करते हुए स्वागत तथा ब्रह्मचर्य्यके सहित गोत्रादि पूछा। वे लोग परस्परमें गोत्रादि मालूम करके उस क्षुधार्त्त अतिथिको कुटीके बीच ले जाके बोले, हे अनघ! तुम्हारे लिये मेरा दिया हुआ यह पाद्य, अर्घ, आसन और नियमसे उपार्ज्जित पवित्र सत्तू तैयार है; हे प्रभु! आप कृपा करके यह सब प्रतिग्रह करिये।

हे राजेन्द्र! वह द्विजवर तपस्वी ब्राह्मणका ऐसा बचन सुनके कुड़व परिमित सत्तू प्रतिग्रह पूर्व्वक भोजन करके तुष्ट न हुआ। वह उञ्छ वृत्ति ब्राह्मण अतिथिको क्षुधार्त्त देखकर उसकी तुष्टिके निमित्त फिर भोजन खोजने लगा। जब ब्राह्मण अतिथिके भोजनके निमित्त सोचने लगा, तब उसकी भार्य्या उससे बोली, कि आप मेरा हिस्सा अतिथिको दीजिये, तो यह द्विजवर परितुष्ट होके अभिलषित स्थानमें जायगा। उस द्विजसत्तमने साध्वी भार्य्याकी इतनी बात सुनके उसे भूखी जानकर उसका सत्तू लेना नहीं चाहा।

उस समय उस विद्वान् विप्रवरने निज अनुमानके अनुसार उस बूढ़ी तपस्विनी परिश्रान्ता चर्म्म और अस्थिभूता कांपती हुई भार्य्याको भूखी जानके उससे कहा। हे शोभने! कीट, पतङ्ग और मृगजाति भी अपनी अपनी स्त्रियोंकी रक्षा तथा पोषण किया करते हैं; इसलिये तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। देखो पुरुष पत्नीके द्वारा अनुकम्पनीय, पुष्ट तथा रक्षित हुआ करता है, धर्म्म, अर्थ, काम, सब सांसारिक कार्य्य सेवा, कुल सन्तति और अपना तथा पितरोंके धर्म्म ये सब पत्नीके ही अधीन हैं। जो पुरुष कार्य्यमें अनभिज्ञ तथा भार्य्याकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, उस मनुष्यको महत् अयश तथा नरक प्राप्त हुआ करता है और प्रदीप्त यशसे भ्रष्ट होनेसे उसे सब लोक नहीं प्राप्त होते।

वह तपस्विनी ब्राह्मणी पतिका ऐसा वचन सुनके उससे बोली, हे द्विज! हम दोनोंका धर्म्म और अर्थ समान ही है, इसलिये आप मुझपर प्रसन्न होके यह चौथा भाग सत्तू प्रस्थ प्रतिग्रह करिये। हे द्विजसत्तम! सत्य, रति, धर्म्म और स्वर्ग ये सब गुणके सहारे निर्ज्जित होते हैं, स्त्रियोंको पति साधन ही सदा अभिलषित है; माताका रज, पिताका वीर्य्य और पति परम देवता है। पतिके प्रसन्न रहनेसे स्त्रियोंकी रति तथा पुत्ररूपी फल उत्पन्न होता है, आप पालन करनेसे पति और भरण करनेसे भर्त्ता है, पुत्र प्रदान करनेसे वरद हुए हैं; इसलिये आप मेरा सत्तूदान करिये। आप जरायुक्त, क्षुधार्त्त, अत्यन्त दुर्व्वलवृद्ध और उपवाससे परिश्रान्त होकर अत्यन्त कृश हुए हैं।

तपस्वी ब्राह्मण भार्य्याका ऐसा बचन सुनके उसका सत्तू प्रतिग्रह करके अतिथिसे बोला, हे द्विज! आप फिर इस सत्तूको प्रतिग्रह करिये।

अतिथि ब्राह्मण फिर शत्तू लेकर उसे खाके तृप्त न हुआ। तब उञ्छवृत्ति उसे देखके बहुत ही सोचने लगा।

अनन्तर पुत्र बोला, हे सत्तम! आप मेरे इस शत्तूको लेकर ब्राह्मणको दीजिये, यह मैंने सुकृत समझके दान किया। विशेष करके सर्व्वदा यत्नपूर्व्वक आपको प्रतिपालन करना ही मेरा अवश्य कर्त्तव्य कार्य्य है, क्योंकि वृद्ध पिताका प्रतिपालन करना ही साधुओंको अभिलषित है। हे विप्रर्षि! तीनों लोकके बीच यह जनश्रुति सदा विद्यमान है, कि बूढ़े पिताको प्रतिपालन करना ही पुत्रका परम प्रयोजन है, आप केवल प्राण धारण करके तपस्या कर सकते हैं, देहधारियोंके शरीरमें प्राण ही परम धर्म्मरूपसे निवास किया करता है।

पिता बोला, हे पुत्र! तुम सहस्र वर्षके होजाओ, तौभी मैं तुम्हें बालक ही समझूंगा, पिता पुत्र उत्पन्न करके उस पुत्रसे कृतकृत्य हुआ करता है। हे पुत्र! इसे मैं जानता हूं, कि बालकोंकी भूख अत्यन्त बलवती होती है, मैं बूढ़ा हूं, इसलिये भूख सहूंगा। हे पुत्र! तुम इस शत्तूको भोजन करके बलवान बनो। हे पुत्र! मेरी अवस्था जीर्ण होनेसे भूख मुझे बाधा न दे सकेगी, मैंने बहुत समयतक तपस्या की है, इसलिये मैं मरनेसे नहीं डरता।

पुत्र बोला, ऐसी जनश्रुति है, कि पुत्र पिताको पुन्नाम नरकसे परित्राण करता है, इसलिये मैं भी आपका पुत्र हूं; जब कि आत्मा पुत्र रूपसे उत्पन्न होता है, तब आपही इस लोकमें अपना परित्राण करिये।

पिता बोला, हे पुत्र! तुम रूप, शील और दमगुणसे मेरे समान हुए, मैंने अनेक भांतिसे तुम्हारी परीक्षा की है; इसलिये तुम्हारा शत्तू ग्रहण किया। द्विजसत्तमने इतना कहके हंसकर शत्तू लेकर अतिथिको दिया, परन्तु अतिथि उस शत्तूको भोजन करनेपर भी तृप्त नहीं हुआ तब वह धर्म्मात्मा उञ्छवृत्ति अत्यन्त लज्जित हुआ।

साध्वी पुत्रवधू ब्राह्मणकी प्रियकामनासे अपना शत्तू लेकर प्रसन्नचित्तसे श्वशुरसे बोली, हे विप्र! आपके सन्तानसे मेरे सन्तान होगा, इसलिये आप मेरा यह शत्तू लेकर अतिथिको दीजिये। आपकी कृपासे मेरा सब अक्षय हो, मनुष्यगण जिन स्थानोंमें जाके शोकसे छूटते हैं, वे सब स्थान पौत्रके द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं। जैसे धर्म्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्ग तथा दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय, ये तीनों अग्नि अक्षय स्वर्गजनक हैं,—पुत्र पौत्र और प्रपौत्र ये तीनों भी वैसेही हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि पुत्र पुरुषको पितृऋणसे मुक्त करता है, पुरुष सदा पुत्र और पौत्रके सहारे उत्तम लोकोंको भोग किया करता है।

श्वशुर बोला, हे सुव्रतचारिणी! मैं तुम्हारे अङ्गोंको वातातपसे विशीर्ण तथा विवर्ण और तुम्हें भूखी तथा हतचेतन देखकर धर्म्मका उपघातक होकर किस प्रकार तुम्हारा शत्तू ग्रहण करूं? हे कल्याणचरितयुक्त कल्याणी! तुम मुझसे ऐसा मत कहो। हे सुभगे! तुम व्रतवती, शौच, शील, तपस्या, तथा कृच्छ्रवृत्तिशालिनी हो; इसलिये इस दिनके छठें भागमें मैं तुम्हें किस प्रकार भूखी देखूंगा? •

पुत्रवधू बोली, हे प्रभु! आप मेरे गुरुके भी गुरु होनेसे परमदेवतास्वरूप हैं, इसलिये आप मेरा शत्तू ग्रहण करिये। हे विप्र! मेरी देह, प्राण तथा धर्म्म गुरुसेवाके ही लिये प्रस्तुत है, इसलिये मैं आपकी कृपासे शुभद लोक प्राप्त करूंगी। आप मुझे भी दृढ़ भक्त जानके मेरा शत्तू ले सकते हैं?

श्वशुर बोला, हे साध्वि! तुम धर्म्म तथा व्रतयुक्त होकर गुरुवृत्ति अवेक्षण करने इस शीलवृत्तिके द्वारा अत्यन्तही शोभा पाती हो; इसलिये तुम वञ्चनाकी पात्री नहीं हो, तुम्हारा

सत्तू ग्रहण करूंगा, परन्तु आज मैंने तुम्हें धर्म्मशीला स्त्रियोंके बीच मुख्य गिना। उन्होंने ऐसा कहके उसका सत्तू लेकर अतिथिको दिया।

तिसके अनन्तर अतिथि उस विप्रवर साधु महात्मा ब्राह्मणके विषयमें सन्तुष्ट हुआ, वह प्रसन्नचित्त होकर उस द्विजवरसे कहने लगा। उस समय पुरुष विग्रह धर्म्मस्वरूप उस वाग्मी द्विजवर अतिथिने ब्राह्मणसे कहा, हे द्विजसत्तम! मैं आपके न्यायसे उपार्ज्जित यथाशक्तिके अनुसार शुद्धदानसे परम परितुष्ट हुआ, सुरलोकमें स्वर्गवासी लोग तुम्हारे इस दानको 'आश्चर्य्य दान' कहके घोषणा कर रहे हैं। यह देखिये, आकाशसे पृथ्वीपर फूलको वर्षा होरही है; सुरर्षि, देवर्षि, गन्धर्व्व तथा देवदूतगण देवताओंको आगे करके स्तुति करते हुए आपके दानसे विस्मित होकर निवास करते हैं। हे द्विज! आप शीघ्र सुरपुरमें जाइये; ब्रह्मलोकगामी विमानपर ब्रह्मर्षिगण तुम्हारे दर्शनको आकांक्षा करते हैं। पितृलोकवासी पितरवृन्द तुम्हारे द्वारा तर गये हैं। बहुतेरे लोग कई युगतक ब्रह्मचर्य्य, दान, यज्ञ तथा तपस्या करके भी सुरपुरमें जानेमें समर्थ नहीं होते। हे द्विज! आप परम श्रद्धापूर्व्वक असङ्कर धर्म्माचरण करते हुए जो तपस्या करते हैं, उस पुण्यसे स्वर्गमें जाइये। हे ब्राह्मणसत्तम! जब आपने शुद्धचित्तसे यह सब दान किया है, तब उस दानसेही देवगण परितुष्ट हुए हैं। क्षुधा प्रज्ञा तथा धर्म्मबुद्धिको नष्ट करती है, जब ज्ञान क्षुधाके विषयमें गमन करता है, तब धीरज दूर हो जाता है; तथापि आपने ऐसे कष्टकर समयमें निजकर्म्मके सहारे स्वर्ग जय किया; इसलिये मुझे बोध होता है, कि जो लोग भूखको जीत सकते हैं, वे निश्चयही स्वर्ग जय करनेमें समर्थ होते हैं। जब पुरुष दान करनेका अभिलाषी होता है, तब उसका धर्म्म किसी प्रकार अवसन्न नहीं होता। आपने ऐसाही विचार करके पुत्र और कलत्रका स्नेह त्यागके धर्म्मको बड़ा जानके तृष्णाको तुच्छ समझा है। मनुष्योंका द्रव्यागम अत्यन्त सूक्ष्म है, सत्पात्रको दान करना उससे भी सूक्ष्म है, सत्पात्रको दान देनेकी अपेक्षा काल, उसकी अपेक्षा श्रद्धा और श्रद्धासे भी स्वर्गद्वार परम सूक्ष्मरूपसे निर्णीत है, इस ही लिये मनुष्यगण मोहवशसे उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। परन्तु क्रोध जीतनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषगण स्वर्गरूप अर्गलयुक्त राजगुप्त दुरासद लोभबीज दर्शन किया करते हैं। जो सब तपोनिष्ठ ब्राह्मण शक्तिके अनुसार दान करते हैं, सहस्र दान करनेमें समर्थ पुरुष एक सौ दान करते हैं, एक सौ दान करनेमें समर्थ पुरुष दस दान करते हैं और जो लोग शक्तिके अनुसार जल दान करते हैं, वे सबके तुल्य फलभागी हुआ करते हैं। हे विप्र! अकिञ्चन राजा रन्तिदेव शुद्धचित्तसे जल दान करके स्वर्गलोकमें गये। हे तात! धर्म्म न्यायसे प्राप्त हुए श्रद्धायुक्त अर्थात् अल्पमात्र दानसे जिस प्रकार परितुष्ट होता है, उस भांति महाफलजनक अधिक दानसे परितुष्ट नहीं होता। राजा नृगने द्विजेन्द्रगणको सहस्र गऊ प्रदान की उसके बीच बिना जाने एक दूसरेकी गऊ दी गई थी, इसीसे वह नरकगामी हुए थे। हे सुव्रत! उशीनर-पुत्र राजा शिविने अपने शरीरका मांस दान करके पुण्यकृत लोकोंको पाके सुरलोकमें विविध सुखभोग किया था। हे विप्र! यथारीति सञ्चित विविध यज्ञ और निज शक्तिसे उपार्ज्जित पुण्यही साधु पुरुषोंका वैभव है। क्रोधसे पुरुषके दानका फल निष्फल होता है और लोभसे स्वर्गगति रोध हुआ करती है। न्यायवृत्त दानवित् मनुष्य केवल तपस्यासे ही स्वर्ग भोग करते हैं, परन्तु दूसरे लोग अनेक दक्षिणायुक्त राजसूय प्रभृति विविध यज्ञ करके भी स्वर्ग भोगनेमें समर्थ नहीं होते। हे विप्र! आपने जो सक्तुप्रस्थके सहारे

अक्षय ब्रह्मलोक जय किया, कई सौ अश्वमेध यज्ञसे भी आपको ऐसा फल न मिलता। हे द्विजवर! आप निष्पाप हुए हैं, इसलिये आजसे सबके बीच मुख्य हुए। यह दिव्य विमान उपस्थित हुआ है, आप इसपर चढ़के स्वच्छन्दतासे ब्रह्मलोकमें जाइये। हे द्विजवर! तुम सुखसे चढ़ो, मैं धर्म्म हूं, मेरा दर्शन करो; तुमने जिस प्रकार अपने शरीरको पवित्र किया; इससे लोकके बीच तुम्हारी कीर्त्ति स्थिर रहेगी। इस समय तुम भार्य्या, पुत्र और पुत्रवधूके सहित सुरपुरमें चले जाओ।

धर्म्मके ऐसा कहनेपर वह द्विजवर भार्य्या, पुत्र और पुत्रवधूके सहित दिव्य यानपर चढ़के सुरलोकमें गया। जब वह धर्म्मज्ञ विप्रवर भार्य्या, पुत्र और पुत्रवधूके सहित सुरलोकमें गया, तब मैं बिलसे बाहिर हुआ।

तिसके अनन्तर सत्तूकी सुगन्धि, जलके क्लेद दिव्य फूलोंके अवमर्द्दन, उस साधु विप्रके दान, जप और तपस्याके बलसे मेरा मस्तक सुवर्णमय हुआ। हे विप्रगण! तुम लोग देखो, सत्याभिसन्ध बुद्धिमान ब्राह्मणके सत्तू दान और तपोबलसे मेरे इस उत्तम विपुल शरीरका अर्द्ध-भाग स्वर्णमय हुआ है। हे द्विजगण! मेरा दूसरा पार्श्व किस भांति ऐसा होगा, इस विषयको सोचकर मैं प्रसन्नचित्तसे तपोवन और यज्ञस्थलमें बार बार भ्रमण करता हूं। बुद्धिमान कुरुराजका यज्ञ सुनके आश्वासित होकर यहां आया, परन्तु मैं सुवर्णमय न हुआ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठगण! इस ही लिये मैंने हंसके कहा, कि तुम्हारा यज्ञ सब भांतिसे सत्तूप्रस्थके सदृश नहीं हुआ। उस समय मैं सत्तूप्रस्थके लेश मात्रसे सुवर्णमय हुआ हूं, इसीसे ऐसा समझता हूं, कि यह महायज्ञ उसके सदृश नहीं हुआ। नेवलेने यज्ञस्थलमें उन द्विजोंसे ऐसा कहके उनके दर्शनपथको अतिक्रम किया, तब ब्राह्मण लोग भी निज निज स्थानपर गये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे परपुरञ्जय! उस महाक्रतु वाजिमेधमें जो आश्चर्य्य व्यापार हुआ था, मैंने वह सब वृत्तान्त आपके समीप कहा। हे नरनाथ! आप उस यज्ञमें किसी भांति विस्मय बोध न करिये, क्योंकि सहस्र कोटि ऋषियोंने उस तपोबलसे सुरलोकमें गमन किया है। सर्व्व भूतोंसे अद्रोह, सन्तोष, शील, आर्ज्जव, तपस्या, दम, सत्य और दान, ये सब साधुसम्मत हैं।

९० अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे प्रभु! जब राजा लोग यज्ञ, महर्षिगण तपस्या और ब्राह्मण लोग शम, दम तथा शान्ति करनेमें समर्थ हैं, तब मेरी समझमें ऐसा निश्चय होता है, कि इस लोकमें यज्ञफलके सदृश कुछ भी नहीं दीखता। हे द्विजसत्तम! बहुतेरे राजा बहुतसे यज्ञ करते हुए इस लोकमें परम यश पाके परलोक तथा सुरपुरमें गये हैं। महातेजस्वी सहस्रनयन सुरराजने अनेक दक्षिणायुक्त बहुतसे यज्ञ करके अखिल सुरराज्य प्राप्त किया है। हे द्विजवर! समृद्धि और विक्रममें सुरराजसदृश भीमार्ज्जुनके सहित महात्मा युधिष्ठिरने जो अश्वमेध महायज्ञ किया था, नेवलने उस यज्ञकी किस निमित्त निन्दा की।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! यज्ञकी प्रधान विधि और फलमें आपके समीप यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनिये।

पहले यज्ञ करनेवाले देवराजके विस्तृत यज्ञमें ऋत्विकोंके कार्य्यमें व्यग्र रहनेपर उस गुणशाली यज्ञमें अग्नि तथा देवगण आहूत और परमर्षिवृन्द उपस्थित हुए। अनन्तर सुप्रतीत उत्तम स्वरयुक्त अश्रान्त स्वागम अध्वर्य्यु वृषभोंके द्वारा पशुगण गृहीत हुए; आलम्भन समयमें ऋषियोंने पशुओंको दीनभावयुक्त देखकर कृपापूर्व्वक इन्द्रके समीप जाकर

उनसे कहा, कि यह यज्ञकी विधि शुभ नहीं हुई है। हे पुरन्दर ! आप महान् धर्म्म करनेके अभिलाषी हुए हैं, परन्तु आप इसे विशेषरूपसे नहीं जानते ; क्योंकि पशुओंसे यज्ञ करना विधिविहित नहीं है। हे प्रभु ! जब कि हिंसा धर्म्म कहके वर्णित नहीं हुआ है, तब यह यज्ञ धर्म्मयुक्त नहीं होता है, इसलिये आपका यह समारम्भ धर्म्मोपघातक होता है। हे सुरराज ! यदि आप धर्म्मकी अभिलाष करते हैं तो ऋत्विकगण वेदके अनुसार आपका यज्ञ करें, उस विधिदृष्ट यज्ञके सहारे ही आपको उत्तम महान् धर्म्म होगा। हे सहस्राक्ष ! आप हिंसा परित्याग करके त्रिवर्षोषित बीजके सहारे यज्ञ करिये। हे शक्र ! यह धर्म्म ही महागुण तथा महाफलजनक कहके विहित है। शतक्रतुने मान और मोहके वशमें होकर उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंके वचनको प्रतिग्रह नहीं किया। हे भारत ! इन्द्रके यज्ञमें उन तपस्वियोंके बीच अत्यन्त ही विवाद होने लगा। किसीने कहा, जङ्गम और कोई बोला स्थावरके द्वारा यज्ञ करना उचित है, ऐसा कहके वे लोग विवाद करते हुए खिन्न हुए। अनन्तर ऋषियोंने इन्द्रके सङ्ग मिलके राजा वसुसे प्रश्न किया, कि हे महाभाग ! यज्ञमें वेद विधि कैसी है ? और मुख्य पशु, किम्वा बीज वा रसके द्वारा यज्ञ करना उचित है ?

पृथ्वीपति वसु उन लोगोंके वचनको सुनकर बलाबलको बिना विचारे ही यह वचन बोले, कि यथोपनीय वस्तुओंके द्वारा यज्ञ करना उचित है। चेदीराज प्रभु राजा वसुने ऐसाही बोलने तथा प्रश्न विषयमें मिथ्या कहनेसे रसातलमें प्रवेश किया। इस ही निमित्त संशयके स्थलमें स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्माके अतिरिक्त बहुज्ञ पुरुषने भी कुछ न कहा और अल्पज्ञोंकी तो कुछ बात ही नहीं है ; पापात्मा अशुद्धबुद्धि मनुष्य यदि दान करे, तो उसका सब दान विनष्ट होता है। उस अधर्म्ममें प्रवृत्त दुरात्मा हिंसक पुरुषको इस लोक तथा परलोकमें दानसे कीर्त्ति नहीं होती। जो मूर्ख धर्म्माभिशङ्की पुरुष निरन्तर अन्यायोपगत वस्तुओंके सहारे यज्ञ करता है, वह उस धर्म्मफलको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो धर्म्मवैतंसिक पापात्मा अधम पुरुष सब लोगोंके विश्वासके निमित्त ब्राह्मणोंको दान करता है और जो निरङ्कुश विप्र राग तथा मोहके वशवर्त्ती होकर पापकर्म्मसे धन उपार्ज्जन करता है, उसे सदा कलुषगति प्राप्त होती है। सञ्चयबुद्धि पुरुष भी पाप तथा अशुद्धताके कारण लोभ और मोहके वशमें होकर प्राणियोंको उद्वेगयुक्त किया करता है। जो मनुष्य मोहके वशमें होकर इस प्रकार धन प्राप्त करके दान वा यज्ञ करता है, पापसे प्राप्त हुए धनसे उसको परलोकमें उस दान तथा यज्ञका फल नहीं मिलता। तपोधन धार्म्मिक पुरुषगण विभवकेअनुसार उञ्छ, मूल, फल, शाक और जलपात्र दान करके स्वर्गमें गमन किया करते हैं, यही महायोग धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। परन्तु दान सब प्राणियोंके विषयमें दया, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, अनुक्रोश, धृति और क्षमा, ये सब सनातन धर्म्मके सनातन मूल हैं ; इतिहासके सहारे विश्वामित्र प्रभृति राजाओंका विषय इस ही प्रकार सुना जाता है। तपस्वी विश्वामित्र, असित, जनक, कक्षसेन, उष्टिसेन, सिन्धु और दिलीप,—ये सब कोई तथा अन्यान्य तपस्वी राजा लोग सत्य और न्यायसे प्राप्त हुए धनसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। हे भारत ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य तपमें निष्ठा करनेवाले पुरुषगण दानधर्म्मादिके सहारे पवित्र होकर सुरपुरमें गमन किया करते हैं।

९१ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे भगवन्! यदि धर्म्मयुक्त दानसे स्वर्ग मिलता है, तो आप उस विषयको विशेष रीतिसे मेरे समीप वर्णन करिये। हे द्विजवर! आप ही इस विषयको कहनेमें समर्थ हैं। हे ब्रह्मन्! उस उञ्छवृत्तिने सत्तू दान करके जो महत् फल प्राप्त किया, वह विषय सत्यरूपसे मेरे समीप कहा गया है, उसमें सन्देह नहीं है, परन्तु सब यज्ञोंमें किस प्रकार इसका निश्चय होगा उसे पूरी रीतिसे आपको वर्णन करना उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिदमन! पहले अगस्त्यके महायज्ञमें जो घटना हुई थी, ऐसे स्थलमें पण्डित लोग उदाहरणस्वरूपसे उस ही इतिहासको वर्णन किया करते हैं।

हे महाराज! पहले सर्व्वभूतहितकारी महातेजस्वी अगस्त्य मुनि द्वादश वार्षिकी दीक्षामें दीक्षित हुए थे; उस यज्ञमें मूलाहारी, फलाहारी, अश्मकुट्ट और मरीचिपायी अग्नि-तुल्य ऋषिगण होतकार्य्यमें नियुक्त थे। वहां परिष्ठष्टिक, वैघसिक अप्रक्षाल प्रभृति यति तथा भिक्षुगण उपस्थित थे। वे लोग सब कोई प्रत्यक्ष धर्म्मोजितक्रोध, जितेन्द्रिय, दान्त, हिंसा और दम्भ वर्ज्जित, पवित्र वृत्तिमें स्थित इन्द्रि-योंके द्वारा अपराजित थे, उन्होंने ही यज्ञमें उपस्थित होके यज्ञ किया। उस यज्ञमें अगस्त्य भगवानने सामर्थ्यके अनुसार अन्न इकट्ठा किया था। हे भरतसत्तम! उस यज्ञमें जो कुछ तथा योग्य कहके निर्द्दिष्ट हुआ था, उसके अनुसार ही बहुतेरे मुनियोंने महायज्ञ किया था। परन्तु इस प्रकार अगस्त्य मुनिका यज्ञ होते रहनेपर इन्द्रने जलकी वर्षा नहीं की। हे महाराज! उस ही निमित्त महात्मा अगस्त्य मुनिके उस यज्ञके समय भावितात्मा मुनिगण यह वार्त्ता करने लगे, कि यह यजमान अगस्त्य मुनि मत्सररहित होकर अन्न दान कर रहे हैं, परन्तु बादल जलकी वर्षा नहीं करते हैं, तब किस प्रकार अन्न उत्पन्न होगा? हे विप्र-गण! अगस्त्य मुनिका यह यज्ञ बारह वर्षमें पूरा होगा, इस बारह वर्षके बीच इन्द्र जलकी वर्षा न करेगा; इसलिये आप लोग विचार करके बुद्धिमान महर्षि परम तपस्वी अगस्त्यके विषयमें अनुग्रह करिये। जब महर्षिगण ऐसा कहने लगे, तब परम प्रतापवान् अगस्त्य मुनिने सिर झुकाकर मुनियोंको प्रसन्न करके कहा, कि यदि इन्द्र बारह वर्षतक जलको वर्षा न करे, तो मैं चिन्ता अर्थात् मानस-यज्ञ करूंगा, यही सनातन विधि है। हे ऋषिगण! यदि इन्द्र बारह वर्षतक जलकी वर्षा न करे, तो मैं स्पर्श यज्ञ करते हुए उपाहृत द्रव्योंको बिना व्यय किये ही देवताओंको सन्तुष्ट करूंगा, यही सनातन विधि है। यदि इन्द्र बारह वर्षके बीच जलको वर्षा न करे, तो मैं व्यायाम अर्थात् ध्यानसे द्रव्य आहरण करके व्रतातिरिक्त अन्य यज्ञ सम्पन्न करूंगा। मैंने जो कई वर्षसे यह बीज यज्ञ आरम्भ किया है, इसे बीजसे ही सम्पन्न करूंगा, इसमें कुछ भी विघ्न न होगा, मेरे इस यज्ञको व्यर्थ करनेकी सामर्थ किसीको भी नहीं है; यदि इन्द्र वर्षा न करे, तो वह देवताओंके बीच परिगणित न होगा। इसके अतिरिक्त यदि वह इच्छानुसार मेरा इस अभ्यर्थनाको पूरा न करे, तो मैं स्वयं इन्द्र होकर प्रजासमूहको जीवित रखूंगा और जिस समय उन लोगोंको जिस भोजनीय वस्तुओंका प्रयोजन होगा, उस समय उन्हें वही आहार प्राप्त होगा। मैं बार बार ऐसी ही विशेषता करूंगा और आज पृथ्वीमें जितनी वस्तु तथा स्वर्ण है, वे सब मेरे समीप उपस्थित होवें, तीनों लोकके बीच जो सब वस्तु हैं, वे सब स्वयं ही मेरे समीप आगमन करें। दिव्य अप्सरा, गन्धर्व्व, किन्नर और विश्वावसु प्रभृति सब प्राणि मेरे यज्ञमें आवें। उत्तर कुरुदेशमें जो सब वसु विद्यमान हैं, वे सब वसु मेरे यज्ञमें

स्वयं आके उपस्थित होवें और स्वर्ग स्वर्गवासी प्राणी तथा धर्म्म स्वयं आगमन करें।

जब अगस्त्य मुनिने ऐसा बचन कहा, उस समय उस प्रदीप्त अग्निसदृश चित्तसम्पन्न तेजस्वी मुनिके तपोबलसे वह सब उसही प्रकार हुआ। तिसके अनन्तर वे सब मुनिगण अगस्त्य मुनिके तपोबलको देखकर प्रसन्नचित्त तथा विस्मित होकर महान् अर्थयुक्त यह बचन कहने लगे।

ऋषिवृन्द बोले, हे मुनि! तुम्हारे बचनसे हम लोग परम प्रसन्न हुए, परन्तु तपस्याके फलको व्यर्थ करना हम लोगोंको अभिलषित नहीं है, हम लोग न्यायके अनुसार उस तपोबलसे ही यज्ञ करके तुष्ट होनेकी इच्छा करते हैं। हम लोग यज्ञ, दीक्षा, होम तथा दूसरे जिस कार्य्यको करनेकी चेष्टा करते हैं, न्यायसे उपार्ज्जित वस्तुओंको भोजन करके उस ही कार्य्यमें अभिरत होंगे। हम लोग न्यायके अनुसार ब्रह्मचर्य्यसे देवताओंकी प्रार्थना करते हैं, इसके अनन्तर न्यायके अनुसारही घरसे बाहिर होंगे और धर्म्मदृष्ट विधिके सहारे तपस्या करेंगे। हे प्रभु! आप जो यज्ञमें सदा अहिंसाका विषय कहा करते हैं, उसही निमित्त आपकी बुद्धि पूरी रीतिसे हिंसा विहीन हुई है। हे द्विजसत्तम! इस ही लिये हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं; यज्ञकी समाप्ति होनेपर हम लोग यहांसे गमन करेंगे। उन लोगोंके इसही प्रकार बार्त्तालाप करते रहनेपर देवराज पुरन्दर उनके तपोबलको देखके जलकी वर्षा करने लगे। हे जनमेजय! अगस्त्यमुनिके यज्ञकी समाप्ति पर्य्यन्त अमित पराक्रमी पर्ज्जन्य निःशेषरूपसे वर्षा करने लगा। हे राजर्षि! विदशनाथ इन्द्रने बृहस्पतिको आगे करके स्वयं अगस्त्य मुनिके निकट आके उन्हें प्रसन्न किया। अनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर अगस्त्य मुनिने परम प्रसन्न होकर उन महामुनियोंकी विधिपूर्व्वक पूजा करके उन्हें बिदा किया।

जनमेजय बोले, हे सत्तम! जिस काञ्चनशिरा नकुलरूपी प्राणीने मनुष्यकी भांति बचन कहा, वह कौन था? मैं उसे जाननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप यह विषय विस्तारपूर्व्वक कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, आपने पहले मुझसे यह विषय नहीं पूछा था, इसीलिये मैंने इसका बर्णन नहीं किया; परन्तु अब वह नकुल कौन था और किस प्रकार उसका मनुष्यकी भांति बचन हुआ, वह सब कहता हूं, सुनो। पहले जमदग्नि ऋषिके श्राद्धका सङ्कल्प करनेपर होमधेनु उनके निकट आई, उन्होंने स्वयं उसका दूध दूहा। उन्होंने उस दूधको पवित्र स्थानमें दृढ़ नवीन बर्त्तनमें रखा, तब धर्म्मने क्रोधरूपसे उस बर्त्तनमें प्रवेश किया। अनन्तर "ऋषिवर जमदग्निको विप्रिय करना योग्य है," ऐसा बात पूछनेके निमित्त उस दूधको धर्षित किया। हे महाराज! मुनिने उस समय धर्म्मस्वरूप क्रोधको जानके उसके ऊपर क्रोध नहीं किया। क्रोधरूपी धर्म्म भृगुश्रेष्ठ जमदग्निके निकट इस ही प्रकार पराजित होके ब्राह्मणका रूप धरके उनसे बोले, हे भृगुद्वह! मैं तुमसे पराजित हुआ, हे ऋषिश्रेष्ठ! तुमसे मेरे निर्ज्जित होनेसे भृगुवंश अत्यन्त रोषान्वित है, यह लोकप्रवाद मिथ्या हुआ। तुम महात्मा और क्षमावान हो, इसलिये आजसे मैं तुम्हारे वशवर्त्ती हुआ। हे साधु! मैं तुम्हारी तपस्यासे डरता हूं, इसलिये तुम मुझपर प्रसन्न होओ।

जमदग्नि बोले, हे क्रोध! आप साक्षात् दीख पड़े, आपने मेरा कुछ अपराध नहीं किया, इसलिये मुझे क्रोध नहीं है, आप शोकरहित होकर जाइये। मैंने जो पितरोंके उद्देश्यसे दूधके निमित्त सङ्कल्प किया था, आप उन महाभाग पितरोंके निकटही जान सकेंगे; इस समय जाइये।

क्रोधरूपी धर्म्म जमदग्निका ऐसा बचन सुनके त्रास पूर्व्वक अन्तर्हित हुए और पितरोंके

अभिशाप वशसे नकुलत्वको प्राप्त हुए। उन्होंने शापान्तके निमित्त उन लोगोंको प्रसन्न किया, तब उन्होंने कहा, कि आप धर्म्मकी निन्दा करके पापसे मुक्त होंगे। धर्म्म उन लोगोंका ऐसा बचन सुनके नेवलरूपसे यज्ञीयस्थान तथा धर्म्मारण्यमें विचरते हुए यज्ञमें उपस्थित हुआ और वहां युधिष्ठिरको "तुम्हारा यज्ञ उस सक्तुप्रस्थके सदृश नहीं है,"—इसही प्रकार निन्दा करते हुए उस शापसे मुक्त हुआ और युधिष्ठिरसे बोला, हे युधिष्ठिर! तुमही साक्षात् धर्म्म हो। उस समय उस महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञमें ऐसी घटना होनेपर हम लोगोंके सामनेही वह नेवला अन्तर्द्धान हुआ।

९२ अध्याय समाप्त।

——

इति श्रीभाषा महाभारते अश्वमेधपर्व्व समाप्त।

महाभारत।

आश्रमवासिक पर्व्व।

नारायण, नरोत्तम, नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

जनमेजय बोले, हे द्विजसत्तम! मेरे पितामह महात्मा पाण्डवोंने राज्य पाके महात्मा धृतराष्ट्रके विषयमें कैसा आचरण किया? ऐश्वर्य्य, मित्र और पुत्रोंके नष्ट होनेपर अवलम्ब रहित राजा धृतराष्ट्र तथा यशस्विनी गान्धारी किस प्रकार निवास करने लगीं? मेरे पूर्व्व-पितामह पाण्डवोंने कितने समयतक राज्यमें निवास किया? यह सब आप मेरे समीप यथार्थ वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुसत्तम! शत्रुओंके मारे जानेपर महात्मा पाण्डवगण राज्य पाके धृतराष्ट्रको आगे करके राज्य पालन करने लगे। विदुर, सञ्जय और वैश्या-पुत्र मेधावी युयुत्सु, ये सब कोई धृतराष्ट्रकी आराधना करने लगे। पाण्डव लोग उस राजा धृतराष्ट्रसे पूंछ पूंछकर पन्द्रह वर्षतक उनकी आज्ञानुसार सब कार्य्य करते रहे; धर्म्मराजके मतके अनुसार वीरश्रेष्ठ पाण्डवगण सर्व्वदा उनके निकट जाके पादाभिनन्दन करते हुए उनकी सेवा करने लगे, राजा धृतराष्ट्रने उनका मस्तक सूंघा और वे लोग सब कार्य्य करने लगे, कुन्तीभोजपुत्री कुन्ती, द्रौपदी सुभद्रा तथा अन्यान्य पाण्डवोंकी स्त्रियें समभावसे विधिपूर्व्वक श्वशुर और सासकी सेवा करने लगीं। हे महाराज! युधिष्ठिरने राजा धृतराष्ट्रको राज-योग्य शय्या, महामूल्यवान वस्त्र, आभूषण तथा अनेक भांतिके भक्ष्यभोज्य प्रदान किये और कुन्ती गान्धारीका गुरुकी भांति सम्मान करने लगी। विदुर, सञ्जय और युयुत्सु उस हतपुत्र बूढ़े धृत-राष्ट्रकी उपासना करने लगे; द्रोणके प्रिय साले महाधनुर्द्धारी ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्य्य धृतराष्ट्रके निकट रहे। पुराण ऋषि श्रीवेदव्यास मुनिने सदा देव, ऋषि, पितर और राक्षसोंकी कथा कहते हुए उनके निकट निवास किया, विदुर धृतरा-ष्ट्रकी आज्ञानुसार धर्म्म और व्यवहारयुक्त कार्य्योंको करने लगे। विदुरकी सुन्दर नीतिके अनुसार सुलघु अर्थके सहारे सामन्तगणके निकट धृतराष्ट्रका बहुतसा प्रिय कार्य्य सम्पादित होने लगा। जब वह किसी पुरुषको कैद करते वा कैद हुएको छोड़ते थे, तब उस विषयमें राजा युधिष्ठिर कदापि कोई बार्त्ता उल्लेख नहीं करते थे। विहार तथा यात्राके समयके निमित्त महा तेजस्वी कुरुराजयुधिष्ठिरने अम्बिकापुत्र धृतरा-ष्ट्रको समस्त काम्य विषय प्रदान किये; आरा-लिक अर्थात् शाकपाचक और पिप्पली, शुण्ठी तथा शर्करोपित मुद्गपाचकगण पहलेकी भांति राजा धृतराष्ट्रकी सेवा करने लगे। पाण्डव लोग पहलेकी भांति न्यायपूर्व्वक राजा धृतराष्ट्रको महामूल्यवान विविध वस्त्र, माला, मैरेय, मद्य, मत्स्य, मांस, पीनेकी वस्तु, मधु और विचित्र विविध भक्ष्य वस्तु प्रदान करने लगे। जो सब राजा अनेक देशोंसे वहांपर आये थे, वे सब

कोई उस कुरुराज धृतराष्ट्रको पुत्र वियोगसे कुछ दुःख उपस्थित न हो, ऐसा समझकर पहलेकी भांति उनकी सेवा करने लगे। इधर कुन्ती, द्रौपदी, यशस्विनी सुभद्रा नागराजपुत्री उलूपी, चित्राङ्गदा देवी, धृष्टकेतुकी बहिन और जरासन्धकी पुत्री, ये सब कोई तथा अन्यान्य स्त्रियें वा वधगण किङ्करी होकर सुबलपुत्री गान्धारीकी सेवा करने लगीं। युधिष्ठिरने अपने भाइयोंको धृतराष्ट्रकी सेवा करनेके लिये आज्ञा दी: परन्तु धृतराष्ट्रकी दुर्बुद्धिसे जो जुआ हुआ था, वह उस समयतक भीमके हृदयसे दूर न होनेसे केवल भीमसेनके अतिरिक्त सब भ्राता ही धर्म्मराजके अर्थयुक्त वचनको सुनकर विशेष यत्नपूर्वक उस कार्य्यमें प्रवृत्त हुए।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंके द्वारा इस प्रकार पूजित और ऋषियोंसे समुपासित होकर पहलेकी भांति विहार करने लगे, कुरुकुलतिलक राजा धृतराष्ट्रने ब्राह्मणोंको देनेयोग्य जिन सब उत्कृष्टहारोंको प्रदान करनेकी अभिलाष की, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने वह सब उन्हें प्रदान किये। अनन्तर सरलस्वभाववाले राजा युधिष्ठिरने परम प्रसन्न होकर मन्त्रियों और भाइयोंसे कहा, कि ये नरनाथ राजा धृतराष्ट्र हमारे तथा तुमलोगोंके माननीय हैं; इसलिये जो लोग इनके निकट रहेंगे, वेही हमारे सुहृद करके परिगणित होंगे और जो लोग इनके विपरीत आचरण करेंगे, वे शत्रुरूपसे समझे जावेंगे; पितृवासर, तथा पुत्र वा सुहृदोंके श्राद्धकालमें इनको जो कुछ करनेकी इच्छा होगी, ये वही करेंगे।

तिसके अनन्तर कुरुकुलतिलक महामना राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिरकी सम्मतिके अनुसार ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दान करने लगे। धर्म्मराज, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव इन सबने उनको प्रियकामनासे उस विषयका अनुमोदन किया और उन लोगोंने मनही मन ऐसा विचारा, कि जब ये बूढ़े राजा पुत्र तथा पौत्रवधसे पीड़ित और हम लोगोंके द्वारा शोकित होके भी नहीं मरे, तब ये कुरुपति धृतराष्ट्र पुत्रके रहनेपर जिस प्रकार सुख भोग करते थे, इस समयभी उन सब सुखोंको भोगकरें।

तिसके अनन्तर वे पाण्डुपुत्र वैसे स्वभावसे युक्त पांचो भाई एकत्रित होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे निवास करने लगे। धृतराष्ट्र भी शिष्य-वृत्तियुक्त नियममें स्थित विनीत उन पाण्डुपुत्रोंके विषयमें गुरुकी भांति आचरण करने लगे। इधर गान्धारीने पुत्रोंके विविध श्राद्ध कार्य्योंके उपलक्षमें ब्राह्मणोंको सब काम्यवस्तु दान करके अनृण्य लाभ किया। धार्म्मिकश्रेष्ठ धीमान् धर्म्मराज युधिष्ठिर भाइयोंसे घिरके इस ही प्रकार उस नरनाथ धृतराष्ट्रकी सेवा करते रहे, जब उस कुरुकुलोद्वह महातेजस्वी बृद्ध राजाने पाण्डुपुत्रोंका कुछ भी अप्रिय कार्य्य न देखा, तब उस समय वह सद्वृत्ति सम्पन्न महात्मा पाण्डवोंके ऊपर प्रसन्न हुए। सुबल-पुत्री गान्धारी भी पाण्डवोंकी वृत्ति देखकर पुत्रशोक परित्याग करके निजपुत्रकी भांति उन लोगोंके विषयमें सन्तुष्ट हुई। कुरुप्रवीर वीर्य्य-वान् युधिष्ठिर विचित्रपुत्र राजा धृतराष्ट्रके विषयमें अप्रिय आचरण न करके केवल प्रिय कार्य्य ही करने लगे; प्रजानाथ धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीने गुरु वा लघु जो कुछ कहा, पाण्डवभारवाही परवीरघाती महाराज युधि-ष्ठिरने उनकी पूजा करके उस वचनको प्रति-पालन किया। नरनाथ धृतराष्ट्र युधिष्ठिरके व्यवहारसे प्रसन्न होकर उस मन्दबुद्धि निजपुत्रको स्मरण करके अनुताप करने लगे। अन-न्तर राजा धृतराष्ट्र प्रतिदिन भोरके समय उठके सन्ध्या और जप आदि देवकार्य्योंको सम्पन्न करते हुए पवित्रचित्तसे पाण्डुपुत्रोंके

लिये युद्धमें अपराजयकी आकांक्षा करने लगे। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके अग्निमें आहुति देते हुए पाण्डुपुत्रोंके लिये अपरिमित आयुकी अभिलाष करते रहे। वह कुरुपति पाण्डुपुत्रोंके निकट जिस प्रकार प्रसन्न हुए उन्हें निज पुत्रोंके निकट वैसी प्रसन्नता प्राप्त न हुई।

उस समय वे यथोक्तवृत्त तथा यथोक्त विधानवित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके समादरणीय हुए। धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनके विषयमें जो अनिष्टाचरण किया था, उस समय वे लोग उस विषयको हृदयसे निकालके नरनाथ धृतराष्ट्रके अत्यन्त अनुवर्त्ती हुए; उस समय जिस किसी पुरुषने अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रका तनिक भी अप्रिय कार्य्य किया, उसे ही कुन्तीपुत्र बुद्धिमान् धर्म्मराजने अपना शत्रु समझा। युधिष्ठिरके भयसे कोई मनुष्य ही राजा धृतराष्ट्र वा दुर्य्योधनके विषयमें दोषारोप करनेमें समर्थ न हुआ। हे शत्रुनाशन! गान्धारी और विदुर अजातशत्रु नरनाथ युधिष्ठिरके धीरज और शौचाचारसे जिस प्रकार सन्तुष्ट हुए, भीमके विषयमें वैसे सन्तुष्ट नहीं हुए। धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्रके अनुवर्त्ती होकर सदा उनका दर्शन करते हुए शोकितचित्त हुए, शत्रुघाती कुरुवंशावतंस धनञ्जय धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके अनुवर्त्ती देखकर मन ही मन पराजित होकर उनके अनुवर्त्ती हुए।

२ अध्याय समाप्त।

—— ——

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जनपदवासी सब पुरुष राज्यके बीच राजा युधिष्ठिर और दुर्य्योधनके पिता नरनाथ धृतराष्ट्रकी प्रीतिके विषयमें कुछ भी अन्तर न मालूम कर सके।

हे महाराज! जब राजा धृतराष्ट्र दुर्म्मतिपुत्रको स्मरण करते थे, तब वह भीमको अपराधी नहीं समझते थे। इस ही लिये भीम भी सदा दुष्टकी भांति नरनाथ धृतराष्ट्रके विषयमें कोप नहीं करते थे, उसके अनन्तर वृकोदर धृतराष्ट्रके परोक्षमें अप्रिय कार्य्य करते हुए सदा कृतकर्म्म पुरुषोंके द्वारा उनकी आज्ञा पालन करते थे। भीमसेन धृतराष्ट्रके किसी कार्य्य तथा दुर्य्योधनके बुरे विचारको स्मरण करके सुहृदोंके बीच ताल ठोंकते थे।

एक बार भीमसेन धृतराष्ट्र और गान्धारीके समीप शत्रु दुर्य्योधन, कर्ण और दुःशासनकी प्रशंसा सुनके अत्यन्त कुपित होकर अभिमानपूर्व्वक इस प्रकार कठोर वाक्य कहने लगे, कि अनेक शस्त्र और अस्त्रधारी महायोद्धा अन्धे राजा धृतराष्ट्रके पुत्रगण मेरी परिघसदृश दोनों भुजाके सहारे इस लोकमें मारे गये; धृतराष्ट्रगण जिन भुजाओंके बीचमें पड़के नष्ट हुए, मेरी ये वेही परिघसदृश दुरासद दोनों भुजा विद्यमान हैं। धृतराष्ट्रके मूढ़ पुत्रगण युद्धमें जिन दोनों भुजाओंके बीच पड़के मृत्युको प्राप्त हुए, ये हाथीके सूण्ड समान पीन सुवृत्त मेरी भुजा विद्यमान हैं। जिन भुजाओंके द्वारा सुयोधन पुत्र और सुहृदोंके सहित नष्ट हुआ, मेरी ये चन्दनार्ह दोनों भुजा सुगन्ध चन्दनसे चर्च्चित होकर शोभित होती हैं।

नरनाथ धृतराष्ट्रने भीमके शल्य सदृश ऐसे तथा अन्य प्रकारके वचन सुनकर परम दुःख पाया; परन्तु वह बुद्धिमती समयकी गति जाननेवाली सर्व्व धर्म्मज्ञा गान्धारीने भीमसेनके उस वचनको अलीक समझा। तिसके अनन्तर पन्द्रह वर्ष बीतनेपर राजा धृतराष्ट्र भीमके वाक्यबाणसे पीड़ित होकर परम दुःखको प्राप्त हुए। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर, श्वेताश्व अर्ज्जुन धर्म्मज्ञ माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, कुन्ती और यशस्विनी द्रौपदी;—ये लोग उस विषयको न जाननेके हेतु उनके चित्तके अनुवर्त्ती हुए; परन्तु उन लोगोंने राजाके चित्तकी रक्षा करते हुए कुछ अप्रिय वचन न कहा। अनन्तर

धृतराष्ट्र आंखोमें आंसू भरके सुहृदोंको सम्मानित करते हुए उन लोगोंसे कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, जिस प्रकार कुरुकुलका नाश हुआ है, उसे तुम लोग विशेष रीतिसे जानते हो, मेरे ही अपराधसे कौरवोंके द्वारा वह सब सम्पन्न हुआ है। मैंने जो दुर्बुद्धि-विवश स्वजनोंके भयवर्द्धक दुर्योधनको कौरवोंके राज्यपर अभिषिक्त किया था, उस दुर्म्मति दुर्योधनको मन्त्रियोंके सहित वध करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र, मनीषी विदुर, भीष्म, द्रोण, कृप महात्मा भगवान व्यासदेव, सञ्जय और गान्धारीने जो सार्थक वचन कहे थे, उस हितकर वचनको मैंने जो पुत्रस्नेहसे युक्त होकर नहीं सुना और गुणवान् महात्मा पाण्डुपुत्रोंको यह पितृपैतामहसे प्राप्त प्रदीप्त श्रीप्रदान नहीं की उसहीसे मैं इस समय दुःखित हो रहा हूं। गदाग्रज जनार्द्दनने राजाओंके विनाशको अवलोकन करके ही इसे परम मङ्गल समझा था। निज दोषसे उत्पन्न हुए अपरिमित वचनरूपी शल्योंको मैं हृदयमें धारण करता हूं; पन्द्रह वर्ष व्यतीत हुआ आज यह विशेष दीखता है, कि मैं दुर्म्मति होनेसे उस पापकी शान्तिके लिये इस प्रकार निबद्ध हुआ हूं। मैं जो समयके चौथे, भाग कभी आठवें भागमें केवल तृष्णा निवारणके योग्य भोजन किया करता हूं, उसे गान्धारीही जानती है। मेरे भूखा रहनेसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी होंगे इसही भयसे मैं इस प्रकार भोजन करता हूं, कि जिसमें सारी प्रजा मुझे भूखा न समझे। यशस्विनी गान्धारी और मैं नियमच्छलसे अजिन पहरके ध्यान परायण होकर पृथ्वीमें दर्भशय्यापर शयन किया करता हूं; युद्धमें जो मेरे न भागनेवाले एक सौ पुत्र मारे गये हैं, क्षत्रधर्म्म समझके मैं उस विषयमें शोक नहीं करता।

कुरुनन्दन धृतराष्ट्र धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहके फिर उनसे कहने लगे। हे यादवीपुत्र! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरा यह वचन सुनो। हे पुत्र! मैं तुमसे उत्तम रीतिसे रक्षित होकर सुखसे निवास करते हुए बार बार श्राद्ध और महादान करता हूं। हे पुत्र! मैं बलके अनुसार यथार्थ रीतिसे पुण्य सञ्चय करता हूं, इसीसे यह हतपुत्रा गान्धारी धीरज अवलम्बन करके उर्द्ध दृष्टिसे मेरा दर्शन करती है। हे कुरुनन्दन! जिन्होंने द्रौपदीकी बुराई की थी, वे नृशंस कौरवगण युद्धमें क्षत्रधर्म्मके अनुसार मरके शस्त्रकृत लोकोंमें गये हैं, इसलिये उन लोगोंके विषयमें कुछ भी कर्त्तव्य नहीं देखता हूं। परन्तु इस समय भी मुझे तथा गान्धारीको निज हितके लिये पुण्यकर्म्म करना चाहिये, उस विषयमें तुम्हें अनुमति करनी उचित है। हे राजेन्द्र! तुम सब प्राणियोंके बीच श्रेष्ठ हो, सबके राजा, गुरु और सदा धर्म्म वत्सल हो; इसही लिये मैंने तुमसे ऐसा कहा है। हे राजन्! तुम्हारी अनुमति होनेसे मैं चीर वल्कल पहरके गान्धारीके सहित वनको अवलम्बन करूं। हे पुत्र! मैं वनवासी होके तुम्हें आशीर्वाद करते हुए निज कुलोचित कार्य्य करनेकी अभिलाष करता हूं। हे तात! मेरी अवस्था शेष हुई है, इस समय मैं पुत्रोंको ऐश्वर्य्य सौंपकर इस पत्नीके सहित वनमें जाकर वहां वायुभक्षी तथा निराहार होकर परम तपस्या करूंगा, तो तुम भी पृथ्वीपति होनेसे तपस्याके फलभागी होगे; क्यों कि राजा लोग सत् तथा असत् कार्य्यके फलभागी हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! आपके इस प्रकार दुःखित होनेसे यह राज्य मुझे प्रीतिकर न होगा। मैं अत्यन्त दुर्बुद्धि राज्यासक्त और प्रमादी हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है, क्यों कि भाइयोंके सहित आपको दुःखार्त्त, उपवाससे अत्यन्त कृश, जिताहारी और भूतलशायी न जान सका। तुम्हारे गूढ़बुद्धिके द्वारा मैं मूढ़बुद्धि वञ्चित हुआ हूं; क्यों कि आप पहले

मेरा विश्वास करके इस प्रकार दुःख भोग करते हैं। हे महीपाल! मेरे जीवित रहते जब आपको ऐसा दुःख मिला है, तब राज्य भोग, यज्ञ और सुखसे मुझे क्या प्रयोजन है? हे जन नाथ! आपके इस दुःखसूचक वचनके सहारे राज्य तथा आपको पीड़ित करता हूं। आप हमारे पिता माता और परमगुरु हैं इसलिये हम लोग आपसे रहित होके कहां निवास करेंगे? हे नृपसत्तम! आपके औरस पुत्र युयुत्सु अथवा आप जिसके लिये इच्छा करें, वह पुरुषही इस राज्यपर अभिषिक्त होवे; मैं बनमें जाऊंगा, आप इस राज्यका शासन करिये आप अब अयशके सहारे मुझे न जलाइये। मैं राजा नहीं हूं, आपही राजा धर्म्मज्ञ और हमारे गुरु हैं; इसलिये मैं आपके अधीन होकर किस प्रकार आपके विषयमें आज्ञा करनेमें उत्साहित हूंगा? हे अनघ! दुर्य्योधनके निमित्त हमारे अन्तःकरणमें तनिक भी क्रोध नहीं है, उस समय होतव्यताके अनुसारही हम लोगोंके सहित अन्यान्य राजा मोहित हुए थे। दुर्य्योधनादिकी भांति हम लोग भी आपके पुत्र हैं; हे राजन्! इसलिये यदि आप मुझे परित्याग करके जायेंगे, तो मैं भी आपका अनुगामी होकर सत्यस्वरूप परमात्माको प्राप्त करूंगा। आपसे रहित होनेपर यह धन तथा सागरमेखला सारी पृथ्वी मुझे प्रिय न होगी। हे राजेन्द्र! हम लोग आपकेही अधीन हैं, इस लिये मैं सिर झुकाकर आपको प्रसन्न करता हूं, आप अपना यह सब ग्रहण करके मनका दुःख दूर करिये। हे पृथ्वीपति! मुझे बोध होता है, कि आप भवितव्यके अनुवर्त्ती होकर रहके इस प्रकार मनका दुःख भोग करते हैं, इसलिये मैं भाग्यसे ही आपकी सेवा करके आपके मनका दुःख दूर करूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! बनमें जाना हमारा कुलोचित कर्म्म है, इसलिये मेरा मन तपस्यामें प्रवृत्त हुआ है। हे पुत्र! मैं बहुत समय तक तुम्हारे समीप रहके तुमसे उपासित हुआ हूं, अब मैं वृद्ध हुआ, इसलिये मुझे बनमें जानेके लिये तुम्हें आज्ञा करनी उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र, धर्म्मराजसे इतनी बात कहके कांपते हुए शरीरसे हाथ जोड़के फिर बोले। हे वसुधाधिप! मैं तुम लोगोंके सहित इस स्थानमें महात्मा सञ्जय और महारथ कृपसे विनय करनेकी इच्छा करता हूं। हे पुत्र! वृद्धावस्थाके धर्म्म वा वचन बोलनेसे मेरा मन मलिन तथा मुख परिशुष्क होता है। श्रीमान धर्म्मात्मा वृद्ध राजा धृतराष्ट्रने इतनी बात कहके सहसा चेतरहितकी भांति गान्धारीके शरीरका सहारा ग्रहण किया।

परवीरघाती कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर कुरुनन्दन धृतराष्ट्रको चेतरहितकी भांति बैठे हुए देखकर मनमें तीव्र व्यथाको प्राप्त हुए और बोले, हाय! जो सौ हजार हाथीका बल धारण करते हैं, उन्होंने इस समय स्त्रीका सहारा करके चेतरहितकी भांति शयन किया? जिन्होंने पहले भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमा चूर कर दिया था, उन्होंने इस समय अबला स्त्रीका आश्रय ग्रहण किया? जब कि इस पृथ्वीपति राजा धृतराष्ट्रने मेरे निमित्त अनुचितरूपसे शयन किया, तो मैं अधर्म्मज्ञ हूं, इसलिये मेरा बुद्धि, शास्त्रज्ञान तथा मुझे धिक्कार है। यदि यह राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी भोजन न करेंगी, तो मैं भी अपने गुरु राजा धृतराष्ट्रकी भांति उपवास करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! तिसके अनन्तर धार्म्मिकश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र जलकी भांति उत्तम शीतल कर कमलके सहारे धृतराष्ट्रका वक्षस्थल और मुखमण्डल धोने लगे। तब राजा धृतराष्ट्र महीपति युधिष्ठिरके रत्नौ·

अधि सम्पन्न पवित्र गन्धयुक्त हाथके स्पर्शसे चैतन्य होकर बोले, हे राजीवलोचन पाण्डुपुत्र! तुम अपने उत्तम शीतल कर कमलोंसे मुझे बार बार स्पर्श तथा आलीङ्गन करो, हे पुत्र! तुम्हारे स्पर्शसे मानो मैं फिर जीवित हुआ। हे नरनाथ! इस समय मैं तुम्हें मस्तकाघ्राण और दोनों भुजाओंसे स्पर्श करनेकी इच्छा करता हूं, ऐसा करनेसे मैं परम परितुष्ट हूंगा। हे कुरुशार्दूल! मैं दिनके आठवें भागमें आहार करता हूं, इसीसे आज हाथ पांव आदि अङ्गोंको चलानेमें असमर्थ होरहा हूं, विशेष करके यह सब वृत्तान्त तुम्हें विदित करनेमें मुझे अत्यन्त परिश्रम हुआ, इसीसे मन दुःखित तथा संज्ञा विलुप्त हुई है। हे कुरुकुलो-द्वह! फिर ऐसा समझता हूं, कि तुम्हारे इस अमृत रसयुक्त हाथके स्पर्शसे मैं जीवित हुआ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत! उस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पिताके जेठे राजा धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके सुहृदता पूर्वक धीरे धीरे उनके सारे शरीरको स्पर्श करने लगे, अनन्तर पृथ्वीपति धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरके कर-स्पर्शसे प्राणलाभ करके अपनी दोनों भुजाओंसे पाण्डुपुत्रको आलिङ्गन करते हुए उनका मस्तक सूंघा। विदुर प्रभृति सब कोई अत्यन्त दुःखित होकर रोदन करने लगे। परन्तु अत्यन्त दुःखके कारण वे लोग राजा युधिष्ठिरसे कुछ कह न सके। हे महाराज! धर्म्म जाननेवाली गान्धारी भी व्याकुलचित्तसे मनके बीच दुःखको धारण करती हुई यह वचन बोली, को आप, लोग ऐसा न करिये। कुन्तीके सहित अन्य स्त्रियें आंखोंसे आंसू बहाती हुई उनके चारों ओर बैठीं।

तिसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे फिर बोले, हे महाराज! तुम मुझे तप कर-नेके लिये आज्ञा करो। हे तात! इस विषयमें बार बार आलोचना करते हुए मेरा मन मलिन होता है, इसलिये इसके अनन्तर मुझे क्लेश देना तुम्हें उचित नहीं है। वह कौरवेन्द्र धृतराष्ट्र जब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कह रहे थे, उस समय योद्धाओंके बीच महान् आर्त्तनाद होने लगा। धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर जेठे पिता महाप्रभु राजा धृतराष्ट्रको विवर्ण, उप-वाससे परिश्रान्त, कृशलक और अस्थि मात्र अवशिष्ट देखकर आलिङ्गन करके शोकयुक्त होकर आंसू बहाते हुए फिर उनसे कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! आपके प्रिय-कार्य्यको करना जैसा मुझे अभिलषित है, पृथ्वी वा जीवन मुझे वैसा अभिलषित नहीं है। हे महाराज! यदि आप मेरे कहनेसे भोजन करें, तो मैं जानूं, कि मैं आपको प्रिय हूं, तथा मुझपर आपकी कृपा है।

तिसके अनन्तर महातेजस्वी धृतराष्ट्र युधि-ष्ठिरसे बोले, हे पुत्र! जब तुम भोजनके लिये मुझसे अनुरोध करते हो, तो इस समय मुझे इच्छानुसार भोजन करना होगा।

राजेन्द्र धृतराष्ट्रके ऐसा ही कहते रहनेपर सत्यवतीपुत्र ऋषिश्रेष्ठ वेदव्यास मुनि वहां आके कहने लगे।

३ अध्याय समाप्त।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे महाराज युधि-ष्ठिर! महातेजस्वी कुरुनन्दन धृतराष्ट्र जो कहते हैं, तुम उस विषयमें कुछ विचार न करके उस कार्य्यको पूरा करो। यह राजा वृद्ध और विशेष करके पुत्ररहित हैं, इसलिये मुझे बोध होता है, कि ये इस समय इस प्रकार कष्ट सहनेमें समर्थ न होंगे। हे महाराज! करुणावेदिनी बुद्धिमती महाभागा यह गान्धारी भी धैर्य्यके सहारे हृदयमें पुत्रशोक धारण करती है; इस लिये मैं भी तुम्हें यही कहता हूं, कि जिसमें राजा इस स्थानमें न मरें, इस ही निमित्त इन्हें वनमें जानेके लिये आज्ञा करके मेरा वचन प्रतिपालन करो। जब कि अन्तकालमें राजर्षि-

योंको वनका अवलम्बन करना ही कल्याण-कारी है, तब ये भी पुराने राजर्षियोंके गन्तव्य पथमें गमन करें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय महा-तेजस्वी धर्मराज राजा युधिष्ठिर अद्भुतकर्मा महामुनि व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, हे भगवन्! आप हमारे महामान्य गुरु और इस राज्य तथा कुलके परम अवलम्ब हैं। हे भगवन्! राजा और आप मेरे पिता तथा गुरु हैं; जब कि पुत्र धर्मपूर्व्वक पिताका आज्ञाकारी हुआ करता है, तब आप लोग मुझे जो कुछ आज्ञा करेंगे, मैं उस ही समय उसे करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाकवि व्यासदेवसे जब युधिष्ठिरने ऐसा वचन कहा, तब वह फिर उनसे कहने लगे।

हे महाबाहो भारत! तुमने जो कहा, वह सत्य है; परन्तु इस राजा धृतराष्ट्रने वृद्धत्वको प्राप्त होके परम ज्ञानपद अवलम्बन किया है। इस समय ये तुम्हारे द्वारा तथा मुझसे अनु-ज्ञात होकर निज अभिप्राय साधन करें; तुम उसमें विघ्नकारी मत बनो। हे युधिष्ठिर! तुम राजर्षियोंका युद्धमें वा विधिपूर्व्वक वनमें प्राण त्याग करना ही परम धर्म जानो। हे राजेन्द्र! तुम्हारे पिता पृथ्वीपति पाण्डु शिष्यवृत्ति अवल-म्बन करके गुरुकी भांति इस राजाकी उपासना करते थे, इससे इन्होंने पहिले पर्व्वत परिमित रत्नोंसे सुशोभित बहुतसी दक्षिणायुक्त महायज्ञ करते हुए समस्त पृथ्वी भोग तथा प्रजापालन किया था। इसके अतिरिक्त तुम्हारे तेरह वर्ष प्रवासमें रहनेसे राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंके निकट विपुल राज्य भोग तथा विविध वसुदान किया है। हे निष्पाप पुरुषश्रेष्ठ! तुम भी सेव-ककी भांति इस राजा धृतराष्ट्र तथा यशस्विनी गान्धारीकी गुरुसदृश सेवा करते हो। हे युधि-ष्ठिर! परन्तु इस समय इनके तपोनुष्ठानका समय हुआ है, इसलिये तुम इन्हें वनमें जानेके लिये आज्ञा करो, तुम्हारे ऊपर इनका अणु-मात्र भी क्रोध नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब व्यासदेवने इतनी बात कहके इस प्रकार आज्ञा की और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने उसे स्वीकार किया, तब वह वनको चले गये। भगवान् वेदव्यास मुनिके वनमें चले जानेपर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर सिर झुकाके वृद्ध पिता धृतराष्ट्रसे बोले, हे तात! आपको जो अभिलषित है, भगवान् व्यासदेवने वही कहा है। महेष्वासकृप, विदुर, युयुत्सु और सञ्जय, ये लोग मुझसे जो कहेंगे, मैं उस ही समय उसे करूंगा, क्योंकि ये लोग सब ही मेरे माननीय तथा इस कुलके हितैषी हैं। हे नरनाथ! परन्तु मैं सिर झुकाके आपके समीप यह प्रार्थना करता हूं, कि आप पहिले भोजन करिये, पीछे आश्रममें गमन करिये।

४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर प्रतापवान् धृतराष्ट्र राजा युधिष्ठिरसे अनुज्ञात होकर गान्धारीके सहित निज गृहमें गये। उस समय मन्दप्राण और मन्दगति बुद्धिमान महीपति धृतराष्ट्र जीर्ण गजपतिकी भांति अत्यन्त कष्टसे पृथ्वीपर पांव रखने लगे। विद्वान् विदुर, सूत सञ्जय और परम धनुर्द्धारी शारद्वत कृपाचार्य्य उनके पीछे पीछे चलने लगे। हे महाराज! उन्होंने निज भवनमें प्रवेश कर प्रातःकर्म्म प्रभृति सब कार्य्य करके तथा द्विजा-तियोंको तृप्त करते हुए भोजन किया। हे भारत! धर्म्म जाननेवाली मनस्विनी गान्धारीने कुन्तीके सहित वधूगणसे उपचारके द्वारा पूजित होकर भोजन किया। पाण्डुपुत्र और विदुर प्रभृति भोजन करके कृताहार कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रकी उपासना करने लगे।

हे महाराज! तिसके अनन्तर अम्बिकापुत्र निकटमें बैठे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी पीठपर हाथ फेरके उनसे बोले, हे राजेन्द्र! तुम इस धर्म पुरस्कृत अष्टाङ्ग राज्यमें किसी प्रकार असावधान न होना। हे तात कुन्तीपुत्र! तुम विद्वान् हो, इसलिये जिस प्रकार धर्मपूर्वक राज्यकी रक्षा कर सकोगे, वह विषय मेरे समीप सुनो। हे युधिष्ठिर! तुम सदा विद्यावृद्ध पुरुषोंकी उपासना करना, वे लोग जो कहें, उसे सुनना और कुछ विचार न करके ही उनकी आज्ञा पालन करना। हे महाराज! भोरके समय उठके विधिपूर्व्वक उनकी पूजा करते हुए कार्य्यके समय उन सबसे ही निज कर्त्तव्य पूछना। हे पुत्र! तुम निज हितके अभिलाषी होकर उनका सम्मान करनेसे वे लोग सदा तुमसे हितवचन कहेंगे। हे महाराज! तुम इन्द्रियोंको तुरङ्गकी भांति प्रतिपालन करना वे द्रविणकी भांति रक्षित होनेसे तुम्हारी हितकारी होंगी। कपटरहित पवित्रचित्तवाले, दान्त, विशुद्धवंशमें उत्पन्न हुए सत्कर्मशाली पितृ पैतामह क्रमके अनुसार पुरुषोंको मन्त्री पदपर नियुक्त करना। स्वराष्ट्र प्रतिवासी परीक्षायुक्त दूसरोंसे अविदित अनेक प्रकारके दूतोंके द्वारा सदा प्रचारण करना; निज पुरकी उत्तम रीतिसे रक्षा करना, दीवार और तोरण अत्यन्त दृढ़ करना और किलेके ऊपर सञ्चार स्थानके चारों ओर छः समाज निर्म्माण करना। उनके सब द्वार यथेष्ट उन्नत तथा सब ओर उत्तम रीतिसे विभक्त होवें और वे यत्नवान पुरुषोंके द्वारा रक्षित रहें। हे भारत! जिनका कुल और शील विदित है, वैसे पुरुषोंके द्वारा तुम्हारा अर्थ भली भांति रक्षित होवे और तुम स्वयं सदा भोजनादिके समय रक्षित रहना, हे युधिष्ठिर! शीलवान् कुलीन विद्वान् आत्मीय वृद्धगण तुम्हारी स्त्रियोंकी रक्षा करें; स्त्रियें गुप्त रीतिसे अहार विहार करें, मान्य लोगोंके आसनपर न बैठें और उनकी शय्यापर शयन न करें। हे महाराज! तुम विद्याविशारद कुलीन विनीत धर्म्मार्थमें निपुण और सरल द्विजगणकी मन्त्री करके उनहीके सङ्ग विचार करना, कदाचित दूसरे बहुतसे लोगोंके सङ्ग सलाह न करनी, तृणारहित जङ्गल तथा गृहमें विचार करना, रात्रिके समय कदापि सलाह न करना; वानर, पक्षी, अनुसारी मनुष्य, जड़ और पङ्गुओंको विचार गृहमें न रहने देना। राजाओंके मन्त्रभेदसे जो सब दोष उत्पन्न होते हैं, मुझे बोध होता है, उनका किसी प्रकारसे हो समाधान नहीं किया जा सकता। हे अरिन्दमन! इसलिये तुम मन्त्रिमण्डलीके बीच बैठकर मन्त्रणाभेदके दोष और मन्त्रगुप्तिके गुणोंको बार बार वर्णन करना। हे महाराज! तुम सदा आप्तजनोंके बीच अधिष्ठित होकर व्यवहारके सहारे पौर और जनपदवासियोंका शौचा जिस प्रकार मालूम हो सके, वैसा करना। हे भारत! तुम सन्तुष्टचित्तसे हितकारी दूतोंसे घिरके दण्डनीय धन तथा अपराधके परिमाणको विचारकर दण्डार्ह पुरुषोंको दण्ड प्रदान करना। हे युधिष्ठिर! तुम घूसखानेवाले, परस्त्रीगामी, उग्रदण्ड प्रधान, मिथ्यावादी, आक्रोशकारी, लोभी, हर्त्ता, साहसप्रिय, सभाविहार वेत्ता और वर्णदूषक पुरुषोंको देश, काल, तथा न्यायके अनुसार हिरण्यदण्ड अथवा प्राणवध करना। तुम प्रातःकालमें ही अपने व्ययकर्म्मकारी पुरुषोंके कार्य्योंको देखकर उसके अनन्तर सुसज्जित होकर भोजनादि समाधान करना। तिसके अनन्तर सर्व्वदा योद्धाओंको हर्षित करते हुए उनके विषयमें दृष्टि रखना। अनन्तर प्रदोष समयमें दूत तथा चरोंके निकट सम्वाद सुनके अपर रात्रिमें कार्य्य और अर्थका निर्णय करना; प्रतिदिन मध्यरात्रि तथा मध्यान्ह समयमें विहार करना। हे भूरिदक्षिण भरतर्षभ!

जिन कार्य्योंका जिस प्रकार उपयुक्त समय निर्द्दिष्ट है, तुम उसही समयमें उन कार्य्योंको पूरा करते हुए नियमित समयमें अलंकृत होकर विश्राम करना; क्योंकि कार्य्यका पर्य्याय सदा चक्रकी भांति प्रवर्त्तित होते हुए देखा जाता है। हे तात! तुम न्यायके अनुसार अनेक प्रकारके कोष सञ्चय करनेका यत्न करना और विपरीत कार्य्योंको परित्याग करना। हे नरनाथ! राजाओंके अन्तरैषी शत्रुओंको दूतोंके द्वारा मालूम करके आप्त पुरुषोंके सहारे दूर-होसे उनका बध करना, हे कुरुद्वह! सेवकोंके कार्य्यको देखकर उन्हें यथा योग्य पारितोषिक देना और अधिष्ठित, युक्त तथा अयुक्त पुरुषोंके सङ्ग कार्य्य करना। हे तात! तुम दृढ़व्रती शूर क्लेश सहनेवाले हितकारी भक्त पुरुषको सेनाका नायक करना। हे पाण्डुनन्दन! जो लोग सदा तुम्हारे शिल्पादि कार्य्योंको करते हैं, वे सब जनपदवासी गऊ तथा गर्द्दभकी भांति तुम्हारे कार्य्यको करें। युधिष्ठिर तुम सदा अपने और दूसरोंके छिद्रोंको अन्वेषण करना; निज कार्य्यमें विक्रान्त अनुगामी हितकारी देशज पुरुषोंपर अनुग्रह करना। हे जननाथ! जो लोग गुणार्थी और विद्वान् हों, उनके गुणको ग्रहण करना योग्य है; क्योंकि वे लोग सदा अचलकी भांति अविचलित रूपसे निवास किया करते हैं।

५ अध्याय समाप्त।

——

धृतराष्ट्र बोले, हे भारत! तुम आत्मीय, परकीय, उदासीन और मध्यस्थोंके शत्रु, मित्रादि रूपी मण्डलको विशेष रीतिसे मालूम करना, हे अरिकर्षण! चार प्रकारके शत्रुओं और आततायियोंके बीच कौन मित्र तथा कौन शत्रु-मित्र है, उसे तुम्हें विशेष रीतिसे जानना उचित है। हे कुरुश्रेष्ठ! शत्रुगण मन्त्रियों, जनपदों, विविध किलों तथा समस्त बलमें इच्छानुसार भेद किया करते हैं; इसलिये जिस प्रकार उनमें फूट न हो उसही भांति सावधान होकर निवास करना। हे कुन्तीपुत्र! राजाओंके मन्त्रिप्रधान विषय सम्बन्धीय चार प्रकारके शत्रु, अग्निद प्रभृति छः आततायी मित्र और अमित्र मित्र ये बारह प्रकारके नृपति कृष्यादि आठ प्रकारके सन्धानकार्य्य निवातादि बीस, नास्तिक्यादि चौदह दोष और मन्त्रादि अट्ठारह तीर्थ येही षष्टिगण हैं; नीतिज्ञ आचार्य्य-गण इन्हें ही मण्डल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! उसमें जो सन्धि निग्रह प्रभृति षाड़्गुण्य वशमें करना होता है, उसे सुनो। हे कुरुसत्तम! राजाओंकी वृद्धि, क्षय और स्थानको विशेष रीतिसे जानना उचित है। हे महाबाहो! षष्टिगण और द्वादश नृपति, इनसे ही षाड़्गुण्यज गुण बहुत्तर प्रकारके हुआ करते हैं। हे कुन्तीनन्दन! जब अपना पक्ष बलिष्ठ और शत्रुका पक्ष दुर्ब्बल हो, तब राजा शत्रुओंको पराजित करके जय लाभ करे और जब परपक्ष सबल और अपना पक्ष दुर्ब्बल हो, तब विद्वान् राजा क्षीण होकर शत्रुओंके सङ्ग सन्धि करते हुए बहुतसा धन सञ्चय करे। हे भारत! जब राजा शीघ्र युद्धमें जानेके लिये समर्थ होवे, तब वह विचारपूर्व्वक स्थानके सहित सब वस्तुओंको विधिके अनुसार ठीक करे। हे भारत! मित्र और बल क्षीण होनेपर सन्धिविशारद राजा जिससे शत्रुको अल्प फल प्राप्त हो वैसी भूमि सोना और चांदी आदि इतर धन तथा बहुतसा हिरण्य दान करे और स्वयं विपरीत वस्तु ग्रहण करे। हे भरतर्षभ! सन्धि करनेके समय जो सन्धि करे, उसके पुत्रको विश्वासके लिये निकट रखे। जब कोई आपदकाल उपस्थित हो, तब विपरीत पुरुषोंको निकटमें रखना कल्याणकारी नहीं है; इसलिये तुम उपाय और मन्त्रको जानके उन्हें परित्याग करनेके लिये यत्न करना। हे राजेन्द्र! निज राज्यर-

चक महाबली नरपति राजा तथा प्रजा समूहकी पूजा करना और क्रमसे तथा एक ही समयमें शत्रुओंके सब व्यवसायको रुद्ध करके यत्नपूर्व्वक उन्हें पीड़न स्तम्भन तथा उनका कोष भङ्ग करना। हे कौन्तेय! ऊंचे पदका, अभिलाषी राजा समीप आये हुए सामन्त और पृथिवी विजयकी इच्छा करनेवाले राजाकी हिंसा न करना बल्कि तुम गणभेदके निमित्त मन्त्रियोंके सहित योग लाभकी आकांक्षा करना। बलवान राजा साधुओंको संग्रह और पापियोंको निग्रह करे, परन्तु निबल पुरुषोंको कदापि उच्छिन्न न करे। हे राजशार्दूल! यदि बलवान पुरुष तुम्हें निबल समझकर आक्रमण करे, तो तुम वैतसीवृत्ति अवलम्बन करके निवास करना; क्रमसे साम आदि उपायके सहारे उसे निवृत्त करनेकी चेष्टा करना उससे असमर्थ होनेसे मन्त्रियोंके सहित युद्धके निमित्त बाहिर होना। जो लोग उसके प्रियकारी हों, उनके कोष तथा पौरको दण्डके द्वारा दण्डित करना, परन्तु सभी असम्भव होनेपर मुख्य उपाय शरीरके सहारे युद्धके निमित्त बाहिर होना, इस क्रमके अनुसारही केवल शूर पुरुषोंका शरीर मुक्त हुआ करता है।

६ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे राजसत्तम युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें प्रबल और निबल शत्रुके निमित्त इस दियोनि सम्भूत दो प्रकारकी उपाययुक्त बहुकाल्य सन्धि तथा विग्रहकी पर्य्यालोचना करना। हे कौरव्य! शत्रुके तुष्ट, पुष्ट, बलयुक्त तथा बुद्धिमान होनेपर अपने बलाबलको जानके स्थिरभावसे जयका उपाय सोचते हुए जबतक जय प्राप्त न हो, तबतक उसकी उपासना करना। हे राजेन्द्र! उपासनाके समय शत्रुका बल अतुष्ट और अपुष्ट होनेपर युद्धयात्राके लिये उद्योग करना और बलपूर्व्वक निष्पीड़नका समय उपस्थित होनेपर उसके बाद युद्धके निमित्त यात्रा करना। तिसके अनन्तर युद्धमें शत्रुओंके व्यसन, भेदन, कर्षण, शोषण और बल क्षय करना। शास्त्रविशारद राजा प्रमाणके पहिले अपनी और शत्रुओंकी तीन प्रकारकी शक्ति अर्थात् उत्साह शक्ति, प्रभुशक्ति और मन्त्रशक्तिका विचार करे। हे भारत! राजा उत्साह, शक्ति, प्रभुशक्ति और मन्त्र शक्तिसे युक्त होकर युद्धके निमित्त यात्रा करे और विपरीत कार्य्योंको परित्याग करे। हे प्रभु! महीपति धनबल, मित्रबल, अटवी बल, प्राणिबल और श्रेणीबल ग्रहण करे। हे राजन्! मेरा यही मत है, कि सब लोकोंके बीच मित्रबल और धनबल मुख्य है और श्रेणीबल तथा भृत्य ये सब तुल्य हैं। हे नरनाथ! दूतबल परस्पर तुल्य है, समय उपस्थित होनेपर राजा उसे बहुत समयमें जान सकता है।

हे नराधिप! आपद अनेक प्रकारकी मालूम करना; हे कौरव्य! राजाओंको जो सब आपद उपस्थित होती हैं, उसे पृथक् करके कहता हूं, सुनो। हे राजन् पाण्डुपुत्र! सब आपदोंके बीच विकल्प अर्थात् इति प्रभृति अनेक प्रकारकी आपद उपस्थित होनेपर राजा सामादि उपायके सहारे उसही इति प्रभृतिको प्रकाश्य रूपसे आपद कहके गिने। हे परन्तप! राजा देश, काल आत्मगुणसहश बल तथा सहलसम्पन्न होकर युद्ध करनेके लिये गमन करे। हे पाण्डव! वृद्धि और उदय निरत बलवान राजा हृष्टपुष्ट बलसे युक्त होकर अकालमें भी युद्ध करनेके निमित्त गमन करे। तृण जिसमें पत्थर, घोड़े और रथ प्रवाह, जिसका करार तथा तट ध्वजारूपी वृक्षोंसे संवृत्त और बहुतसे पैदल तथा हाथियोंके द्वारा जो कर्द्दममय हो, राजा युक्तिके सहित शत्रुनाशके समयमें ऐसी नदीसे प्रकट व्यूह प्रयोग करे। हे विभु! शुक्राचार्य्य जो शास्त्र जानते हैं, उसमें ही यह सब

विहित है। राजा निज बलकी ओर दृष्टि रखके परबलकी प्रचारणा करते हुए निज भूमि अथवा पर भूमिमें युद्ध करे; महीपति निज-बलको प्रसन्न करके बलवान् परबलको निरा-कृत करे और निज विषयको जानके सामादि उपायके सहारे पर विषयमें गमन करनेकी इच्छा करे।

हे महाराज! इस लोकमें सब प्रकारसे यत्नपूर्व्वक शरीरकी रक्षा करना, शरीर रक्षित होनेसे ही इस लोक और परलोकमें परम मङ्गल लाभ हुआ करता है। हे राजन्! राजा लोग इन सब विषयोंका पूरी रीतिसे आचरण करते हुए धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करनेसे पर-लोकमें स्वर्ग प्राप्त करते हैं। हे तात कुरुश्रेष्ठ! तुम भी दोनों लोक प्राप्त करनेके लिये सदा ऐसा ही आचरण करते हुए प्रजाके हितमें रत रहो। हे नृपसत्तम! यद्यपि भीष्म, कृष्ण और विदुरने तुमसे सब कहे हैं, तथापि तुम्हारे ऊपर मेरी अत्यन्त प्रीति रहनेसे अवश्य ही मुझे कहना पड़ा। हे भूरिदक्षिण! तुम न्यायके अनुसार यह सब आचरण करनेसे प्रजासमूहके प्रियपात्र होकर सुरपुरमें सुख-भोगनेमें समर्थ होगे। हे जननाथ! जो मही-पति सहस्र अश्वमेध करता है और जो धर्म्मपू-र्व्वक प्रजापालन करता है, उन दोनोंको तुल्य फल प्राप्त होता है।

७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पृथ्वीपति! आपने जो कहा, मैं उन सब कार्य्योंको करूंगा, अनन्तर जो जो करना होगा, उसके लिये आप मुझे आज्ञा करिये। हे पार्थिवश्रेष्ठ! भीष्मके सुर-लोकमें जाने तथा मधुसूदन कृष्ण, विदुर और सञ्जयके न रहनेपर अब दूसरा कौन मुझसे ऐसा कहेगा। हे महीपाल! आज आपने मेरे हितैषी होकर जो कुछ मुझे आज्ञा की, मैं वही करूंगा; इसके अनन्तर आप वनमें जानेसे निवृत्त होइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतर्षभ! उस राजर्षि धृतराष्ट्रने बुद्धिमान धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञा कर-नेकी इच्छा की।

धृतराष्ट्र बोले, मुझे अत्यन्त श्रम हुआ है, इसलिये तुम कुछ समय तक शान्त रहो, इतनी बात कहके उन्होंने गान्धारीके गृहमें प्रवेश किया। समयको जाननेवाली धर्म्मचारिणी गान्धारी उस समय आसनपर बैठे हुए प्रजाप-तिसदृश पति धृतराष्ट्रसे बोली, हे स्वामी! आप तो महर्षि व्यासदेवसे अनुज्ञात तथा युधि-ष्ठिरसे आदिष्ट हुए हैं, इसलिये कब वनमें चलियेगा?

धृतराष्ट्र बोले, मैं जब पिताकी आज्ञा पा चुका, तब शीघ्र ही वनमें गमन करूंगा, परन्तु मैं निज गृहमें सबको प्रकृतिस्थ कराके उन निन्दित द्यूतक्रीड़ा करनेवाले पुत्रोंके लिये प्रेतभावके अनुगत वस्तु दान करनेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय मही-पति धृतराष्ट्रने धर्म्मराजसे इतनी कथा कहके उन्हें प्रजासमूहको बुलानेके लिये भेजा, उन्होंने उनके कहनेके अनुसार नगरकी सारी प्रजाको बुलाया। अनन्तर ब्राह्मण, कुरुजाङ्गलवासी क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण प्रहृष्ट चित्तसे वहां पर आये।

तिसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने अन्तःपुरसे बाहिर होकर समस्त प्रजा तथा आये हुए पुरुषोंको देखा। हे पृथ्वीनाथ! बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र उन समागत पुरवासी, जनपदवासी, सुहृद, ब्राह्मण और अनेक देशोंसे आये हुए राजाओंको वहांपर इकट्ठे हुए देखकर बोले। आप लोग बहुत समयसे कुरुकुलके सहित एकत्र बास करते हुए परस्परमें परस्परके

हितैषी हुए हैं, परन्तु उपस्थित समयमें मैं आप लोगोंसे जो कहता हूं, आप लोग बिचार न करके मेरे बचनको रक्षा करिये। व्यासदेव और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरको आज्ञाके अनुसार मैं बनमें जानेकी अभिलाष करता हूं, आप लोग भी इस विषयमें बिचार न करके मुझे आज्ञा करें और मेरी यह प्रार्थना है, कि आप लोगोंके सङ्ग मेरी यह प्रीति जिसमें सदा अविचलितभावसे निवास करे, मुझे ऐसा मालूम है, कि वह प्रीति अन्य देशीय राजाओंके सहित स्थिर रहनेकी नहीं है। हे अनघगण! मैं गान्धारीके सहित पुत्रविरह और अवस्था क्रमके अनुसार अत्यन्त श्रान्त तथा उपवाससे कृश हुआ हूं। युधिष्ठिरको राज्य मिलनेसे मैं उत्तम रीतिसे सुखभोग करता हूं। हे सत्तमगण! दुर्य्योधनके ऐश्वर्य्यसे युधिष्ठिरके ऐश्वर्य्यको मैं श्रेष्ठ बोध करता हूं। हे महाभागगण! इस समय मुझे हतपुत्र वृद्ध अन्ध धृतराष्ट्रको बनमें जानेके अतिरिक्त और गति कहां है? इसलिये तुम लोग मुझे बनमें जानेके लिये आज्ञा करो।

हे भरतर्षभ! वे सब कुरुजाङ्गलवासी प्रजा धृतराष्ट्रके बचनको सुनके गद्गद स्वरसे बिलाप करती हुई रोदन करने लगीं। महातेजस्वी धृतराष्ट्र उन बिलाप करनेवाले शोकपरायण कुरुजाङ्गलवासियोंसे फिर ऐसा बचन कहने लगे।

८ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे तातगण! जिस प्रकार शान्तनुने इस बसुन्धराको पालन किया था, उस ही भांति बिचित्रवीर्य्यने भीष्मके द्वारा रक्षित होकर तुम लोगोंको पालन किया था, यह तुम लोगोंको बिदित है, इसलिये उसमें सन्देह नहीं है। तुम लोगोंको यह भी बिदित है, कि मेरे भाई पाण्डु भी तुम लोगोंको पूरी रीतिसे पालन करके प्रियपात्र हुए थे। हे अनघगण! मैंने भी सम्यक् रीतिसे तुम लोगोंकी जो सेवा की थी, वह यदि असम्यक् हुई हो, तो उसे तुम लोग अतन्द्रित होकर क्षमा करना। यद्यपि उस मन्दमति दुर्बुद्धि दुर्य्योधनने इस अकण्टक राज्यको पाके भोग किया था, तथापि उसने उस समय तुम लोगोंका कुछ अपराध नहीं किया। केवल उस दुर्बुद्धिके अभिमान तथा निजकृत दुर्णयसे ही राजाओंके बीच यह महत् बिमर्द हुआ; मैं हाथ जोड़के तुम लोगोंके निकट यह प्रार्थना करता हूं, कि उसने भला किया हो वा बुरा किया हो, उसे तुम लोगोंको मनमें न लाना चाहिये। तुम लोग मुझ वृद्ध हतपुत्र दुःखित नरपतिको पूर्व्व-राजाओंका पुत्र कहके जानना।

इसके अतिरिक्त यह हतपुत्रा कृपित कृपणा, पुत्रशोकार्त्ता तपस्विनी गान्धारी मेरे सहित तुम लोगोंके निकट यह प्रार्थना करती है, कि हम लोग तुम्हारे शरणागत हुए, इस समय तुम लोग हमें हतपुत्र और वृद्ध जानके बनमें जानेके लिये आज्ञा करो, तुम लोगोंका मङ्गल हो। इस कुन्तीपुत्र कुरुराज युधिष्ठिरको तुम लोग सम तथा बिषम पथसे रक्षा करना और देखना ये कदापि बिषम पथमें गमन न करें; इनके चारों भाई अत्यन्त बलशाली लोकपाल सदृश और सर्व्वधर्म्मार्थदर्शी हैं; वेही इनके मन्त्री हैं। सब प्राणियों तथा समस्त जगतके प्रभु छः ऐश्वर्य्योंसे युक्त ब्रह्मासदृश ये महातेजस्वी युधिष्ठिर तुम लोगोंको पालन करेंगे। मेरा अवश्य वक्तव्य होनेसे मैंने तुम लोगोंसे ऐसा कहा है। तुम्हारे इस न्याय्यस्वरूप युधिष्ठिरको तुम लोगोंको प्रदान किया और तुम लोग भी मेरे द्वारा वीरश्रेष्ठ युधिष्ठिरके निकट थातीरूपसे अर्पित हुए। यदि मेरे पुत्रों अथवा मेरे अन्य किसी पुरुषके द्वारा तुम लोगोंको कुछ दुःख उपस्थित हो, तो तुम इनके निकट आवेदन करना। पहले तुम लोगोंने मेरे ऊपर

किसी प्रकार क्रोध नहीं किया, तथा तुम लोगोंके अत्यन्त गुरुभक्त होनेसे मैं हाथ जोड़के तुम लोगोंको नमस्कार करता हूं। हे अनघगण! मैं गान्धारीके सहित उन अस्थिर बुद्धि लोभी और कामाचारियोंके निमित्त तुम लोगोंसे क्षमा मांगता हूं। वे सब पुरवासी और जनपदवासी लोग धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके आंसू भरे नेत्रसे परस्परको देखते हुए कुछ भी कहनेमें समर्थ न हुए।

९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कौरवनाथ! वे सब पुरवासी और जनपदवासी लोग बूढ़े राजा धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके संज्ञाविहीन हुए। महीपति राजा धृतराष्ट्र उन लोगोंको मौनावलम्बी तथा बिसूरते देखकर फिर कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, हे सत्तमगण! पिता कृष्णद्वैपायन और धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिरने धर्मपत्नी गान्धारीके सहित मुझ बृद्ध हतपुत्र बहुविध विलापकारी दीन धृतराष्ट्रको बनबासके निमित्त आज्ञा की है। हे अनघगण! हम दोनों सिर झुकाके बार बार तुम लोगोंके निकट प्रार्थना करते हैं, इसलिये गान्धारीके सहित मुझे बनमें जानेके लिये तुम लोगोंको आज्ञा करनी उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! वे कुरुजाङ्गलवासी प्रजासमूह धृतराष्ट्रके ऐसे करुणायुक्त बचनको सुनके सब कोई इकट्ठे होकर रोदन करने लगे; उन लोगोंने पितामाताको भांति शोकसे सन्तापित होकर दुपटेके सहित दोनों हाथोंसे मुंह मूंदके मुहूर्त्तभर रोदन किया; अनन्तर उन्होंने शून्यप्राय हृदयमें धृतराष्ट्रके प्रवासजनित दुःखको धारण करते हुए चेतरहितकी भांति निवास किया। कुछ समयके अनन्तर उन लोगोंने धृतराष्ट्रके बियोगजनित दुःखको त्यागके धीरे धीरे आपसमें अपना अपना मत प्रकाश किया। हे राजन्! अनन्तर उन सब लोगोंने एकत्रित होकर सम्मान करते हुए एक ब्राह्मणके समीप अपना अपना वचन सुनाके वह सब धृतराष्ट्रसे कहनेके लिये उन्हें अनुरोध किया। हे महाराज! अनन्तर सर्व्वसम्मत अर्थबिशारद पवित्राचारी वह ऋक्‌वेत्ता शाम्ब नाम ब्राह्मण राजासे वह सब वचन कहने लगा।

हे महाराज! उस मेधावी अत्यन्त प्रगल्भ बिप्रने सभाको प्रसन्न तथा सम्मानित करके राजा धृतराष्ट्रसे कहा, हे महाराज! इन लोगोंका सब बचन मुझमें अर्पित है। हे बीर नरनाथ! वह सब मैं आपसे कहता हूं, आप सुनके स्वीकार करिये। आप हम लोगोंको अपना और अपनेको हम लोगोंका सुहृत कहते हैं, सो वह सब सत्य है, इस बिषयमें कुछ भी मिथ्या बचन नहीं हुआ। हे प्रजापाल! इस वंशके राजाओंके बीच जो जिस समय राजा हुए हैं, उस समय वह प्रजाके प्रिय होनेके अतिरिक्त अप्रियभाजन नहीं हुए; वरन पिता और भ्राताको भांति हम लोगोंको प्रतिपालन किया है, राजा दुर्य्योधनने भी हम लोगोंके बिषयमें कुछ अत्याचार नहीं किया। हे महाराज! सत्यवतीपुत्र महात्मा महामुनि व्यासने आपको जैसा कहा है, आप इस समय वही करिये; वेही हम लोगोंके परम गुरु हैं। हे राजन्! हम लोग आपके द्वारा परित्यक्त होकर अत्यन्त शोकार्त्त तथा दुःखित हुए; परन्तु हम लोग सदाके लिये आपके गुणसमूहसे बद्ध होकर निवास करेंगे। हे पार्थिव! राजा शान्तनु, चित्राङ्गद और भीष्मके बलसे रक्षित आपके पिता बिचित्रबीर्य्य तथा आपके कृपादृष्टिबलसे पृथ्वीपति पाण्डुने जिस प्रकार हम लोगोंको पालन किया था, राजा दुर्य्योधनने भी उस ही प्रकार हम लोगोंको पालन किया है। हे नृपवर! आपके पुत्रने हम

लोगोंका कुछ भी अप्रिय कार्य्य नहीं किया, इस लिये हम लोग उस राजाका पिताकी भांति विश्वास करते थे, हम लोग जिस प्रकार सुखसे रहते थे, आपको वह सब विदित है। उस ही भांति बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा सहस्र वर्षतक प्रतिपालित होकर परम सुख-भोग करेंगे। हे नरनाथ! ये धर्म्मात्मा भूरिदक्षिणा युधिष्ठिर कुरु, सम्वर और धीमान भरत प्रभृति राजर्षियोंके व्यवहारके अनुवर्त्ती हुए हैं। हे महाराज! इसलिये इन युधिष्ठिरके विषयमें कुछ भी वक्तव्य नहीं है। हम लोगोंने आपके द्वारा प्रतिपालित होकर सुखसे वास किया है, उस समय पुत्रके सहित आपका अणुमात्र भी अप्रिय कार्य्य नहीं था। हे कुरुनन्दन! परन्तु आप इस ज्ञातिविनाशके विषयमें दुर्य्योधनके ऊपर दोषारोप करते हैं, उसके निमित्त हम आपसे विनय करते हैं, कि आप वैसा न कहिये।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! जो कुरुकुल नष्ट हुआ है, वह दुर्य्योधन, आप कर्ण तथा शकुनिके द्वारा नहीं हुआ। जिसे निवारण नहीं किया जा सकता, उसे ही दैव जानो; दैव पुरुषार्थके द्वारा कदापि बाधित नहीं होता। हे महाराज! योद्धाओंमें श्रेष्ठ कौरवोंके हाथसे अट्ठारह अक्षौहिणी सेना अट्ठारह दिनमें मारी गई। हे नरनाथ! दैवबलके अतिरिक्त भीष्म, द्रोण, कृप, महात्मा कर्ण, महावीर युयुधान, धृष्टद्युम्न और भीम, अर्ज्जुन, नकुल-सहदेव, इन चार पाण्डुपुत्रोंके द्वारा इस समस्त सेनाका नाश नहीं हुआ। युद्धमें क्षत्रिय तथा क्षत्रबन्धुगण अवश्य ही मरते हैं और समय पहुंचनेपर सभी मृत्युके मुखमें पतित हुआ करते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! उन बाहुबलशाली क्षत्रियोंके हाथसे घोड़े हाथी और रथसे युक्त इस समुद्र सहित पृथ्वीके सब वीर मारे गये हैं। हे महीपाल! आपके वे पुत्र तथा आप अथवा कर्ण, शकुनि वा आपके सेवक, कोई भी महात्मा राजाओंके बिनाश विषयमें कारण नहीं हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! सहस्रों राजा लोग जो बिनष्ट हुए हैं, उसे दैवकर्म्म जानो, इस विषयमें कोई भी कुछ कहनेमें समर्थ नहीं होता; आप हम लोगोंके गुरु और समस्त जगतके प्रभु हैं। हे धर्म्मात्मन्! इसलिये हम लोग आपको बनमें तथा आपके पुत्रोंको स्वर्गमें जानेके लिये आज्ञा करते हैं। वह राजा दुर्य्योधन सहायोंके सहित वीरलोक पावें और द्विजोंकी आज्ञानुसार सुरलोकमें सुखभोग करें। हे सुव्रत! आपको भी पुण्यधर्म्ममें परम स्थिति तथा समस्त वेदधर्म्म प्राप्त हों; पाण्डवोंके ऊपर जो आपकी दृष्टि पड़ी है, वह वृथा नहीं है, उस दृष्टिबलसे वे लोग पृथ्वीको तो बात दूर रहे, स्वर्गको भी पालन करनेमें समर्थ होंगे। हे धीमान् कुरुकुलप्रवर! प्रजा सम वा विषमपथमें शील भूषणसम्पन्न पाण्डवोंकी अनुवर्त्ती होगी; पृथिवीपति पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर पुराने राजाओंके द्वारा अपराह्न पुरुषों तथा ब्राह्मणोंको प्रदान किये हुए अनुत्तम द्वार तथा परिच्छद प्रभृतिकी रक्षा करेंगे।

भरतकुल श्रेष्ठ अक्षुद्र-सचिव मेधावी महामना कुन्तीपुत्र दीर्घदर्शी मृदुदान्त धनाध्यक्षकी भांति शत्रुओंके विषयमें भी सानुकूल होकर सरलचित्तसे सदा पुत्रकी भांति हम लोगोंका पालन करते हैं। हे राजर्षि! इस धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके संसर्गसे भीम तथा अर्ज्जुन प्रभृति भी अप्रिय आचरण न करेंगे। हे कौरव्य! ये वीर्य्यवान महात्मा पुरवासियोंके हितैषी भीम प्रभृति पाण्डवगण मृदुस्वभाववाले पुरुषोंके विषयमें मृदुता और उग्रस्वभाववालोंके विषयमें उग्रता आचरण किया करते हैं। हे महाराज! कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी और सात्त्वत कुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा, ये लोग इस समयमें कदापि आपके प्रतिकूल आचरण न करेंगी; पुरवासी और

जनपदवासी प्रजासमूह युधिष्ठिरके द्वारा विवर्द्धित होकर आपके इस स्नेहको कदापि न भूलेंगे। महारथ कुन्तीपुत्रगण धर्म्मपरायण होके अधार्म्मिक मनुष्योंको भी पालन करेंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! आपको हम लोग प्रणाम करते हैं, आप युधिष्ठिरसे मानसिक दुःख दूर करके धर्म्मकार्य्य करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सब लोगोंने उस ब्राह्मणके उत्तम गुणयुक्त धर्म्म समन्वित वैसे वचनका सम्मान करते हुए धन्य धन्य कहके ग्रहण किया। उस समय धृतराष्ट्रने भी उस वाक्यको उत्तम कहते हुए धीरे धीरे प्रजासमूहको विसर्ज्जन किया। हे भरतकुलतिलक! राजा धृतराष्ट्र ने उस प्रजासमूहसे पूजित तथा शुभदृष्टिसे अवलोकित होकर हाथ जोड़के उस ब्राह्मणकी पूजा की। तिसके अनन्तर उन्होंने गान्धारीके गृहमें प्रवेश करके रात्रि बीतनेपर जो किया था, उसे सुनो।

१० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर रात बीतनेपर सवेरे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने विदुरको युधिष्ठिरके भवनमें भेजा। बुद्धिमान् पुरुषोंमें अग्रगण्य महातेजस्वी विदुर राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार अच्युत ईश्वर युधिष्ठिरके निकट जाके उनसे बोले, हे राजन्! महाराज धृतराष्ट्र वनवासके निमित्त दीक्षित हुए हैं, वह आगामी कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन वनमें जायंगे, हे कुरुकुलप्रवर! वह महात्मा गङ्गातनय भीष्मके श्राद्ध दानके अभिलाषी होकर आपके समीप किञ्चित धनकी आकांक्षा करते हैं और यदि आपकी अनुमति हो, तो द्रोण, सोमदत्त, बुद्धिमान बाह्लीक, पुत्रगण, सैन्धवापसद जयद्रथ तथा जो सब सुहृद युद्धमें मरे हैं, उन सबका भी श्राद्ध करें। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और गुडाकेश अर्ज्जुनने विदुरका वैसा वचन सुनके प्रसन्न होकर सम्मानपूर्व्वक उसे स्वीकार किया। परन्तु उस समय महातेजस्वी दृढ़क्रोधी भीमने दुर्य्योधनके कार्य्योंको स्मरण करते हुए विदुरके उस वचनको स्वीकार न किया; किरीटि फाल्गुन भीमसेनका अभिप्राय जानके किञ्चित विनयपूर्व्वक पुरुषश्रेष्ठ भीमसे बोले, हे भीम! बूढ़े राजा पिता धृतराष्ट्र वनवासके निमित्त दीक्षित होकर सुहृदोंके और्द्धदैहिक श्राद्ध करनेके अभिलाषी हुए हैं। हे महाबाहो कौरव! जब वह भीष्मादिके और्द्धदैहिक कार्य्यकेलिये तुम्हारे द्वारा निर्ज्जित धन दान करनेकी इच्छा करते हैं, तब उस विषयमें आपको अनुमति करनी ही उचित है। हे महाबाहो! देखिये समयका कैसा उलट फेर है, कि पहले ये हम लोगोंके द्वारा याचित हुए थे आज वेही धृतराष्ट्र भाग्यवशसे हमलोगोंके निकट प्रार्थना करते हैं; ये धृतराष्ट्र सारी पृथ्वीके अधिपति होकर शत्रुके द्वारा मन्त्रियोंके मारे जानेसे वनमें जानेके लिये अभिलाषी हुए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! दानके अतिरिक्त अन्यकार्य्यमें आपकी प्रवृत्ति न हो, क्यों कि दानके अतिरिक्त अन्य कार्य्यमें प्रवृत्ति होनेसे अयश और अधर्म्म हुआ करता है। हे भरतर्षभ! आप सबके प्रभु ज्येष्ठ भ्राता राजा युधिष्ठिरके निकट शिक्षित होइये, राजाके विद्यमान रहते आप लेने देनेमें समर्थ नहीं हैं।

बिभत्सु अर्ज्जुनके ऐसा कहनेपर धर्म्मराजने भी उन्हें सम्मानित किया, परन्तु उस समय भीमसेन क्रोधपूर्व्वक उनसे बोले, हे फाल्गुन! मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि हम लोग भीष्म, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजर्षि बाह्लीक, महात्मा द्रोणाचार्य्य तथा अन्यान्य सुहृदोंका श्राद्धादि करेंगे और कुन्ती कर्णका श्राद्ध दान करेगी। हे कुरुनाथ! धृतराष्ट्र दान न करने पावेंगे, ऐसा होनेसे जिन कुलपांसनोंके द्वारा यह पृथ्वी विनाशित हुई है, वे हमारे परम शत्रु दुर्य्योधनादि अत्यन्त कष्टसे

परलोकमें गमन करेंगे। हे अर्ज्जुन! बारह वर्षका वैर, घने वन तथा अज्ञातवास और द्रौपदीके शोकवर्द्धन आदि सब विषयोंको क्या तुम भूल गये? जब तुमने पाञ्चालपुत्री द्रौपदीके सहित आभरण तथा भूषणरहित होकर कृष्णाजिन पहरके राजा धृतराष्ट्रके समीप गमन किया था उस समय हम लोगोंके विषयमें उनका कैसा स्नेह था? जब तेरह वर्षतक वनके बीच वन्यवृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करते थे, उस समय द्रोण, भीष्म और सोमदत्त, ये लोग कहां थे? उस समय तुम्हारे इन ज्येष्ठ पिताने पिताकी भांति तुम्हारे विषयमें क्यों नहीं दृष्टि की? हे पार्थ! इस कुलपांसन दुर्व्बुद्धिने ही उस समय विदुरसे यह बात पूछी थी, कि "क्या जूएमें जीत हुई?" उसे तुम एकबारही भूल गये हो? भीमसेनके ऐसा कहते रहनेपर कुन्तीपुत्र बुद्धिमान राजा युधिष्ठिर उनकी निन्दा करते हुए यह वचन बोले, कि शान्त होजाओ।

११ अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, हे भीम! आप हमारे ज्येष्ठ भाई तथा गुरु हैं, इसही निमित्त आपसे अतिरिक्त कहनेका मुझे उत्साह नहीं होता है; और क्या कहूं, राजर्षि धृतराष्ट्र सब प्रकारसे हम लोगोंके सम्मानार्ह हैं। देखिये अभिन्न मर्य्यादावाले साधुचित्त उत्तम पुरुष अपकारको स्मरण न करके उपकारहीको स्मरण किया करते हैं। अनन्तर धर्म्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर महात्मा अर्ज्जुनका वचन सुनके विदुरसे बोले, हे क्षत्त! आप मेरे वचनके अनुसार कुरुकुल-श्रेष्ठ पृथ्वीपति धृतराष्ट्रसे कहना, कि वह पुत्रों तथा भीष्म प्रभृति आप्तकारी सुहृदोंके श्राद्धमें जो दान करनेकी इच्छा करेंगे, मैं अपने खजानेसे वह सब धन दूंगा; इससे महाबाहु भीम दुःखित न होंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराजने इतनी बात कहके अर्ज्जुनको सम्मानित किया, भीमसेनने भी धनञ्जयकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखा। अनन्तर बुद्धिमान युधिष्ठिर विदुरसे बोले, हे नरनाथ! धृतराष्ट्र जिसमें भीमसेनके ऊपर कोप न करें, ये धीमान् भीमसेन जो वृष्टि, धूप तथा अनेक प्रकारके दुःखोंसे क्लेशित हुए हैं, वह आपको विदित है। हे भरतर्षभ! परन्तु आप मेरे वचनके अनुसार राजासे कहना, कि उनकी जो इच्छा हो, मेरे गृहसे वह उन सब वस्तुओंको ग्रहण करें और यह भी कहना, कि यह भीमसेन अत्यन्त दुःखित होकर जो मत्सरता करता है, वह उन्हें अन्तःकरणमें रखना उचित नहीं है। और उस नरनाथसे यह वचन कहना, कि मेरे तथा अर्ज्जुनके गृहमें जो सब धन है, आप उस समस्त धनके स्वामी हैं; इसलिये आज राजा पुत्रों तथा सुहृदोंके निमित्त इच्छानुसार दान करके अनृण्य लाभ करें। हे जननाथ! आप यह निश्चय जानिये, कि मेरा यह शरीर तथा जो कुछ धन है, वह आपके अधीन है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिसत्तम विदुर राजा युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके धृतराष्ट्रके निकट जाकर युधिष्ठिरके कहे हुए महान् अर्थयुक्त समस्त वचन कहने लगे।

विदुर बोले, हे महाराज! मैंने महातेजस्वी युधिष्ठिरके समीप आपका वचन विस्तारपूर्व्वक कहा, उन्होंने आपका वचन सुनके अत्यन्त प्रशंसा की; महातेजस्वी अर्ज्जुनने भी आपका वचन सुनके निज गृहमें स्थित समस्त धन, गृह तथा प्राण पर्य्यन्त आपको निवेदन किया। हे राजर्षि! आपके पुत्र धर्म्मराजने धन, प्राण तथा गृहमें जो कुछ वस्तु है, वह सब आपको ग्रहण करनेके लिये आज्ञा की; परन्त महाबाहु

भीमसेनने दुःखोंको स्मरण करके सांस छोड़ते हुए बहुत कष्टसे स्वीकार किया ; उसे देखकर धर्म्मशील युधिष्ठिर तथा अर्जुनने महाबाहु भीमसे बहुत बिनती करके सुहृदता स्थापन की ; उसके लिये धर्म्मराजने आपको कहा है, कि "भीमने पहले वैरको स्मरण करके जो अन्याय आचरण किया है, उससे वह भीमके विषयमें क्रोध न करें । हे नराधिप ! जब कि क्षत्रियोंका धर्म्म ही ऐसा है, तब इस वृकोदरने युद्ध तथा क्षत्रधर्म्ममें रत रहनेसे ऐसा आचरण किया है । , हे नरनाथ ! इसलिये मैं और अर्जुन भीमके निमित्त आपसे क्षमा मांगता हूं; आप प्रसन्न होइये ; हमलोगोंके जो कुछ है, आप उन समस्त वस्तुओंके प्रभु हैं। हे पृथ्वीपति ! जब कि आप इस राज्य तथा हमारे प्राणके भी प्रभु हैं, तब आपको जितने धनकी इच्छा हो, उतना दान करिये ; पुत्रोंके ऊर्द्ध-देहिक कार्य्यके लिये आप हमारे पाससे उत्तम हार, रत्न, गऊ, दास, दासी तथा बकरे प्रभृति समस्त धन लेकर ब्राह्मण, दीनअन्ध और कृपणोंको दान करिये।

हे महाराज ! पार्थ तथा धनञ्जयने आपको ऐसा ही कहके मुझे बहुतसा अन्न, पान, रस प्रभृतिकी सभा, गौवोंको जल पीनेके निमित्त तालाब और अन्यान्य विविध पुण्यजनक कार्य्य करनेके लिये आज्ञा किया ; इसलिये अब इसके बाद जो कुछ करना हो, आप उसे करिये।

हे जनमेजय ! जब विदुरने ऐसा कहा, तब धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके विषयमें अत्यन्त सन्तुष्ट होके उन्हें अभिनन्दित करते हुए कार्त्तिकी पौर्णमासीमें महादान करनेकी इच्छा की।

१३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जननाथ धृतराष्ट्र, विदुरका ऐसा वचन सुनके राजा युधिष्ठिर तथा जिष्णु अर्जुनके कार्य्यसे बहुत ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने भीष्म, पुत्रों और सुहृदोंके निमित्त निर्व्वाचनपूर्व्वक सहस्र ऋषिसत्तम ब्राह्मणोंको अन्न-पानादि भोजन कराके द्रोण, भीष्म, सोमदत्त, बाल्हीक, राजा दुर्य्योधन, अन्यान्य पुत्रगण और जयद्रथ प्रभृति सुहृदोंके नाम लेकर उनके उद्देश्यसे उन ब्राह्मणोंको सवारी, वस्त्र, सुवर्ण, मणि, रत्न, दास, दासी, अजाविक और राङ्कव कम्बल, विविध रत्न ग्राम, खेत, सुसज्जित घोड़े, हाथी और आभूषणोंसे युक्त उत्तम कन्या प्रदान किया।

उस समय युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार बहुतसे धन-रत्न और अनेक दक्षिणायुक्त वह श्राद्धयज्ञ इस प्रकार बर्द्धित हुआ, कि वहां गणक तथा लेखक पुरुष युधिष्ठिरके वचन अनुसार राजा धृतराष्ट्रसे बार बार पूछने लगे, कि इन लोगोंको क्या दान करना होगा, उसके लिये आप आज्ञा करिये ; आप जो आज्ञा करेंगे, वही इस स्थानमें उपस्थित है। उस समय वे लोग धृतराष्ट्रके वचनको सुनके बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके वचन अनुसार जो लोग एक सौ दानके पात्र थे, उन्हें सहस्र और सहस्र दानवाले पात्रको दस सहस्र परिमाणसे धन दान करने लगे, जैसे बादल जलको वर्षा करके शस्योंको पुष्ट करता है, वैसे ही उस नरनाथने वसुकी वर्षा करते हुए ब्राह्मणोंको परितृप्त किया। हे महाप्राज्ञ ! तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने उस श्राद्धयज्ञमें अन्न पान तथा रसके सहारे सब वर्णोंको ही प्लावित किया। हे महाराज ! वस्त्र, धन और समस्त रत्न जिसका वेग, मृदङ्गसमूह महाध्वनि गऊ और अश्वसमूह मकर तथा आवर्त्त, अनेक प्रकारके रत्न ही महान् आकर ग्राम और उत्तम हारसमूह द्वीप, मणि तथा सुवर्ण प्रभृति जल और धृतराष्ट्र उडुपरूपी हुए ; ऐसे दानरूपी समुद्रने समस्त जगत्को प्लावित किया। हे महाराज ! उस नरनाथ धृतराष्ट्रने इस ही प्रकार पुत्र,

पौत्र, पितरगण और अपना तथा गान्धारीका ऊर्द्ध दैहिक कार्य्य पूरा किया। अनन्तर जब वह बहुत दान करके थक गये, तब नरनाथ युधिष्ठिरने उस दान यज्ञको निवर्त्तित किया। कुरुपति राजा धृतराष्ट्रने नट, नर्त्तक और नृत्य गीतादि समन्वित बहुतसा अन्न, रस और दक्षिणायुक्त दानरूपी महायज्ञको इस ही प्रकार समाधान किया।

हे भरतश्रेष्ठ! अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र इस ही प्रकार दस दिनतक अनेक भांतिसे धनदान करके पुत्रों और पौत्रोंके निकट अऋणी हुए।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनघीमान् अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्रने गान्धारीके सहित वनवासका समय निश्चय करते हुए वीरश्रेष्ठ पाण्डुपुत्रोंको बुलाके विधिपूर्व्वक उन्हें अभिनन्दित किया। अनन्तर वह कार्त्तिकी पौर्णमासीमें वेदपारग ब्राह्मणोंके द्वारा उदवसनीय नाम यज्ञ पूरा करके बल्कल तथा अजिन पहरके अग्निहोत्रको आगेकर बधूगणोंसे घिरके निज गृहसे बाहिर हुए। अनन्तर विचित्र वीर्य्यपुत्र राजा धृतराष्ट्रके गृहसे बाहिर होनेपर उस समय कुरुश्रेष्ठ पाण्डव तथा कुरुवंशीय अन्यान्य स्त्रियोंके रोदनकी ध्वनि प्रकट हुई। उसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने लाज तथा विचित्र पुष्पोंसे उस गृहकी पूजा तथा धनसे सेवकोंकी तुष्टि करते हुए विषयादि परित्याग करके गमन किया।

अनन्तर राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़के कम्पित शरीर तथा सवाष्पकण्ठसे युक्त ऊंचे स्वरसे महानाद करते हुए हे साधो तात! आप कहां जायंगे? ऐसा बचन कहके पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय भारतप्रधान अर्जुनने तीव्र दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर बार बार लम्बी सांस छोड़ते हुए दीन जनोंकी भांति प्रसन्न होकर युधिष्ठिरको "आप ऐसा न होइये," इस प्रकार कहके उन्हें धारण किया। अनन्तर वृकोदर महावीर फाल्गुन, माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव, विदुर, सञ्जय, वैश्यापुत्र युयुत्सु और गौतमके सहित धौम्य प्रभृति विप्रगण बाष्परुद्ध कण्ठसे उनका अनुगमन करने लगे। कुन्ती नेत्र बांधके चलनेवाली गान्धारीके निज कन्धेपर स्थित हाथको धरके चलने लगी। राजा धृतराष्ट्र भी गान्धारीके कन्धेपर हाथ रखके विश्वासी होकर चलने लगे। सात्त्वतकुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा, कृष्णवर्णवाली द्रौपदी, बालापत्या उत्तरा, कुरुराजपुत्री, उलूपी, चित्राङ्गदा और अन्यान्य स्त्रियें बधूगणके बीच घिरके राजाके सङ्ग चलीं। उसके अनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी स्त्रियें उस ध्वनिको सुनकर चारों ओरसे वहां आके निपतित हुईं। हे महाराज! पहिले पाण्डवोंके जूएकी खेलमें हारके कौरव-सभासे गमन करनेपर हस्तिनापुरवासी जिस प्रकार दुःखित हुए थे, धृतराष्ट्रके निकलनेके समयमें भी वे लोग उस ही प्रकार दुःखित हुए। ऐसा ही नहीं, वरन जो सब स्त्रियें कभी चन्द्र तथा सूर्य्यको भी नहीं देखने पाती थीं, वे भी उस कुरुपति नरेन्द्र धृतराष्ट्रके महावनमें जानेके समय अत्यन्त शोकार्त्त होकर राजमार्गमें बाहिर हुईं।

१५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पृथ्वीपाल! उसके अनन्तर समस्त प्रासाद, अट्टालिका तथा भूमण्डलके बीच नर-नारियोंका महान् शब्द प्रकट हुआ। बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र हाथ जोड़के तथा कांपते हुए शरीरसे अत्यन्त कष्टके सहित नरनारियोंसे परिपूरित राजमार्गसे बाहिर हुए। अनन्तर उन्होंने बड़े दरवाजेसे हस्तिनापुरके बाहिर होकर उस स्थानमें समा-

गत लोगोंको क्रमसे विदा किया। महामन्त्री सूत गवलगणपुत्र सञ्जय और विदुरने राजा धृतराष्ट्रके सङ्ग वनमें जानेके लिये स्थिर सङ्कल्प किया। तब पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्रने कृपाचार्य्य और महारथ युयुत्सुको युधिष्ठिरके समीप सौंपकर उन लोगोंको निवृत्त किया। उस समय पुरवासियोंके लौटनेपर राजा युधिष्ठिर अन्तःपुरवासी स्त्रियोंके सहित धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाके वहांसे निवृत्त हुए। वह धृतराष्ट्रको अनुगमनाभिलाषिणी वनमें जानेकी इच्छा करनेवाली निज माता कुन्तीसे बोले, हे माता! मैं राजाके सङ्ग जाऊंगा, तुम लौट जाओ। हे रानी! तपस्याके लिये निश्चय किये हुए ये राजा धृतराष्ट्र वनमें जावें परन्तु आपको वधूगणोंके बीच घिरके नगरमें चलना उचित है।

उस समय कुन्ती धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके आंखोंमें आंसू भरकर गान्धारीको दृढ़ताके सहित धरके गमन करनेमें उद्यत हुई।

कुन्ती बोली, हे महाराज! यह सहदेव सदा तुम्हारा और मेरा अनुरक्त है, इसलिये तुम इसके विषयमें कभी विरक्त न होना। युद्धमें सदा अपराङ्मुख कर्णको स्मरण करना, वह वीर उस समय दुर्बुद्धिसे ही संग्राममें मारे गये। हे पुत्र! मैं मन्दभागिनी हूं, मेरा हृदय निश्चय ही लोहमय है, क्यों कि सूर्य्यपुत्रको न देखकर अबतक भी सौ टुकड़े होकर न फट गया? हे अरिदमन! जब कि सूर्य्यनन्दन इस प्रकार चले गये, तब उस विषयमें मैं और क्या कहूंगी? तब मेरा उसमें एक महान् दोष हुआ है, कि पहले मैंने कर्णको सूर्य्यसे उत्पन्न हुआ कहके प्रकाश नहीं किया। हे अरिमर्द्दन महाबाहो! तुम भाइयोंके सहित उस सूर्य्यपुत्रके उद्देशसे उत्तम रीतिसे दान करना। हे शत्रुकर्षण कुरुद्वह! भीम, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव सदा द्रौपदीके प्रियकार्य्यमें रत रहें। हे महाराज! आज तुमपर ही समस्त कुलका भार अर्पित हुआ है, इसलिये तुम इन सब कार्य्योंको पूरा करना। मैं वनके बीच सास श्वशुर तथा गान्धारी और धृतराष्ट्रका अनुगमन करके इनकी चरणसेवा करती हुई मलपङ्किनी तपस्विनी गान्धारीके सङ्ग वास करूंगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, चित्तको वशमें किये हुए बुद्धिमान धर्म्मात्मा युधिष्ठिर कुन्तीका ऐसा वचन सुनके भाइयोंके सहित अत्यन्त दुःखित होकर कुछ भी उत्तर देनेमें समर्थ न हुए।

चिन्ता शोकपरायण धर्म्मराज युधिष्ठिर मुहूर्त्तभर चिन्ता करके दीनभावसे निज जननी कुन्तीसे बोले, हे माता! तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? आपको ऐसा करना उचित नहीं है; मैं तुम्हें वनमें जानेके निमित्त आज्ञा न करूंगा, आप हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवें। हे प्रियदर्शने! पहले हम लोगोंके नगरसे बाहिर जानेमें उद्यत होनेपर तुमने हम लोगोंको विदुलाके वचनसे उत्साहित किया था, इस समय क्या हम लोगोंको तुम्हें परित्याग करना उचित होता है? मैंने पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णके समीप तुम्हारे बुद्धिबलको सुनके उसहीके अनुसार राजाओंको मारके यह राज्य पाया है। हे माता! मैंने तुम्हारी जो बुद्धिवृत्ति सुनी थी, आज तुम्हारी वह बुद्धि कहां है? पहले तुम मुझे क्षत्रधर्म्ममें निवास करना अवश्यकर्त्तव्य कहके इस समय उससे विच्युत होनेको इच्छा करती हो? तुम इस राज्य, यशस्विनी पुत्रबधुओं तथा हम लोगोंको परित्याग करके किस प्रकार दुर्गम वनमें वास करोगी? हे माता! मुझपर प्रसन्न होके वनमें जानेसे निवृत्त होजाओ।

कुन्ती पुत्रका ऐसा वाष्पाकुल करुणायुक्त वचन सुनके आंखोंमें आंसू भरके गमन करने लगी, तब भीमसेन उससे बोले, हे माता! जब तुमने पुत्र निर्ज्जित इस राज्यभोग और राजधर्म्म प्राप्त करनेके लिये विचारा था, तब

तुम्हारी यह बुद्धि कहां थी? तुम किस कारण हम लोगोंको छोड़के बनमें जानेकी इच्छा करती हो? यदि तुम्हारा ऐसा ही अभिप्राय था, तो पहिले क्यों हम लोगोंके द्वारा पृथ्वीका नाश कराया? और हम लोग बाल्य अवस्थामें ही बनको गये थे, तब हम लोगोंको तथा दुःखशोकयुक्त माद्रीपुत्र नकुल सहदेवको क्यों बनसे बुलवाया। हे यशस्विनि माता! तुम प्रसन्न हो जाओ, आज बनमें न जाकर धर्म-राजके बाहुबलसे उपार्ज्जित इस ऐश्वर्य्यको भोग करो।

भाविनी कुन्तीने शीघ्र बनबासके निमित्त निश्चय करके पुत्रोंके अनेक प्रकारसे विलापयुक्त बचनको न सुना और न ग्रहण किया। तब द्रौपदी विलखवदन होकर रोदन करती हुई सुभद्राके सहित बनमें जानेके लिये उद्यत निज सास कुन्तीकी अनुगामिनी हुई। बनबासका निश्चय किये हुई महाबुद्धिमती कुन्ती रोते हुए पुत्रोंको बार बार देखती हुई गमन करने लगी। पाण्डवगण भी सेवकों तथा अन्तःपुरवा-सियोंके सङ्ग उसका अनुगमन करने लगे। तिसके अनन्तर कुन्ती अत्यन्त कष्टसे आंसू रोक-कर पुत्रोंसे कहने लगी।

१६ अध्याय समाप्त।

कुन्ती बोली, हे महाबाहु पाण्डुपुत्र नर-पतिगण! तुम लोगोंने जो कहा, वह सत्य है, परन्तु पहले मैंने तुम लोगोंको जो कहा वा तुम्हारे निमित्त जो कुछ किया है; उन सब कार्य्योंको तुम लोगोंके जूए, राज्य और सुखसे भ्रष्ट, स्वजनोंसे पराभूत तथा अवसन्न होनेपर उत्साह बढ़ानेके निमित्त ही हुआ जानो। हे पुरुषप्रवरगण! पाण्डुकी सन्तति तथा तुम लोगोंका यश किसी प्रकार लुप्त न हो, इस ही निमित्त मैंने तुम लोगोंको हर्षित किया था; इन्द्र तथा देवताओंके सदृश पराक्रमशाली तुम लोगोंको दूसरोंका सुखापेक्षी न होनेके लिये मैंने ऐसी विवेचना करके वैसा किया था। हे युधिष्ठिर! तुम धार्म्मिकश्रेष्ठ और सुरराजस-दृश राजा हो, इसलिये जिसमें फिर तुम लोगोंको बनके बीच किसी प्रकारका क्लेश भोगना न पड़े, ऐसा ही समझकर मैंने तुम्हें हर्षित किया था, दश हजार हाथियोंके समान बलशाली विक्रम तथा पुरुषार्थमें विख्यात इस भीमसेनके विनाशकी आशङ्कासे मैंने तुम लोगोंके हर्षको बढ़ाया था। भीमसेनके भाई इन्द्रसदृश यह बिजय किसी प्रकार अवसन्न न हों, इस ही निमित्त मैंने तुम लोगोंको हर्ष उत्पन्न किया। गुरुके आज्ञानुवर्त्ती ये नकुल और सहदेव किसी प्रकार क्षुधासे अवसन्न न हों, ऐसा ही समझके मैंने तुम लोगोंके उत्सा-हको विशेष रीतिसे बर्द्धित किया था। यह दीर्घाङ्गी श्यामवर्णवाली विशालनयनी द्रौपदी सभास्थलमें वृथा क्लेश न पावे, यही समझकर मैंने वैसा किया था।

हे भीम! जब दुःशासनने मूर्खतासे तुम लोगोंके सम्मुखमें ही कदलीकी भांति कम्पित शरीरवाली स्त्रीधर्म्मिणी अरिष्टाङ्गी जूएमें हारी हुई इस द्रौपदीको दासीकी भांति परिकर्षित किया, तभी मैंने इस कुरुकुलको अपने समीप पराजित समझा था। जब द्रौपदी कुररीकी भांति विलाप करती हुई अन्य नाथकी अभि-लाष नहीं की, उस समय मेरे श्वशुर प्रभृति कौरवगण अत्यन्त दुःखित हुए। हे नृप! जिस समय हतबुद्धि पापात्मा दुःशासनने इसका केश पकड़ा, उस समय मैं मुग्ध होगई थी। हे पुत्र-गण! उस समय मैंने बिदुलाके बचनके अनुसार तुम लोगोंको हर्षित किया था। हे पुत्रगण उस समय पाण्डुका यह राजवंश मेरे पुत्रोंसे विनष्ट न हो, इस ही अभिप्रायसे मैंने तुम लोगोंका हर्ष बर्द्धित किया था; जिससे वंश प्रनष्ट होता है वे पाण्डुके पुत्र, पौत्र और पृथ्वी-

पति कौरवगण सुकृत लोकोंको न फल प्राप्त कर सकेंगी ।

हे पुत्रगण! पहिले मैंने स्वामीका विपुल राज्यफल भोग किया है, सब प्रकारसे महादान किया तथा विधिपूर्व्वक सोमपान किया है। मैंने निज फलके निमित्त श्रीकृष्णको नियुक्त नहीं किया, केवल बिदुलाके प्रलाप हेतु तथा पालन करनेके निमित्त वैसा किया था। हे पुत्रगण! मैं पुत्रसे निर्ज्जित राज्यफलकी कामना नहीं करती; हे विभु! मैं केवल तपस्याके सहारे पुण्यजनक पतिलोककी कामना करती हूं। हे युधिष्ठिर! मैं बनवासी सास-श्वशुरकी सेवा करती हुई तपोबलसे शरीर सुखाऊंगी; हे कुरुप्रवोर! इसलिये तुम भीमसेनादिके सहित लौट जाओ, तुम्हारी बुद्धि धर्म्ममें रत रहे और तुम्हारा मन अत्यन्त उच्चपदपर आरूढ़ होवे।

१७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजसत्तम! पापरहित पाण्डवगण कुन्तीका ऐसा बचन सुनके लज्जित होकर द्रौपदीके सहित निवृत्त हुए। उस समय कुन्तीके इस प्रकार गमन करनेपर अन्तःपुरवासीगण उसे देखके अत्यन्त शोकार्त्त होकर रोदन करने लगे, उनके रोदन करनेसे तुमुलशब्द हुआ। उस समय पाण्डवगण पृथाको फिर निवृत्त न करके धृतराष्ट्रको प्रदक्षिणा करते हुए प्रणाम करके निवृत्त हुए।

अनन्तर महातेजस्वी अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र गांधारी और बिदुरको सम्भाषणपूर्व्वक ग्रहण करके बोले, युधिष्ठिरने जो कहा है, वह सब सत्य है; इसलिये युधिष्ठिरकी जननी कुन्तीदेवी सद्भावके सहित निवृत्त होवे। महाफलजनक पुत्रके इस महान् ऐश्वर्य्य तथा पुत्रों की परित्याग करके मूढ़की भांति दुर्गम बनमें कहां जायगी? आज मेरा यह बचन सुने, कि वह राज्यमें ही रहके महादान तथा तपस्या कर सकेगी। हे धर्म्म जाननेवाली गान्धारी! मैं बधूकी सेवासे अत्यन्त ही परितुष्ट हुआ हूं, इसलिये तुम ही इसे निवृत्त होनेकी आज्ञा करो। सुबलपुत्री गान्धारीने राजाका ऐसा बचन सुनके कुन्तीको राजवाक्य सुनाया और स्वयं भी विशेष करके अनेक कथा कही; परन्तु बनवासके निमित्त निश्चय करनेवाली धर्म्मपरायण सती कुन्तीदेवीको किसी प्रकार लौटानेमें समर्थ न हुई। उस समय कुरुस्त्रीगण कुन्तीका धीरज और व्यवसाय मालूम करके तथा कुरुपति गणोंको निवृत्त होते देखकर ऊंचे स्वरसे रोदन करती हुई निवृत्त हुईं। अनन्तर पृथापुत्रों तथा बधूगणोंके निवृत्त होनेपर महाप्राज्ञ राजा धृतराष्ट्रने बनमें गमन किया। शोक दुःखपरायण पाण्डवगण अत्यन्त दीनभावसे स्त्रियोंके सहित सवारीके द्वारा नगरमें आये; उस समय स्त्री, वृद्ध और बालकोंके सहित हस्तिनापुर मानो उत्सवरहित हुआ। जातमन्यु पाण्डवगण कुन्तीके बिरहसे गो-बिहीन बछड़ेकी भांति दुःखार्त्त तथा निरुत्साह हुए।

इधर राजा धृतराष्ट्रने उस दिन बहुत दूर जाके भागीरथीके तटपर बास किया। वहां तपोवनमें वेदपारग ब्राह्मणोंके द्वारा विधिपूर्व्वक अग्नि जलाकर प्रकाशित हुए; उस समय वह बूढ़े राजा विधानके अनुसार अग्निहोत्रकी उपासना तथा आहुति दान करके स्वयं प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे। हे भारत! बिदुर और सञ्जयने सन्ध्याके समय सूर्य्यकी उपासना करके कुशके सहारे राजाके निमित्त शय्या तैयार किया। अनन्तर युधिष्ठिरकी जननी उत्तम व्रतवाली कुन्ती कुरुवीरके समीप ही गान्धारीकी शय्या बिछाकर उसके निकट कुशाके आसनपर सुखसे बैठी; बिदुर प्रभृति सब कोई उनके निकट बैठे और याचक अनुयायी द्विजगणोंने शुभस्थानमें निवास किया।

उस समय ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि समुत्थित तथा पावकपुञ्ज प्रज्वलित होनेसे वह रात्रि ब्राह्मीकी भांति उनलोगको प्रीतिवर्द्धिनी हुई। तिसके अनन्तर रात बीतनेपर भोरको उपवासपरायण धृतराष्ट्र प्रभृति पुरुषोंने पौर्व्वाह्निक कार्य्योंको पूरा करते हुए विधिपूर्व्वक अग्निमें होम करके इधर उधर देखते हुए यथाक्रमसे उत्तर ओर प्रस्थान किया। हे नरनाथ! शोच्यमान पुरवासी तथा जनपदवासियोंके निमित्त शोकपरायण धृतराष्ट्र प्रभृतिका प्रथम दिन उस भागीरथीके तटपर बास अत्यन्त दुःखकर हुआ था।

१८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने विदुरकी सम्मतिके अनुसार पुण्यमान पुरुषोंके बासके योग्य उस गङ्गाके तटपर ही निवास किया। हे भरतर्षभ! वहांपर बहुतसे वनवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण उनकी सेवा करने लगे। राजाने उनलोगोंके बीच घिरकर अनेक प्रकारके वचनसे उनलोगोंको परितुष्ट करते हुए विधिपूर्व्वक शिष्योंके सहित ब्राह्मणोंको सम्मानना करके चलनेके लिये आज्ञा किया। फिर उन्होंने यशस्विनी गान्धारीके सहित सायंकालमें गङ्गाकिनारे जाकर शौचादि कार्य्य पूरा किया। हे भारत! विदुरादि अन्यान्य पुरुषोंने पृथक् रीतिसे तीर्थमें आगमन करते हुए वहां शौचादि कार्य्य पूरा किया। हे राजन्! तिसके अनन्तर भोजराजपुत्री कुन्ती शौचादिसे निवृत्त होनेपर वृद्ध श्वशुर धृतराष्ट्र तथा गान्धारीको गङ्गातटपर ले आई, याजक गणोंने वहांपर राजाके निमित्त कुशास्तृत यज्ञवेदी तैयार की; उस सत्यसङ्कर राजा धृतराष्ट्रने वहां अग्निमें होम किया, फिर उन्होंने नियत तथा संयतेन्द्रिय होकर अनुचरोंके सहित कुरुक्षेत्रमें गमन किया। वह बुद्धिमान पृथ्वीपति धृतराष्ट्र आश्रममें आगमन करके मनीषी राजर्षि शतयूपसे मिले।

हे परन्तप! वह शतयूप केकयदेशके महाराज थे; उन्होंने पुत्रको पार्थिव ऐश्वर्थ्य तथा राज्यका अधिपति करके बनको अवलम्बन किय था। राजा धृतराष्ट्र उनके सहित व्यासदेवके आश्रममें गये; राजा शतयूपने वहां विधिपूर्व्वक कुरुपतिको प्रतिग्रह किया। कुरुनन्द राजा धृतराष्ट्रने वहां दीक्षा पाकर उस शतयूपके आश्रममें निवास किया। हे महाराज! महाबुद्धिमान राजा शतयूपने वेदव्यासकी अनुमतिक्रमसे राजा धृतराष्ट्रसे समस्त बन्यविधि विशेष रीतिसे कही; तब महामना पृथ्वीपति धृतराष्ट्र अनुचरोंके सहित तपस्यामें नियुक्त हुए। हे महाराज! समान तपचारिणी गान्धारी देवी भी बल्कल तथा अजिन धारण करके कुन्तीके सहित तपस्यामें नियुक्त हुई। हे नरनाथ! उन सब लोगोंने कर्म्म, मन, वचन और नेत्रके सहित इन्द्रियोंको संयत करते हुए परम तपस्या अवलम्बन की। वह पृथ्वीपाल धृतराष्ट्र वहां महर्षिकी भांति मोहरहित होकर अस्थिचर्म्म अवशिष्ट शुष्क मांसयुक्त, शरीरको जटा अजिन तथा बल्कलके द्वारा ढांकके तीव्र तपस्या करने लगे। धर्म्मार्थवित् लोकातीत बुद्धिमान जितात्मा क्षत्ता विदुर भी सञ्जयके सहित बल्कल तथा चीरवसन पहरके सस्त्रीक धृतराष्ट्रके निकट अत्यन्त घोर तपस्या करने लगे।

१९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर मुनिश्रेष्ठ महातपस्वी नारद, पर्व्वत, शिष्योंके सहित द्वैपायन मनीषी सिद्धगण और परम धार्म्मिक वृद्ध राजर्षि शतयूप, ये सब कोई राजा धृतराष्ट्रका दर्शन करनेके लिये उस स्थानमें आये। हे महाराज! कुन्तीने उन समागत

तपस्वियोंकी विधिपूर्व्वक परिचर्य्या की, वे सब कोई उसकी सेवासे प्रसन्न हुए। हे तात! उन परमर्षियोंने वहां आपसमें धर्म्मयुक्त वचनकी पर्य्यालोचना करते हुए महात्मा जननाथ धृतराष्ट्रको आनन्दित किया, तिसके अनन्तर किसी कथा प्रसङ्गसे सर्व्व प्रत्यक्षदर्शी देवर्षि नारद यह वार्त्ता कहने लगे।

नारद मुनि बोले, शतयूपके पितामह केकयाधिपति श्रीमान् नरनाथ सहस्रचित्य निःशङ्कचित्त थे। उस धर्म्मात्मा सहस्रचित्य परम धार्म्मिक जेठे पुत्रको राज्यभार अर्पण करके वनमें प्रवेश किया। महातेजस्वी पृथ्वीपति सहस्रचित्यने तपस्याकी पराकाष्ठा लाभ करके अन्तमें प्रदीप्त इन्द्रलोक पाया; मैंने महेन्द्रभवनमें जाके देखा, कि बहुत पहलेके देखे हुए नरनाथ सहस्रचित्य तपस्याके सहारे निष्पाप होकर वहां निवास करते हैं और भगदत्तके पितामह राजा शैलालयने तपोबलसे सुरेन्द्रभवनमें गमन किया है। हे राजन्! इन्द्रसदृश राजा पृषध्रने भी तपोबलके सहारे इसलोकसे स्वर्गमें गमन किया है। हे नरनाथ! इस वनमें ही मान्धातृपुत्र राजा पुरुकुत्सने महती सिद्धि पाई है; नदियोंमें श्रेष्ठ नर्म्मदा जिसकी भार्य्या है, वह राजा इस वनमें तपस्या करके सुरलोकमें गया है। हे राजन्! परम धार्म्मिक राजा शशलोमाने इस वनमें पूरी रीतिसे तपस्या करके स्वर्गलोक पाया है। हे राजन्! आप भी द्वैपायनकी कृपासे इस वनमें तपोबल लाभ करके दुष्प्राप्य अग्र्यागति पावेंगे। हे राजशार्दूल! आप भी तपस्याके अन्तमें श्रीसे परिवृत होकर गान्धारीके सहित उन महात्माओंकी गति प्राप्त करेंगे। हे महाराज! पाण्डु इन्द्रके निकट रहके भी सदा आपको स्मरण करते हैं, वह आपको श्रीयुक्त करेंगे। हे नरनाथ! हमलोग दिव्यदृष्टिसे यह देखते हैं, कि तुम्हारी बधू युधिष्ठिरकी जननी यशस्विनी कुन्ती आपकी तथा गान्धारीकी सेवा करनेसे वह स्वामीकी सलोकता प्राप्त करेगी, यही सनातन धर्म्म है और विदुर महात्मा युधिष्ठिरके निकट गमन करेंगे, सञ्जय तपस्याके सहारे इसलोकसे सुरलोकमें जायंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुपति महात्मा विद्वान् धृतराष्ट्रने नारद मुनिका ऐसा वचन सुनके भार्य्याके सहित अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनके वचनकी प्रशंसा करके उनकी पूजा की। हे राजन्! तिसके अनन्तर ब्राह्मणोंने राजा धृतराष्ट्रकी प्रीतिके अनुसार अत्यन्त सन्तुष्ट होकर नारद मुनिकी पूजा की; उस समय जब द्विजवरगण वैसे वचनसे नारद मुनिकी प्रशंसा कर रहे थे, तब राजर्षि शतयूप नारदसे बोले, हे महातेजस्वी! यह क्या ही आश्चर्य्य है, कि आपने हमारी, कुरुराजकी तथा सब लोगोंकी ही श्रद्धा बर्द्धित की है। हे लोकपूजित देवर्षि! धृतराष्ट्रके सम्बन्धमें मुझे कुछ कहना है, मैं उसे कहता हूं, सुनिये। हे महामुनि! आपको सबका वृत्तान्त तथा तत्त्व विदित है, विशेष करके आप दिव्य दृष्टिसे सब प्राणियोंकी विविध गति देखते रहते हैं, आपने सब राजाओंकी इन्द्रकी सलोकता प्राप्तिका विषय वर्णन किया, परन्तु ये राजा धृतराष्ट्र कौनसा लोक प्राप्त करेंगे,—उस विषयमें कुछ भी न कहा। हे विभु! इसलिये इस राजाको किस समय कौनसा स्थान प्राप्त होगा, उसे मैं आपके समीप सुननेकी इच्छा करता हूं, आप उसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। दिव्यदर्शी महातपस्वी नारद मुनि शतयूपका ऐसा वचन सुनके सबके मनोनुकूल विषय वर्णन करने लगे।

नारद मुनि बोले, हे राजर्षि! मैंने यदृच्छाक्रमसे इन्द्रके स्थानमें जाकर देखा, कि शचीपति इन्द्र और राजा पाण्डु वहां एकत्र निवास करते हैं। हे नरनाथ! यह धृतराष्ट्र जिस प्रकार दुष्कर तपस्या करते हैं, इनकी वह

वार्त्ता ही वहां होरही थी; मैंने वहां सुरराजके मुखसे ऐसा सुना, कि इस राजा धृतराष्ट्रकी परमायु तीन वर्ष अवशिष्ट है; उसके अनन्तर ये ऋषिपुत्र महाभाग धृतराष्ट्र तपोबलसे सब पापोंको जलाकर दिव्य आभूषणोंसे भूषित और राजाओंसे सत्कृत होकर गान्धारीके सहित दिव्य बिमानपर चढ़के कुवेरभवनमें जायंगे और इच्छानुसार देव, गन्धर्व्व तथा राक्षसलोकमें बिचरण कर सकेंगे। हे राजन्! आपने मुझसे जो विषय पूछा, वह देवलोकमें गोपनीय होनेपर भी आपलोगोंके श्रुतज्ञ होने तथा तपसे सब पापोंके जलानेसे और आपलोगोंके विषयमें मेरी महती प्रीति रहनेसे मैंने आपसे यह वृत्तान्त कहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवर्षि नारदके ऐसे मधुर वचनको सुनके राजाओंके सहित सब कोई सुस्थचित्त तथा परम परितुष्ट हुए। उन लोगोंने इस ही प्रकार वचनके सहारे मनीषी धृतराष्ट्रको आश्वासित करके इच्छानुसार सिद्ध गति अवलम्बन की।

२० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! कौरवेन्द्र महाराज धृतराष्ट्रके बनमें जानेके अनन्तर मातृशोकयुक्त पाण्डवगण दुःखित तथा शोकित हुए। पुरवासीलोग जननाथ धृतराष्ट्रके निमित्त शोक करने लगे, ब्राह्मण लोग शोकार्त्त होकर धृतराष्ट्रके सम्बन्धमें ऐसा कहने लगे, कि वह वृद्ध राजा महाभागा गान्धारी और पृथा कुन्ती, ये लोग निर्ज्जन बनमें किस प्रकार बास करते हैं? वह सुखके योग्य प्रज्ञाचक्षु इतपुत्र राजर्षि दुःखजनक महाबनमें कैसी दशामें निवास कर रहे हैं? कुन्तीने राजश्री परित्याग करके पुत्रोंको बिना देखे किस प्रकार बनवासकी इच्छा की? आत्मज्ञ बिदुर भ्राताकी सेवा करते हुए किस अवस्थामें हैं और स्वामि पिण्डानुपालक गवल्गणपुत्र सञ्जय भी किस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं? पुरवासी आबाल वृद्ध सब कोई चिन्ता तथा शोकसे परिपूरित होकर आपसमें एक दूसरेके साथ इस ही प्रकार वार्त्तालाप करने लगे उस समय अत्यन्त शोकसे युक्त पाण्डवगण बूढ़ी माता, बूढ़े हतपुत्र जननाथ धृतराष्ट्र महाभागा गान्धारी और महाबुद्धिमान बिदुरके निमित्त शोक करते हुए अधिक समयतक पुरके बीच बास न कर सके। अधिक क्या कहें, उन लोगोंके निमित्त सदा चिन्ता करनेवाले पाण्डुपुत्रोंको राज्य, स्त्री वा बेदाध्ययन, किसीसे भी तृप्ति न हुई, बल्कि उन लोगोंने बार बार नरनाथ धृतराष्ट्रको तथा ज्ञाति बध स्मरण करते हुए चिन्तासे आकुल होकर अपनेको अत्यन्त निकृष्ट समझा और युद्धके अगाड़ी बालक अभिमन्यु, संग्राममें न भागनेवाले महाबाहु कर्ण तथा सुहृद द्रुपदपुत्रोंका बिनाश स्मरण करके क्षुब्धचित्त हुए। हे भारत! वे लोग पृथिवीको रत्नबिहीन तथा वीरोंसे रहित देखकर सर्व्वदा चिन्ता करते हुए शान्ति लाभ न कर सके; हतपुत्रा द्रौपदी तथा भामिनी सुभद्रा देवी, ये दोनों दुःखिनीकी भांति अप्रीतियुक्त होरहीं। परन्तु तुम्हारे पूर्व्व पितामहोंने तुम्हारे पिता उत्तरापुत्र परीक्षितको देखकर प्राण धारण किया।

२१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वे वीरवर पुरुषश्रेष्ठ मातृनन्दन पाण्डवगण माताको स्मरण करते हुए इस ही प्रकार अत्यन्त दुःख भोगने लगे। पहले जो लोग राजकार्य्यमें नियुक्त थे, उस समय वे सब कोई नगरके बीच पूरीरीतिसे राजकार्य्य करनेमें समर्थ न हुए; वे लोग भी इस प्रकार शोकयुक्त हुए, कि किसीके पूछनेपर भी उत्तर देने तथा किसी बिषयको अभिनन्दन करनेमें समर्थ न हुए। गम्भीरतामें समुद्रसदृश

दुराधर्ष वे सब वीरगण अत्यन्त शोकसे ज्ञान रहित होकर सदा चेतरहितकी भांति निवास करने लगे ।

तिसके अनन्तर पाण्डवगण जननीके निमित्त इस प्रकार चिन्ता करने लगे, कि वह अत्यन्त कृशाङ्गी पृथा वृद्ध दम्पतीको किस प्रकार ले चलती है ? वह हतपुत्र महीपाल आश्रयरहित हो पत्नीके सहित किस प्रकार अकेले श्वापद-सेवित उस बनमें बास करते हैं ? वह महा-भागा हतबान्धव गान्धारी देवी निर्ज्जन बनमें किस प्रकार बूढ़े अन्ध पतिका अनुसरण करती है ? पाण्डवोंके इस ही प्रकार उत्सुकतापूर्व्वक बिलाप करते रहनेपर कुछ समयके अनन्तर उन लोगोंको धृतराष्ट्रके देखनेकी अभिलाष हुई । अनन्तर सहदेव राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके यह बचन बोले, अोहो ! आपके चित्तको गमनोन्मुख देखता हूं । हे राजेन्द्र ! मैं गौरव-वशसे सहसा जो चलनेको बात नहीं कह सकता था, इस समय वह गमनकाल उपस्थित हुआ है ; अच्छाही हुआ मैं उस बूढ़ी कुशकाश परिवृता जटाधारिणी तपस्विनी कुन्ती देवीको देखूंगा । अोहो ! जो सदा प्रासाद तथा कोठेके ऊपर रहती हुई बूढ़ी हुई जिसने कभी सुखके अतिरिक्त दुःख नहीं देखा, इस समय उस अत्यन्त दुःखित परिश्रान्त जननीको कब देखूंगा ? हे भरतर्षभ ! मर्त्य लोगोंकी गति निश्चय ही अनित्य है, क्यों कि कुन्ती राजपुत्री होकर दुःखके सहित जङ्गलमें बास करती है ।

स्त्रियोंमें मुख्य द्रौपदी देवीने सहदेवका बचन सुनकर राजा युधिष्ठिरको सम्मानपूर्व्वक अभिनन्दित करके कहा । हे जननाथ ! यदि वह पृथादेवी जीवित हों, तो मैं किस समय उन्हें देखूंगी ? क्यों कि मैं अपनी जीवित अव-स्थामें उनका दर्शन पानेसे अत्यन्त प्रसन्न हूंगी । हे राजेन्द्र ! आपकी यह मति सदा बर्द्धित हो और आपका मन सदा धर्म्ममें रत रहे । हे नरेन्द्र ! आप शीघ्र हम लोगोंको पृथाके दर्शन-रूपी मङ्गलकार्य्यमें नियुक्त करिये । हे राजन् ! आपको मालुम हो, कि ये बधूगण कुन्ती गान्धारी तथा श्वशुरको देखनेकी इच्छासे आगे पांव रखती हुई निवास कर रही हैं ।

हे भरतर्षभ ! नरनाथ युधिष्ठिर द्रौपदी देवीका ऐसा बचन सुनके सेनाध्यक्षोंको बुलाके यह बात बोले, कि मैं उस बनवासी महीपति धृतराष्ट्रको देखनेके लिये जाऊंगा, इसलिये तुम लोग हमारे बहुतसे रथ तथा हाथियोंसे युक्त समस्त सेनाको सज्जित होनेके लिये आज्ञा करो । अनन्तर राजा युधिष्ठिर स्त्रियोंके अध्य-क्षोंसे बोले, कि तुम अनेक प्रकारके यान तथा पालकियोंको सज्जित करो । गाड़ी हांकनेवाले आपण व्यवसायी, वंशधर, शिल्पी और कोषपाल लोग कोष (खजाना) लेकर कुरुक्षेत्राश्रममें जावें, यदि कोई पुरवासी राजाको देखनेकी इच्छा करते हों, तो वे अनावृत, सुविहित तथा उत्तम रीतिसे रक्षित होकर जा सकेंगे । हमारे रसो-इयें और पुरमें रहनेवाले सेवकगण अनेक प्रका-रके पाकपात्र तथा भक्ष्यभोज्य प्रभृति सामग्रि-योंको लेकर गाड़ीपर चढ़ें, कल् चलना होगा, इतनी बातको शीघ्र घोषणा करो और मार्गके बीच अनेक प्रकारके गृह बनाओ ।

हे राजन् ! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर भाईयोंके सहित इस ही प्रकार आज्ञा करके दूसरे दिन स्त्रियों और बूढ़ोंके सहित नगरसे बाहिर हुए । उस नरनाथ युधिष्ठिरने नगरके बाहिरी हिस्-सेमें पांच दिन निवासकर सब लोगोंको परिपा-लन करनेके अनन्तर बनकी ओर गमन किया ।

२२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर भरतस-त्तम राजा युधिष्ठिरने लोकपालसदृश अर्ज्जुन प्रभृति पुरुषोंसे रक्षित सेनाको चलनेके लिये आज्ञा की । हे भारत ! तिसके अनन्तर परम

प्रीतिसम्पन्न सेना तथा सवार प्रभृतिका "इकट्ठे होओ इकट्ठे होजाओ, घोड़ोंको जोतो;–" इस ही प्रकार तुमुल शब्द प्रकट हुआ। हे नरनाथ! अनन्तर पैदल और प्रासधारी योद्धाओंके बीच कोई यान, कोई महावेगशाली घोड़े कोई प्रज्वलित अग्निसदृश सुवर्णके बने हुए रथ, कोई हाथी और कोई कोई ऊंटोंपर चढ़के चलने लगे। धृतराष्ट्रके देखनेकी इच्छा करनेवाले पुरवासी तथा जनपदवासी लोग अनेक प्रकारके यानोंमें चढ़के कुरुराजका अनुगमन करने लगे। गौतमपुत्र कृपाचार्य्य राजाकी आज्ञासे सेनानायक होकर सेनाके सहित आश्रमकी ओर चले। तिसके अनन्तर कुरुराज युधिष्ठिर द्विजवरोंसे घिरकर बहुतेरे सूतमागध और वन्दियोंसे स्तुत, सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छत्रसे सुशोभित और महान् रथ तथा सेनासमूहसे समावृत होकर नगरसे बाहिर हुए। पवनपुत्र भीमकर्म्म करनेवाले वृकोदरने सज्जित यन्त्र और आयुधयुक्त पर्वतसदृश हाथीपर चढ़के गमन किया। चित्तको वशमें करनेवाले अर्ज्जुन सफेदवर्णवाले घोड़ोंसे युक्त, सूर्य्यके समान प्रभासम्पन्न दिव्य रथपर चढ़के राजाके अनुगामी हुए। माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवने ध्वजा और कवच बांधकर शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़के अपनी भांति सेनासे घिरके गमन किया, द्रौपदी प्रभृति सब स्त्रियें पालकीमें चढ़के स्त्रीरक्षकोंसे रक्षित होकर परिमित धन वितरण करती हुई चलने लगीं। हे भरतर्षभ! उस समय समस्त रथ, हाथी और घोड़ोंसे युक्त पाण्डवोंकी सेना बांसुरी और वीणासे अनुनादित होकर अत्यन्त शोभित होने लगी। हे पृथ्वीनाथ! वे कुरुकुलगण मनोहर नदी तथा तालाबोंके तटपर वास करते हुए क्रमसे चलने लगे; इधर महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य राजाकी आज्ञानुसार नगरकी रक्षा करने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने क्रमसे परमपावनी यमुना नदी पार होके कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर वहांसे दूरमें उस धीमान् राजर्षि शतयूप और कुरुपति धृतराष्ट्रका आश्रम देखा। हे भरतर्षभ! तिसके अनन्तर सब कोई अत्यन्त आनन्दित होकर सहसा महाशब्दसे उस वनको परिपूर्ण करते हुए उसमें प्रविष्ट हुए।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पदातिके सहित पाण्डवोंने दूरसे ही उतरके विनय और प्रणतिपूर्व्वक राजाके आश्रममें गमन किया। उस समय योद्धा लोग, पुरवासी और कुरुपतिगणकी स्त्रियें पैदल ही चलने लगीं; अनन्तर पाण्डवोंने मृगसमूहसे परिपूरित कदलीवनसे शोभित पुण्यजनक धृतराष्ट्रके आश्रममें प्रवेश किया।

तिसके अनन्तर नियतव्रती तपस्वीवृन्द समागत पाण्डवोंको देखनेके लिये कौतूहलयुक्त होकर वहां आये। राजा युधिष्ठिरने आंसू डबडबाये हुए नेत्रयुक्त होकर उन लोगोंसे यह बात पूछी, कि हमारे जेठे पिता वह कुरुवंशपति कहां हैं? उन लोगोंने इतनी बात सुनके राजासे कहा, हे प्रभु! वह फूल और जल लाने तथा यमुनामें स्नान करनेके निमित्त इस ही मार्गसे गये हैं। पाण्डवोंने शीघ्र ही उन लोगोंके कहे हुए मार्गसे गमन किया, पदातियोंने उन्हें दूरसे देखा? अनन्तर वे लोग पिताको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होके शीघ्र चले, परन्तु सहदेव वेगपूर्व्वक पृथाके समीप जानेके लिये दौड़े। धीमान् सहदेव माताके दोनों चरण छूके रोने लगे, पृथा नेत्रोंमें आंसू भरके प्रियपुत्रको देखने लगी; अनन्तर दोनों भुजाओंसे पुत्रको आलिङ्गन करके गान्धारीसे सहदेवके आनेका सम्वाद कहा। अनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्ज्जुन और नकुलको देखकर शीघ्रताके सहित उनके निकट गमन किया। पाण्डवोंने उस पृथाको अनुगत दम्पती धृतराष्ट्र,

तथा गान्धारीका हाथ धरके उनके आगे आगे आती हुई देखकर उन लोगोंके समीप जाकर भूमिपर झुकके प्रणाम किया। महामना मेधावी राजा धृतराष्ट्रने स्वर और स्पर्शसे पाण्डवोंको जानके उन्हें आश्वासित किया। तिसके अनन्तर महात्मा पाण्डवोंने आंसू बहाते हुए गान्धारीके सहित राजा धृतराष्ट्र और कुन्ती माताकी विधिपूर्व्वक पूजा की। फिर पाण्डव लोग सावधान होकर उनका जलकलश ग्रहण करके निज माता कुन्तीके द्वारा फिर आश्वासित हुए; उस समय पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी स्त्रियें, अन्तःपुरवासी, पुरवासी और जनपदवासी सब लोग जननाथ धृतराष्ट्रका दर्शन करने लगे। अनन्तर नरनाथ युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रको सबका नाम और गोत्र सुनाकर परिचय देके उनकी पूजा की। उस समय वाष्पाविललोचन राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवप्रभृति सब लोगोंके बीच घिरके अपनेको मानो हस्तिनापुरमें स्थित समझा। अनन्तर उस पृथ्वीपति धृतराष्ट्रने गान्धारी और कुन्तीके सहित द्रौपदी प्रभृति बधूगणके द्वारा अभिवादित और आनन्दित होकर तारासमूहसे भरे हुए नभमण्डलकी भांति दर्शनेच्छु लोगोंसे परिपूरित, सिद्ध तथा चारणोंसे सेवित आश्रममें गमन किया।

२४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रने सुरम्य कमलनेत्र पुरुषश्रेष्ठ उन पांचो भाइयोंके सहित आश्रममें निवास किया। महाभाग तपस्वीगण विपुल वक्षस्थलसम्पन्न कुरुपतिके पुत्र उन पाण्डवोंके देखनेकी अभिलाषसे अनेक देशोंसे आके बोले, कि इन लोगोंके बीच कौन युधिष्ठिर, कौन भीम, कौनसे अर्ज्जुन और कौनसे नकुल सहदेव है और कौनसी यशस्विनी द्रौपदी है? हम लोग उन्हें जाननेकी इच्छा करते हैं। उस समय सूत सञ्जय तपस्वियोंकी ऐसी बात सुनके पांचो पाण्डव, द्रौपदी तथा अन्यान्य कुरुस्त्रियोंका नाम पृथक् पृथक् कहके परिचय देने लगे।

सञ्जय बोले, ये जो विशुद्ध सुवर्णकी भांति गौर शरीरयुक्त महासिंहकी भांति समुन्नत हैं और जिसकी नासिका ऊंची, नेत्र स्थूल वा दीर्घ अथवा लोचन ताम्रवर्ण तथा अत्यन्त विस्तृत दीखते हैं; येही युधिष्ठिर हैं। जिसका चलना मतवारे गजेन्द्रकी भांति, वर्ण प्रतप्त चामीकरके सदृश, अंस स्थूल और विस्तृत है तथा भुजा मोटी और लम्बी हैं, वेही भीमसेन हैं; आप लोग देखिये, इनके बगलमें महाधनुर्धारी हाथियोंके यूथपतिकी भांति श्यामल, सिंहकी भांति ऊंचे स्कन्धवाला युवा गजगामी कमलनेत्र वीरवर पुरुष ही अर्ज्जुन हैं। ये जो पुरुषश्रेष्ठ विष्णु और महेन्द्रसदृश, मनुष्यलोकातीत रूपबल और शीलसम्पन्न दो पुरुष कुन्तीके समीप निवास करते हैं, वेही यमज नकुल सहदेव हैं। यह जो पद्मदलकी भांति विशालनयनी मध्यम अवस्थावाली, नीलोत्पल सदृश मूर्त्तिमती लक्ष्मी तथा सुरदेवताकी भांति निवास करती है, वही कृष्णा द्रौपदी है? हे द्विजवरगण! उसके बगलमें यह जो मूर्त्तिमती इन्द्रप्रभा समान कनकवर्णवाली स्त्री विद्यमान है, वही उस अप्रतिम चक्रधारी कृष्णकी बहिन सुभद्रा है। यह जो विशुद्ध जाम्बूनदकी भांति गौरवर्णवाली नागकन्या और मधूक पुष्पके समान रूपवाली नरेन्द्र कन्या दीख पड़ती हैं, वे अर्ज्जुनकी भार्य्या हैं। जो नरनाथ कृष्णके सङ्ग सर्व्वदा स्पर्द्धा करते थे, उस राजचमूपतिकी बहिन यह नीलोत्पल दामवर्णवाली स्त्री ही भीमसेनकी भार्य्या है। यह मगधराज जरासन्धकी पुत्री चम्पक दामकी भांति गौराङ्गी स्त्री ही माद्रीके कनिष्ठपुत्र सहदेवकी भार्य्या है। यह जो इन्दीवरकी भांति श्यामाङ्गी कमलदलके समान विशालनयनी स्त्री पृथ्वीपर बैठी है,

उसी ही माद्रीके जेठे पुत्र नकुलकी भार्य्या जानो। तपाये हुए सुवर्णकी भांति गौरवर्णा पुत्रके सहित यह विराटराजपुत्री युद्धमें विरथ हुए रथस्थ द्रोणादिके द्वारा मरे हुए अभिमन्युकी पत्नी है। इनके अतिरिक्त ये जो सीमन्त समन्वित केशवाली, सफेदवस्त्र पहरे हुए हतपुत्रा तथा अनाथ एक सौ राजरानियें दीखती हैं, वे सब इस वृद्ध राजा धृतराष्ट्रकी पुत्रवधू हैं। हे तपस्वीगण! आप लोग ब्रह्मनिष्ठासे सरलचित्त तथा सतोगुणसम्पन्न हैं, इसलिये आप लोगोंने जिन सब विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न राजरानियोंका परिचय पूंछा था, मैंने उसे यथार्थ रीतिसे आपके समीप कहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय तपस्वियोंके गमन करनेपर कुरुकुलवर्य्य राजा धृतराष्ट्रने उन नरदेवपुत्र पाण्डवोंके सहित समागत होकर कुशलादि पूंछा। अनन्तर योद्धाओंके आश्रममण्डल परित्याग करके निज निज स्थानपर जाने और स्त्री, वृद्ध तथा बालकोंके वाहन परित्याग करके अपने स्थानमें प्रविष्ट होनेपर वह पाण्डवोंसे यथोचित कुशलादि पूंछने लगे।

२५ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर! तुम भ्राता, पुरवासी और जनपदवासियोंके सहित कुशलसे तो हो? हे नरनाथ! तुम्हारे जो सब गुरु, सचिव और सेवकवृन्द तुम्हें अवलम्ब करके जीविका निर्व्वाह किया करते हैं, वे लोग निरामय तथा निरातङ्कसे तुम्हारे राज्यमें निवास करते हैं न? तुम राजर्षियोंसे सेवित धृरातनी वृत्तिमें वर्त्तमान तो हो? तुम न्यायपथको अतिक्रम न करके कोषपूरण और शत्रुमित्र उदासीन लोगोंके निकट समभावसे निवास करते हो न? हे भरतप्रवर! तुम ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट उपचार प्रदान करके यथा समयमें उनके तत्त्वोंका निश्चय करते हो न? वे सब लोग तथा शत्रु, पुरवासियों सेवक और स्वजनवृन्द तुम्हारे स्वभावसे सन्तुष्ट तो हैं? हे राजेन्द्र! तुम श्रद्धायुक्त होकर पितरों, देवताओं और अन्नजलसे अतिथियोंकी पूजा करते हो न? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग तुम्हारे नीतिपथके अनुवर्त्ती होकर अपने अपने कर्म्ममें रत तो रहते हैं? कुटुम्ब, स्त्री, वृद्ध और बालकगण तुम्हारे निकट शोक प्रकाश तथा प्रार्थना तो नहीं करते? हे नरवर राजेन्द्र! तुम्हारे गृहमें स्त्रियें पूजित तो होती हैं? तुम्हारे पृथ्वीपति होनेसे यह राजर्षि वंश तुम्हारे द्वारा यशहीन वा अवसन्न तो नहीं हुआ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब धृतराष्ट्रने ऐसा कहा, तब न्यायवित् वाक्य बोलनेमें कुशल युधिष्ठिर उनसे कुशल प्रश्न संयुक्त वचन कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! आपकी तपस्या, दम और शम बर्द्धित होता है न? मेरी यह कुन्ती माता विश्रान्त शरीरसे आपकी सेवा करती है न? हे नरनाथ! यदि ये आपकी सेवामें रत रहें, तो इनका बनबास सफल होगा। शीतल वायु सेवन और मार्गके श्रमसे कातर घोरतपमें निष्ठा करनेवाली ये जेठी माता गान्धारी देवी उन धर्म्मपरायण मृत पुत्रोंके निमित्त शोक तो नहीं करती? हमलोगोंको पापकर्म्म करनेवाला समझकर सदा हमारी बुराई तो नहीं विचारती? हे राजन्! विदुर कहां हैं। वह यहां क्यों नहीं दीख पड़ते हैं? सञ्जय तपस्यामें रत रहके कुशलसे तो हैं?

श्रीवैम्पायन मुनि बोले, धृतराष्ट्रने जननाथ युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके उनसे कहा, हे पुत्र! विदुर घोर तपस्या अवलम्बन करके कुशलसे हैं, परन्तु वह अन्यान्य खानेकी वस्तुओंका परित्याग करके केवल वायु पान करके इस प्रकार कृशित हुए हैं, कि उनका समस्त शरीर शिराओंसे परिपूरित हुआ है और उस ही

अवस्थामें किसी किसी समय इस सूने जङ्गलमें ब्राह्मणोंके द्वारा वह लक्षित हुआ करते हैं। हे राजन् ! जब धृतराष्ट्र ऐसा कह रहे थे, उस ही समय वह जटाधारी बीटामुख अत्यन्त दुबले, दिगम्बर, मलिन, देह और बनधूलि-धूसरित क्षत्ता विदुर दूरसे उनको दृष्टिगोचर होते ही सहसा आश्रमकी ओर लौटे। नरनाथ युधिष्ठिर घोर अलक्ष्य जङ्गलके बीच प्रविष्ट उस विदुरके पीछे दौड़े ; महाराज 'भो भो विदुर !' मैं तुम्हारा प्रियपात्र राजा युधिष्ठिर हूं,—ऐसा वचन कहते कहते अत्यन्त यत्नके सहित उनके पीछे पीछे दौड़े। तिसके अनन्तर प्राज्ञवर विदुरके उस एकान्त तथा निर्ज्जन बनके बीच किसी एक वृक्षको अवलम्बन करके निवास करनेपर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर आकृति मात्र अवशिष्ट अत्यन्त कृश महाबुद्धियुक्त विदुरके सामने जाकर आगे निवास करते हुए उनकी श्रुतिगोचर होनेके लिये ऊंचे स्वरसे "मैं युधिष्ठिर हूं"—ऐसा कहके उनकी पूजा की। तिसके अनन्तर विदुर समाहित होकर अनिमिष नेत्रसे युधिष्ठिरकी ओर देखकर इकटक दृष्टिसे उन्हें देखने लगे। अनन्तर वह धीमान् विदुर योगबल अवलम्बन करके राजाके शरीरमें निज शरीर, प्राणमें प्राण और इन्द्रियसमूहमें इन्द्रियोंको प्रविष्ट करके प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे, परन्तु राजाने उस समय विदुरके उस वृक्षाश्रित स्तब्धलोचनयुक्त चेतरहित शरीरको देखा और अपनेको अत्यन्त गुणवान तथा बलवान समझा। हे महाबुद्धिमान् ! विद्वान् महातेजस्वी धर्म्मराज पाण्डुपुत्रने व्यासदेवके कहे हुए अपने पुराने योगधर्म्मको स्मरण किया अनन्तर उस समय धर्म्मराजने संस्काराभिलाषी होकर विदुरके शरीरको जलानेकी इच्छा की, तब इस प्रकार देववाणी हुई ;—'हे राजन् ! इस विदुरको मत जलाओ' इस शरीरके इस स्थानमें रहनेसे ही तुम्हें परम धर्म्म होगा। हे परन्तप भारत ! इनको यतिधर्म्मकी प्राप्त होनेसे इन्हें सन्तानिक लोक मिलेगा ; इसलिये इनके निमित्त शोक मत करो।

धर्म्मराजने ऐसा सुनके वहांसे लौटकर विचित्रवीर्य्यपुत्र राजा धृतराष्ट्रके निकट यह समस्त वृत्तान्त वर्णन किया। तिसके अनन्तर द्युतिमान धृतराष्ट्र और भीमसेन प्रभृति सब लोग उस बचनको सुनके अत्यन्त विस्मययुक्त हुए। राजा धृतराष्ट्र विदुरके उस वृत्तान्तको सुनके अत्यन्त प्रसन्न होकर धर्म्मपुत्रसे बोले, कि मेरा यह फल, मूल और जल प्रतिग्रह करो। हे राजन् ! ऐसा शास्त्रमें कहा है, कि मनुष्य जैसा अर्थ भोग करता है उसके अतिथियोंको भी वही अर्थ भोगना होता है। धर्म्मराज धृतराष्ट्रका ऐसा बचन सुनके बोले, कि "आपने जो कहा, वही होवे"; इतनी बात कहके भाइयोंके सहित धृतराष्ट्रके दिये हुए फल मूल भोजन किया। अनन्तर उन लोगोंने वृक्षमूलमें बास करते हुए वह रात्रि व्यतीत की।

२६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत ! अनन्तर पुण्यकर्म्मा पाण्डवोंने उस आश्रममें धर्म्मार्थ लक्षणयुक्त विचित्र पद तथा अनेक श्रुतियुक्त विविध कथा कहते कहते मङ्गलसूचक नक्षत्रोंसे युक्त रात्रि व्यतीत की। हे नरनाथ ! उस समय पाण्डवोंने महामूल्यवान शय्या परित्याग करके कुन्तीके चारों ओर पृथ्वीपर शयन किया। उस रात्रिमें महामना राजा धृतराष्ट्रने जो आहार किया नरवीर पाण्डवोंने भी उस समय वही भोजन किया। रात बीतनेपर भोरको राजा युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित पूर्व्वाह्निक क्रिया पूरी करके आश्रममण्डलका दर्शन किया ; अनन्तर धर्म्मराज धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार अन्तःपुरके परिवार, सेवकों तथा पुरोहितके सहित सुखपूर्व्वक वहांके सब स्थान

और प्रज्वलित अग्निसम्पन्न तथा मुनियोंके द्वारा होमकी अग्निसे उपासित वेदियोंको देखने लगे। वे सब वेदी वनके पुष्पों तथा आज्य रससे परिव्याप्त तथा मुनियोंके ब्राह्म शरीरकी शोभासे शोभित होरही हैं। हे प्रभु! उन स्थानोंमें मृगोंके समूहोंके अनुद्विग्न तथा अशङ्कित चित्तसे निवास करने और विविध पक्षियोंके मनोहर बोली बोलनेसे मानो सङ्गीत होता हुआ बोध होने लगा। कोई कोई स्थान नीलकण्ठवाले मयूरोंकी केकाध्वनि, दात्यूहोंका कूजना, कोकिलोंका सुखंकर श्रुति मनोहर कूकना, वेदपाठी ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि और अत्यन्त उत्कृष्ट फलमूलोंसे सुशोभित होरहे हैं।

हे राजन! तिसके अनन्तर पृथ्वीपति राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके निमित्त समाहृत सुवर्णके कलश, उडुम्बर, अजिन, चित्रकम्बल, स्रुक्, स्रुवा, कमण्डलु, स्थाली, पिठपात्र, लोहमय भाजन तथा अन्यान्य विविध पात्र उन लोगोंको प्रदान किया। धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने बहुतसा धन बांटते तथा इस ही प्रकार आश्रमोंमें परिभ्रमण करके लौटकर नित्यकर्म्म किये तथा अव्यग्रचित्तसे गान्धारीके सहित बैठे हुए राजा धृतराष्ट्र और उनके निकटमें शिष्यकी भांति प्रणतभावसे स्थित शिष्टाचारयुक्त कुन्तीमाताको देखा। युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्रको अपना नाम सुनाकर पूजा करते हुए बैठनेकी आज्ञा पाकर यतियोंके आसनपर बैठे। हे भरतप्रवर! भीमसेन प्रभृति पाण्डवगण राजाका पांव छूके प्रणाम करनेके अनन्तर उनकी आज्ञानुसार बैठ गये, कुरुराज धृतराष्ट्र ब्राह्मी श्री धारण करते हुए पाण्डवोंके बीच घिरकर उस समय देवताओंसे घिरे हुए बृहस्पतिकी भांति शोभित हुए। उन लोगोंके बैठनेके अनन्तर कुरुक्षेत्रनिवासी शतयूप प्रभृति महर्षिवृन्द उस स्थानमें आये। देवर्षियोंसे सेवित महातेजस्वी भगवान् व्यासदेव शिष्योंसे घिरके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको देखनेके लिये वहां आये; कुरुपति कुन्तीपुत्र वीर्य्यवान राजा युधिष्ठिर और भीमसेन आदि सब लोगोंने उठके उन्हें प्रणाम किया।

तिसके अनन्तर व्यास मुनिने शतयूप आदि ऋषियोंसे घिरकर वहां आके पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको बैठनेके लिये कहा; उस समय व्यासदेवने अपने लिये उपकल्पित उत्तम कुशासन, कृष्णाजिन और कुशोत्तर पाया। विपुल तेजस्वी द्विजवरगण द्वैपायन मुनिकी आज्ञा पाके चारों ओर कुशाकी चटाईपर बैठ गये।

२७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महात्मा पाण्डवोंके बैठनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासदेव बोले, हे महाबाहो धृतराष्ट्र! तुम्हारा तप बर्द्धित होता है न? हे नरनाथ! वनवाससे तुम्हारा मन प्रसन्न तो है? हे अनघ महाराज! तुम्हारे हृदयमें पुत्रविनाशजनित शोक तो नहीं विद्यमान है? तुम्हारा ज्ञाननिवह सुप्रसन्न हुआ है न? तुम बुद्धिको दृढ़ करके अरण्यविधिका आचरण करते हो न? वधू गान्धारी शोकसे अभिभूत तो नहीं होती? महाप्राज्ञ बुद्धिमती धर्म्मार्थदर्शिनी आगम और अपायोंकी तत्त्वोंको जाननेवाली यह गान्धारी देवी शोक तो नहीं करती? हे राजन्! जो अपने पुत्रोंको त्यागके गुरुसेवामें रत हुई है, वह कुन्ती अहङ्काररहित होकर तुम्हारी सेवा करती है? हे नरनाथ! तुमने महामना महात्मा धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवको ढाढ़स दिया है न? इन लोगोंको देखके तुम्हारा चित्त निर्म्मल तथा आनन्दित हुआ है न? और ज्ञान उदय होनेसे शुद्धचित्त हुआ है न? हे महाराज! सब भूतोंमें जितने गुण हैं, उनमेंसे निर्व्वैरता, सत्य और अक्रोध, येही तीनों मुख्य हैं।

हे भारत! इसलिये बनवाससे तुम्हें मोह तो नहीं हुआ? क्यों अपने वशमें रहनेसे वन्य अन्न अथवा उपवास ही हुआ करता है। हे राजेन्द्र! महात्मा विदुरका विषय तुम्हें विदित है? इसही विधानसे महात्मा धर्म्मका गमन हुआ करता है, धर्म्मही माण्डव्यके शापसे विदुरत्वको प्राप्त हुए हैं, वह महाबुद्धि महा-योगी सुमहामना महात्मा पुरुषप्रवर विदुर जिस प्रकार बुद्धिसम्पन्न हैं, देवताओंके बीच बृहस्पति और असुरोंके बीच शुक्र भी वैसे बुद्धिसम्पन्न नहीं हैं, उस समय सनातन धर्म्म बहुत दिनोंके उपार्ज्जित तपबलको व्यय करके माण्डव्य ऋषिके द्वारा अभिशप्त हुए थे।

वही महाबुद्धिमान् पहले ब्रह्माकी आज्ञा-नुसार निज तेज और बलसे मेरे द्वारा विचित्र-वीर्य्यके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए थे। हे महाराज! पण्डित लोग जिसे धर्म्म कहके जानते हैं, तुम्हारे भ्राता वह महाबुद्धिमान् विदुर मनके द्वारा ध्यान तथा धारणासे सनातन देवदेवस्वरूप हुए थे; वह सनातन पुरुषश्रेष्ठ तपस्या करते हुए सत्य, शम, अहिंसा, दम दानके सहारे वर्द्धित हुए थे। स्वयं धर्म्मरूपी कुरुराज युधि-ष्ठिरने योगबलसे उस अमितबुद्धि प्राज्ञ विदुरके सहित जन्म लिया है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशकी भांति धर्म्म इस लोक तथा परलोकमें सदा निवास करता है। हे राजेन्द्र! वह सर्व्वग है, इसीसे सब चराचरोंमें व्याप्त होकर निवास करता है, निष्पाप सिद्ध तथा देवगण ही उसका दर्शन किया करते हैं। हे राजन्! जो धर्म्म, वेही विदुर हैं और जो विदुर, वेही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर निकट हैं, मैं देखता हूं, कि वह पाण्डुका पुत्र युधिष्ठिर दासकी भांति आपके निवास करता है, यही वह विदुर है। तुम्हारे भाई वह महात्मा बुद्धिसत्तम विदुर महात्मा कुन्तीपुत्रको देखकर महायोगबलसे इन्हींमें प्रविष्ट हुए हैं। हे भरतश्रेष्ठ! तुम भी शीघ्र कल्याण लाभ करोगे, इसीलिये तुम्हारा सन्देह छुड़ानेके निमित्त मैं तुम्हारे समीप आया हूं; हे महीपाल! पहले जगतके बीच किसी महर्षिके द्वारा जो कार्य्य सम्पादित नहीं हुए, मैं उस तपस्याके आश्चर्य्यभूत फलको तुम्हें दिखा-ऊंगा। हे अनघ! तुम मेरे समीप कौनसी वस्तु पाने अथवा कौनसे विषयको देखने, सुनने वा जाननेकी इच्छा करते हो, वह मुझसे कहो, मैं उसे ही करूंगा।

२८ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे विप्र! नृपवर महीपति धृतराष्ट्रके निज भार्य्या गान्धारी तथा बधू कुन्तीके सहित बनमें जाने सिद्ध विदुरके धर्म्मराजमें प्रविष्ट होने और पाण्डुपुत्रोंके आश्रम मण्डलमें वास करते रहनेपर उस समय जो आश्चर्य्य व्यापार हुआ था और परम तेजस्वी महर्षि व्यासदेवने जो ऐसा कहा था, कि 'तुम्हारा इष्ट साधन करूंगा,' वह सब मेरे निकट विस्तारपू-र्व्वक कहिये। हे प्रभु पापरहित! कुरुवंशमें उत्पन्न हुए नरनाथ युधिष्ठिरने उस बनके बीच कितने समयतक बास किया था? और वे महात्मा लोग उस अन्तःपुरवासियों और सेनाके सहित वहां बास करते हुए क्या भोजन करते थे, वह आप मुझसे कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! उस समय पाण्डवलोगोंने कुरुराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाके अनेक प्रकारके अन्न और पीनेकी वस्तु भोजन की। हे अनघ! उन लोगोंके उस बनमें सेना तथा अन्तःपुरवासियोंके सहित एक महीनेतक विहार करनेपर वहांपर व्यासदेव आये यह मैंने तुम्हारे समीप यथार्थ कहा है। हे राजन्! वे लोग राजाके निकट व्यासदेवके पीछे बैठके वार्त्तालाप करने लगे; तब नारद, पर्व्वत, महातपस्वी देवल, विश्वावसु, तुम्बुरु और चित्रसेन प्रभृति अन्यान्य मुनियोंने वहां

आगमन किया। महातपस्वी कुरुराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार उन समागत ऋषियोंकी पूजा की।

तिसके अनन्तर वे लोग युधिष्ठिरके निकट पूजा पाके उत्तम पवित्र मयूरासनपर बैठे। हे कुरुद्वह! मुनियोंके बैठनेके अनन्तर महाबुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र पाण्डुपुत्रोंके बीच घिरके बैठे; उनके पीछे गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सात्वतकुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा तथा अन्यान्य स्त्रियां अपर स्त्रियोंके सहित वहां बैठीं। हे नृपवर! वहांपर प्राचीन ऋषि तथा उन लोगोंमें देवासुर सम्वलित धर्मसंयुक्त दिव्य कथा होने लगी। अनन्तर कथाकी समाप्ति होनेपर वेद जाननेवाले पुरुषोंमें मुख्य वाग्मिवर महातेजस्वी व्यासदेव अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रज्ञाचक्षु नरेन्द्र धृतराष्ट्रसे फिर कहने लगे। हे राजेन्द्र! पुत्रवियोगजनित शोकसे जलनेपर तुम्हारे हृदयमें जो भाव उदित हुए हैं, मैंने उसे समझा है। हे महाराज! गान्धारीके हृदयमें सदा जो दुःख निवास करता है, कुन्ती और द्रौपदीके भीतर जो सदा विद्यमान है तथा कृष्णकी बहिन सुभद्रा पुत्र विनाशजनित जिस तीव्र दुःखको मनके बीच धारण करती है, वह सब मुझे विदित हुआ है। हे नरनाथ! इस स्थानमें तुम लोगोंका समागम सुनके सन्देह छुड़ानेके निमित्त मैं आया हूं। ये देव, गन्धर्व और महर्षिगण आज मेरे चिरसञ्चित तपस्याके प्रभावको देखें। हे महाराज! तुम्हारी क्या कामना है, वह मुझसे कहो, मैं वही तुम्हें प्रदान करता हूं; मेरी तपस्याका फल देखो, मैं वरदान करनेके लिये प्रस्तुत हुआ हूं।

उस नरेन्द्र धृतराष्ट्रने अमितबुद्धि व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके मुहूर्त्तभर सोचके निज अभिप्राय प्रकाश करना आरम्भ किया। धृतराष्ट्र बोले, मैं धन्य हूं! क्यों कि आपके द्वारा अनुग्रहीत हुआ; आज मेरा जीना सफल भया, क्यों कि आज साधुओं तथा आपके सङ्ग मेरा समागम हुआ। हे तपोधनगण! आज ब्रह्मकल्प आप लोगोंके सहित मेरा समागम होनेसे मुझे इस लोकमें ही निज अभिलाषित गति प्राप्त हुई। हे अनघगण! आप लोगोंके दर्शनसे मैं निश्चय ही पवित्र हुआ; परलोकसे अब मुझे भय न रहा; परन्तु मेरे पुत्रवत्सल होनेसे उन दुर्बुद्धि मूढ़ पुत्रोंकी दुर्नीतियोंको स्मरण करते हुए मेरा अन्तःकरण अत्यन्त व्यथित होता है। जिस पापबुद्धि दुर्योधनके द्वारा पापरहित पाण्डुपुत्रगण निराकृत और हाथी घोड़ोंसे युक्त यह पृथ्वी तथा अनेक जनपद वासी महात्मा राजा लोग मारे गये; उस मन्दभाग्य पुत्रोंके निमित्त ही मेरा हृदय विशीर्ण होता है। हे ब्रह्मन्! जिन लोगोंने मेरे पुत्रोंके निमित्त पिता, माता, पत्नी, प्राण और मनके प्रियपुत्रोंको परित्याग कर युद्धके लिये आकर मित्रके निमित्त मृत्युके वशमें होकर प्रेतराजके स्थानमें गमन किया है, उन लोगोंकी क्या गति हुई? मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंके बीच जो लोग महाबलवान शान्तनुपुत्र बूढ़े भीष्म और द्विजसत्तम! द्रोणाचार्य्यके युद्धमें संहार करके मरे हैं, उनके निमित्त मेरा चित्त अत्यन्त सन्तप्त होता है। पृथ्वीभरके राज्यका अभिलाषी सुहृद्द्वेषी पापात्मा उस मूढ़पुत्रके द्वारा यह प्रदीप्त कुल नष्ट हुआ; दिन रात इन्हीं विषयोंको स्मरण करते हुए दुःख और शोकसे समाहत तथा जलके मैं शान्तिलाभ नहीं कर सकता हूं। हे पिता! यह विषय सर्व्वदा मेरे स्मृतिपथारूढ़ होनेसे मुझे तनिक भी शान्ति लाभ नहीं होती है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! उस राजर्षि धृतराष्ट्रका वैसा विविध परिदेवित सुनके गान्धारी, कुन्ती, द्रुपदराजपुत्री द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य नरनारियों तथा वधूगणोंका शोक फिर नवीन होगया। परन्तु

पुत्रशोकयुक्त बड़नेत्रवाली गान्धारी उठके हाथ जोड़कर निज श्वशुर व्यासदेवसे बोली, हे मुनि-पुङ्गव ! आज सोलह वर्ष व्यतीत हुआ, मरे हुए पुत्रोंके शोक इस नरनाथको तनिक भी शान्ति नहीं होती है । हे विभु ! पुत्रशोकयुक्त यह भूपति धृतराष्ट्र सदा लम्बी सांस छोड़ते हुए सारी रात बिताते हैं, एक बार भी शयन नहीं करते । हे महामुनि ! आप तपबलसे दूसरे लोकोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, परन्तु इस राजाके परलोकमें गये हुए पुत्रोंको क्या दिखा सकेंगे ? पुत्रबधुओंके बीच अत्यन्त प्रिय जाति तथा पुत्रोंसे रहित यह कृष्णा द्रौपदी अत्यन्त शोक करती है । उत्तम वचन कहने-वाली कृष्णकी बहिन भाविनी यह सुभद्रा अभि-मन्युके बधसे अत्यन्त सन्तप्त होकर बहुत ही शोकार्त्त हुई है ; यह भूरिश्रवाकी भार्य्या स्वामीके मरनेसे शोकार्त्ता होकर अत्यन्त शोक करती है । बुद्धिमान वाह्लिक जिसके श्वशुर हैं, वेही कुरुकुलोद्वह सोमदत्त पिताके सहित महासंग्राममें मरे हैं । हे महामुनि ! संग्राममें न भागनेवाले महाबुद्धिमान श्रीमान् तुम्हारे इस पुत्रके जो एक सौ पुत्र युद्धमें मारे गये, उनकी ये एक सौ भार्य्या दुःख तथा शोकसे समाहत होकर बार बार मेरे तथा राजाके शोकको बढ़ाती हैं और वे सब उस शोकार्त्त-चित्तसे ही मेरी सेवा करती हैं । हे प्रभु ! सोमदत्त प्रभृति जो सब महारथ महात्माओंने शूरवर मेरे श्वशुर-कुलको नष्ट किया है, उनकी क्या गति हुई ? हे भगवन् ! ये महीपति मैं और आपकी बधू कुन्ती जिस प्रकार आपकी कृपासे शोकरहित होवें, आप वैसाही करिये । गान्धारीके ऐसा कहनेपर नियम और व्रतादिसे कृश शरीरवाली कुन्तीने आदित्यसदृश गुप्त रीतिसे उत्पन्न भये उस पुत्रको स्मरण किया । दूर श्रवणदर्शी ऋषिवर वरदाता व्यास-देवने सव्यसाचीकी माता उस दुःखिता कुन्ती देवीकी ओर देखा । तिसके अनन्तर श्रीवेदव्यास मुनि उससे बोले, हे महाभागे ! तुम्हारे मनके बीच जो विषय उपस्थित हुआ है, वह तुम मुझसे कहो । तब कुन्ती सिर नीचा करके श्वशुरको प्रणामकर लज्जापूर्व्वक पुराना वृत्तान्त विस्तारके सहित कहने लगी ।

२९ अध्याय समाप्त ।

कुन्ती बोली, हे भगवन् ! आप श्वशुर और देवताके देवता हैं, आपही हमारे देवाधिदेव हैं ; इसलिये मैं आपके समीप सत्य वचन कहती हूं, सुनिये ।

एकबार क्रुद्धस्वभाववाले परम तपस्वी द्विज-वर दुर्वासा भिक्षा तथा भोजनके निमित्त मेरे पिताके निकट उपस्थित हुए, तब मैंने सेवासे उन्हें सन्तुष्ट किया । मेरे शौच, त्याग निरप-राध तथा शुद्धचित्त सम्पन्न होकर सेवा करने-पर उन्होंने क्रोधके कार्य्यमें भी कोप नहीं किया । बल्कि उस महामुनिने मुझसे परम प्रसन्न और कृतकृत्य होकर वर देनेके लिये उद्यत होकर कहा, कि तुम्हारा वचन अवश्य स्वीकार्य्य है । तिसके अनन्तर मैंने शापभयसे उस विप्रसे फिर विनयवाक्यसे वर मांगा, तब उन्होंने कहा, 'ऐसा ही होगा' । इतनी बात कहके वह फिर मुझसे बोले, हे भद्रे शुभानने ! तू धर्म्मकी जननी होगी और तुम जिन देवता-ओंको आह्वान करोगी, वेही तुम्हारे वशमें होजायंगे । उस विप्रवरके इतनी बात कहके अन्तर्द्धान होनेपर मैं अत्यन्त विस्मित हुई ; मेरी स्मरणशक्ति सब अवस्थामें ही समभावसे रहती है, कदापि लुप्त नहीं होती ; कुछ दिनके अन-न्तर मैं कोठेपर निवास करती हुई उदय हुए सूर्य्यको देखकर ऋषिके वचनको स्मरण करके दिवाकरकी अभिलाष की ; उस समय बाल्य-स्वभावसे मैं उस विषयमें दोष न समझ सकी । अनन्तर सहस्रांशु सूर्य्यदेव निज शरीरको दो

हिस्से में विभक्त करके आकाश और भूमण्डलमें स्थापित करते हुए मेरे निकट आये। वह एक अंशसे सब लोकोंको ताप प्रदान करते हुए दूसरे अंशसे मेरे समीप आके मुझे कांपती हुई देखके बोले, वर ग्रहण करो; मैंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके कहा, आप मेरे समीपसे चले जाइये। उस सूर्यने मेरे वचनको न मानके मुझसे कहा, तुमने जिस लिये मुझे आह्वान किया है, वह वृथा न होगा। यदि मुझे प्रत्याख्यात होना पड़े, तो जिसने तुम्हें वर दिया है, मैं उस ब्राह्मणको और तुम्हें भस्म करूंगा। मैंने सूर्यका ऐसा वचन सुनके उस उपकारी ब्राह्मणको शापसे बचाके कहा, हे देव! मेरे तुम्हारे सदृश पुत्र हो, आप मुझे यही वर दीजिये। तिसके अनन्तर सूर्य निजतेजके सहारे मुझमें प्रविष्ट होके मुझे मोहित करते हुए बोले, कि तुम्हारे मेरे समान पुत्र होगा, ऐसा कहके वह स्वर्गमें चले गये। तिसके अनन्तर मैं उस वृत्तान्तको गोपनकर पिताके अन्तःपुरमें जाके गूढ़ोत्पन्न बालक कर्णको जलमें परित्याग किया। हे विप्र! उस ऋषिने जैसा कहा था, निश्चय ही मैं उस देवके प्रसादसे फिर कन्या होगई। हे विप्रर्षि! मैंने मूढ़ होकर जानके जो पुत्रके विषयमें उपेक्षाकी थी, वही आज मुझे जलाता है, यह मैंने आपके निकट यथार्थ कहा। हे भगवन्! इसमें चाहे पाप हो वा पुण्य हो, मैंने आपके निकट विस्तारके सहित कहा; परन्तु उस पुत्रको देखनेके लिये मुझे जो इच्छा हुई है, आप कृपा करके उसे पूरण करिये। हे अनघ मुनिसत्तम! इस राजाके हृदयका जो भाव है, वह आपको विदित है, ये जो कामना करते हैं, उसे आज ही प्राप्त करें, यही हमारी अभिलाष है।

वेदविदाम्वर व्यासदेव कुन्तीका ऐसा वचन सुनके बोले, कि तुमने मुझसे जो कहा, वह सत्य है वह सब उत्तम रीतिसे सम्पन्न होगा। तुम्हारा कुछ अपराध नहीं; क्यों कि तुम्हें कन्याभाव प्राप्त हुआ है। देवगण निज ऐश्वर्य्यवलसे शरीरमें प्रवेश किया करते हैं, देवताश्रित पुरुष सङ्कल्प वाक्य दृष्टि, स्पर्श और संहर्ष,— इस पांच प्रकारसे जीव उत्पन्न कर सकते हैं। हे कुन्ती! तुम यह निश्चय जानना, कि मनुष्य धर्म्ममें विद्यमान रहनेपर भी तुम्हें कदापि मोह न होगा; मैं कहता हूं, कि तुम्हारी सब मानसिक पीड़ा दूर होगी। देखो बलवान पुरुषोंका सभी हितकर, सभी पवित्र और सभी धर्म्म हुआ करता है।

३० अध्याय समाप्त।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे भद्रे गान्धारी! तुम रातमें सोके उठे हुए लोगोंकी भांति, पुत्र, भाई, सखा पितृवर्गके सहित बान्धवोंको देखोगी, कुन्ती कर्णको, यदुकुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा अभिमन्युको और द्रौपदी अपने पांचो पुत्रों, पिता तथा भाइयोंको देखेगी। हे महाराज! तुम और पृथाने मुझसे जो कहा है, वह विषय पहले ही मेरे अन्तःकरणमें उदित हुआ था; वे महात्मा राजा लोग क्षत्रधर्म्म परायण होके युद्धमें मरनेसे वे किसीके भी शोचनीय नहीं हैं, हे अनिन्दिते! वह सुरकार्य्य अवश्यम्भाव्य था, इसीसे वे सब कोई देवअंशके सहारे पृथ्वीमें जन्मे थे। वेही मनुष्य रूपी गन्धर्व्व, अप्सरा, पिशाच, गुह्य, राक्षस, पुण्यजन, सिद्धदेवर्षि, देव, दानव तथा निर्म्मल देवर्षिवृन्द उस कुरुक्षेत्रके युद्धमें मरे हैं, ये जो धीमान् धृतराष्ट्र हैं, ये पहले गन्धर्व्वराज थे, वेही गन्धर्व्वराज मनुष्य लोकमें धृतराष्ट्ररूपसे जन्म लेकर तुम्हारे पति हुए हैं। विशिष्टतम अच्युत पाण्डु मरुद्गणसे उत्पन्न हुए थे और क्षत्ता विदुर तथा राजा युधिष्ठिर धर्म्मके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। हे शुभदर्शने! दुर्य्योधन कलि, शकुनि द्वापर और दुःशासन प्रभृतिको राक्षस जानो। हे शोभने! कर्णको रुत्ताप दाता प्रवर

द्विधाकृत विग्रह लोकतापन सूर्य्य समझो। बलवान अरिदमन भीमसेन मरुद्गण, पृथापुत्र धनञ्जय नर हृषीकेश नारायण और यमजको अश्विनी कुमाररूपी जानना। जो सबको हर्षित करनेवाला पार्थका पुत्र छः महारथोंके द्वारा मारा गया है, उस सुभद्रापुत्र अभिमन्युको योगबलसे दो शरीर धारण किये हुए चन्द्रमा जानो। अग्निसे द्रौपदीके सहित उत्पन्न हुए, धृष्ट-द्युम्नको अग्निका अंश और शिखण्डीको राक्षस जानो। द्रोणको वृहस्पतिका अंश, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको रुद्रका अंश और गङ्गानन्दन भीष्मको मनुष्यरूपी वसु कहके मालूम करो।

हे महाप्राज्ञ शोभने! ये देववृन्द इसही प्रकार मनुष्यत्व प्राप्त करके निज निज कार्य्योंको पूरा करते हुए फिर सुरपुरमें गये हैं। सबके हृदयमें जो यह दुःख सदा रहता है, उसे आज परलोककृत भयसे दूर करूंगा! तुम सब कोई भागीरथी नदीमें जाओ, जो लोग इस रणभूमिमें मरे हैं, वे सब कोई वहांपर तुम लोगोंको दीख पड़ेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय सब लोगोंने व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके महासिंह-नाद करते हुए गङ्गाद्वारमें गमन किया। धृत-राष्ट्रने मन्त्रियों, समागत गन्धर्व्वों, मुनियों तथा पाण्डवोंके सहित गमन किया। तिसके अनन्तर सब लोगोंके गङ्गाद्वारमें जाने तथा प्रीतिपूर्व्वक सुखसे वहां स्थित होनेपर बूढ़े राजा धीमान् धृतराष्ट्रने स्त्रियों, पाण्डवों और सेवकोंके सहित वहां जाके अभिलषित स्थानमें निवास किया। वे लोग मरे हुए राजाओंको देखनेकी इच्छासे रात्रिके समागमकी प्रतीक्षा करने लगे, वह दिन उन लोगोंको एक सौ वर्षके समान मालूम होने लगा। अनन्तर सूर्य्यके पवित्र अस्तमय गिरिवरमें जानेपर वे सब लोग अभिषिक्त कार्य्यको पूरा करके रात्रिके कार्य्य करने लगे।

३१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर रात्रिका समय उपस्थित होनेपर वे सब कोई सायं सन्ध्या करके व्यासदेवके निकट गये। उस समय धर्म्मात्मा पवित्र और एकाग्र चित्तसे पाण्डवों तथा ऋषियोंके सहित बैठे; गान्धारीके सहित सब स्त्रियां, पौर तथा जनपदवासी लोग अवस्थाके अनुसार क्रमसे बैठ गये। अनन्तर महातेजस्वी महामुनि व्यासदेवने जलमें स्नान करते हुए कुरुपाण्डवोंकी मृत सेना तथा अनेक देशनिवासी महाभाग राजाओंको आह्वान किया। हे जनमेजय! तिसके अनन्तर जलके बीच कुरुपाण्डवोंकी सेनाका पहिलेकी भांति तुमुल शब्द उत्पन्न हुआ; अनन्तर वे राजालोग भीष्म और द्रोणके सहित सेनाके सङ्ग उस जलसे उठे। सेना और पुत्रके सहित विराट, द्रुपद, द्रुपदके पुत्र, सुभद्रानन्दन अभिमन्यु, घटोत्कच, राक्षस, कर्ण, दुर्य्योधन, महारथ, शकुनि, दुःशासन प्रभृति महाबली धृतराष्ट्रके सब पुत्र, जरासन्धका पुत्र, भगदत्त, वीर्य्यवान जलसन्ध, भूरिश्रवा, शल, शल्य, भाइयोंके सहित वृषसेन, राजपुत्र लक्ष्मण, धृष्टद्युम्ननन्दन, शिखण्डीके पुत्र, भाइयोंके सहित धृष्टकेतु, अचल, वृषक, अलायुध, राक्षस, वाह्लिक, सोमदत्त, राजा चेकितान, बहुतायतके कारण सबके नाम नहीं कहे गये; इनके सहित दूसरे बहुतेरे लोग दिव्य प्रकाशमान शरीर धारण करके जलसे प्रकट हुए। जिस वीरका जैसा वेष तथा जैसा वाहन था, राजालोग उस ही वेष तथा वाहनसे युक्त होकर सबके दृष्टिगोचर हुए। सब कोई दिव्य वस्त्र, प्रकाशमान कुण्डल तथा माला धारण करते हुए वैर, अहङ्कार, क्रोध और मत्सररहित होकर अप्सरा तथा वन्दि-गन्धर्व्वोंके गीतके सहारे स्तुतियुक्त होने लगे। हे नरनाथ! उस समय सत्यवतीपुत्र मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवने परम प्रसन्न होकर धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्रदान किया। दिव्य ज्ञानबलसे युक्त यश-

स्विनी गान्धारी युद्धमें मरे हुए पुत्रोंको देखने लगी; वे सब कोई अत्यन्त विस्मित होकर इक-टक नेत्रसे उस रोएंको खड़ा करनेवाले अचिन्त्य अद्भुत व्यापार देखने लगे। अत्यन्त उत्कृष्ट प्रहृष्ट नर नारियोंसेयुक्त आश्चर्य्यमय वह उत्सव चित्रपटकी भांति सबके दृष्टिगोचर हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! धृतराष्ट्र महामुनि व्यासदेवकी कृपासे दिव्य नेत्रके सहारे उन लोगोंको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

३२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर वे पुरुषश्रेष्ठगण क्रोध, मत्सरता और पापरहित होके परस्पर मिले। वे लोग सुरलोकमें समागत देवताओंकी भांति प्रहृष्ट होकर ब्रह्मर्षि-विहित परम पवित्र विधि अवलम्बन करके पुत्र पिता तथा माताके सहित भार्य्या पतिके सङ्ग, भ्राता भ्रातृभावसे और मित्र मित्रके सङ्ग मिले। परन्तु पाण्डव लोग अत्यन्त हर्षके सहित महाधनुर्द्धारी कर्ण, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रोंके निकट गये। हे महीपाल! उन लोगोंने कर्णके सङ्ग मिलके परम प्रीति अनुभव करते हुए सुहृदताके सहित एकत्र निवास किया। हे भरतप्रवर! मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवकी कृपासे वे सब क्षत्रिय योद्धा लोग आपसमें मिलके मन्युअसुहृदता परित्याग करके सुहृद-तापूर्व्वक एकत्र स्थित हुए। पुरुषश्रेष्ठ कौरवों तथा अन्यान्य राजाओंने परस्पर पुत्र और बान्धवोंके सङ्ग मिलके प्रसन्नचित्तसे परितोषके सहित इस ही प्रकार उस रात्रिको विहार करते हुए इन्द्रकी भांति सुख अनुभव किया। हे भरतर्षभ! योद्धाओंके परस्पर एकत्रित होनेसे उस समय उन लोगोंमें शोक, भय, त्रास, दुःख तथा अयश कुछ भी न रहा; इसके अति-रिक्त वे सब स्त्रियां पिता, भाई, पति तथा पुत्रके सहित समागत होकर परम हर्षपूर्व्वक एक बारगी दुःखरहित हुईं। वे सब वीरगण तथा स्त्रियें इस ही प्रकार एक रात्रि विहार करके परस्पर आमन्त्रण तथा आलिङ्गन कर-नेके अनन्तर वीर लोग जिस स्थानसे आये थे, वहां चले गये। अनन्तर मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवने जब उन समागत लोगोंको विदा किया, तो वे लोग सबके सामने ही क्षणभरके बीच अन्तर्द्धान होगये। वे महात्मा लोग पुण्य देनेवाली भागी-रथी नदीमें स्नान करके ध्वजायुक्त रथोंमें चढ़-कर अपने अपने स्थानपर गये; उनके बीच किसीने सुरलोक किसीने ब्रह्मलोक किसीने कुबेर लोक और किसीने यमलोकमें गमन किया। राक्षसों तथा पिशाचोंके बीच कोई महात्मा वाहनोंके द्वारा और कोई पांवके सहारे ही विचित्र चालसे उत्तर कुरुदेशमें गये। उन सब लोगोंके जानेके अनन्तर कुरुकु-लके हितैषी धर्म्मशील महातेजस्वी वेदव्यासमुनि जलमें निवास करते हुए पतिहीन क्षत्रिय स्त्रियोंसे बोले, कि जिन स्त्रियोंकी पतिलोकमें जानेकी इच्छा है, वे शीघ्र ही अतन्द्रित होकर इस गङ्गाजलमें स्नान करें।

तिसके अनन्तर वे स्त्रियें श्रीवेदव्यास मुनिका वचन सुनके श्रद्धायुक्त होकर श्वशुरको अपना अभिप्राय सुनाके शीघ्र ही देवनदी गङ्गाके जलमें प्रविष्ट हुईं। हे पृथ्वीनाथ! उस समय वे साध्वी स्त्रियें मानुष शरीर छोड़के स्वामीके सङ्ग जा मिलीं; उन शीलवती पतिव्रता क्षत्रियास्त्रियोंने इस ही प्रकार गङ्गाजीमें प्रवेश करके शरीर छोड़कर स्वामीकी सलोकता पाई। उनके पतिका जैसा रूप, आभूषण, माला और वस्त्र था, उन्होंने भी वैसा ही रूप, आभरण, माला और वस्त्र धारण किया। वे शीलगुणसम्पन्न सर्व्वगुणयुक्त स्त्रियें विमानमें निवास करती हुई श्रमविहीन होकर निज निज स्थानमें गईं। उस समय जिसकी जैसी कामना हुई थी, वर-दाता व्यासदेवने उनकी वह कामना पूरी की।

अनेक देशोंके समागत पुरुषगण देवताओंके पुनरागमन वृत्तान्तको सुनके अत्यन्त हर्षित तथा आनन्दित हुए; जो लोग उन लोगोंका प्रियसमागम पूरी रीतिसे सुनते हैं, वे इसलोक और परलोकमें सदा प्रियलाभ किया करते हैं। जो धार्म्मिकवर बिद्वान् मनुष्य इस अनामय इष्ट बान्धवसंयोगको अनायास ही सुनाते हैं, उन्हें इसलोक तथा परलोकमें यश वा शुभ गति प्राप्त हुआ करती है। हे भारत! जो धृतिवान् मनुष्य इस अत्याश्चर्य पर्व्वको सुनते हैं, वे लोग स्वाध्याय, तपस्या, सदाचार, दानयुक्त निष्पाप, सरल, पवित्र, शान्तचित्त, हिंसा और असत्यसे रहित, आस्तिक तथा श्रद्धावान् होकर परम गतिको प्राप्त हुआ करते हैं।

३३ अध्याय समाप्त।

सौति बोले, बिद्वान् राजा जनमेजय पितामहोंका इस प्रकार गमनागमन वृत्तान्त सुनके अत्यन्त आनन्दित होकर पुनरागमनका विवरण पूछते हुए बोले, शरीर छोड़े हुए पुरुषोंका फिर उस प्रकार दीख पड़ना कैसे सम्भव हुआ? प्रतापशाली द्विजवर व्यासशिष्य ऐसा प्रश्न सुनके नरनाथ जनमेजयसे कहने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! ऐसा निश्चय है, कि समस्त कर्म्म अविनाशी हैं, उन कर्म्मोंसे जीवोंके शरीर तथा आकृतिसमूह उत्पन्न हुआ करता है। महाभूतोंका नित्य भूताधिपतिके संयोग निबन्धनसे उनका नित्य संवास होता है; परन्तु उनके पृथक् होनेपर भी उनका बिनाश नहीं होता; कर्म्म अनायास साध्य है, उसका फलागम सत्य प्रवान है, इस ही लिये आत्मा कर्म्मफलसे युक्त होकर सुख दुःख भोग किया करता है। ऐसा निश्चय है, कि क्षेत्रज्ञ अविनाशी होनेपर भी नश्वर प्राणियोंमें युक्त रहता है, इसका अविच्छेद ही प्राणियोंका आत्मीयभाव है; जबतक कर्म्म क्षय नहीं होता, तबतक क्षेत्रज्ञकी स्वरूपता रहती है; इस लोकमें मनुष्य क्षीणकर्म्मा होनेसे रूपान्तर प्राप्त हुआ करता है। समस्त स्वभावको संहत होकर एकत्व वा एक शरीर प्राप्त करके पृथक् भावज्ञ पुरुषोंके निकट नित्य रूपसे निवास करते हैं। अश्वमेधमें घोड़ा मारनेके बिषयमें ऐसी जनश्रुति है, कि जीवोंका प्राण नित्य लोकान्तरमें गमन करता है। हे पृथ्वीपति! मैं आपसे यह हितकर प्रियवचन कहता हूं, सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि तुम्हारे यज्ञके समयमें सब मार्ग देवताओंके गमन करनेसे रुद्ध हुए थे। जिस स्थानमें आपने यज्ञ किया, देवताओंने वहां आके तुम्हारे हितकी चेष्टा की थी। जब देवता लोग यज्ञमें एकत्र होके पशुओंको गमन करनेकी आज्ञा करते हैं, तभी वे गमन करनेमें प्रवृत्त होते हैं; यज्ञमें बिना प्रदत्त हुए वे नित्य नहीं होते। जो पुरुष इस नित्य पञ्चतत्त्व अर्थात् पांचों महाभूतों तथा नित्य आत्मामें जीवका अनेक समयोग देखता है, वह वृथामति और बियोगसे अत्यन्त शोकार्त्त होता है, उस पुरुषको मेरे मतमें बालक समझना चाहिये। जो पुरुष बियोगमें दोषदर्शी होता है, वही संयोग परिवर्ज्जन करता है और जिसको असङ्गमें आसक्ति नहीं होती; उसे ही पृथिवीमें बियोग जनित महादुःख हुआ करता है। जो पुरुष अभिमानरहित है, वही परावरज्ञ होता है और अपरज्ञ पुरुषको परम बुद्धिका बोध होनेपर उसे मोहसे छुटकारा मिलता है। अदर्शनके लिये ही वे अदृश्य हुए हैं, इस ही निमित्त मैं उन्हें नहीं जानता, वे भी मुझे नहीं जानते; उसमें मुझे वैराग्य नहीं है। किन्तु यह अनीश्वर मनुष्य जिस जिस शरीरसे जो जो कार्य्य करता है, उस ही उस शरीरसे उसे उन फलोंको भोगना होता है, मानसिक कार्य्य मनसे और शारीरिक कर्म्म शरीरके द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं।

३४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुद्वह! नरनाथ धृतराष्ट्रने पुत्रोंको न देखनेपर ऋषिकी कृपासे निज निज रूपधारी पुत्रोंको फिर देखा। पुरुषश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रको ऋषिकी कृपासे राजधर्म्म, ब्रह्मोपनिषद और बुद्धिनिश्चय प्राप्त हुआ; महाप्राज्ञ विदुरने तपोबलसे और धृतराष्ट्रने तपस्वी व्यासदेवकी कृपासे सिद्धि पाई।

जनमेजय बोले, यदि वरदाता व्यासदेव मुझे वैसे रूप, वेष तथा अवस्थायुक्त मेरे पिताका दर्शन करा सकें, तो मैं आपकी सब बातोंका विश्वास करूं। उस ऋषिश्रेष्ठकी कृपासे मेरे पिताका दर्शन होनेपर मैं परम प्रसन्न, कृतार्थ और कृतनिश्चय हूंगा तथा मेरी चिरकामना परिपूर्ण होगी।

सौति बोले, उस नरनाथ जनमेजयके ऐसा कहनेपर धीमान् प्रतापवान वेदव्यास मुनिने परीक्षितको बुलाया। तिसके अनन्तर राजा जनमेजयने वैसे ही रूप, वेष और अवस्थायुक्त सुरलोकसे आये हुए श्रीमान् पिता, महात्मा शमीक, उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि तथा राजा परीक्षितको मन्त्रियोंके सहित देखा। अनन्तर उन्होंने अत्यन्त आनन्दित होके यज्ञके अन्तमें पिताको स्नान कराके स्वयं स्नान किया। उस समय राजा जनमेजय स्नान करके यायावरकुलमें उत्पन्न जरत्कारुपुत्र द्विजश्रेष्ठ आस्तिक मुनिसे बोले, हे आस्तिक! मेरा यह यज्ञ अत्यन्त आश्चर्यजनक बोध हुआ, क्यों कि आज मेरे शोकनाशक पिता समागत हुए।

आस्तीक मुनि बोले, हे कुरुश्रेष्ठ! तपोनिधि पुराण ऋषि द्वैपायन मुनि जिसके यज्ञमें अधिष्ठित होते हैं, उसके दोनों लोक जीत हुआ करते हैं। हे पाण्डवनन्दन! आपने विचित्र आख्यान सुना, सांपोंको जलाया और पिताको पदवीको प्राप्त हुए। हे महाराज! तक्षक आपके सत्यसे किसी प्रकार छूट गया, ऋषियोंकी पूजित होनेसे महात्माओंकी गति देखी गई, इस पापविनाशी आख्यानको सुननेसे विपुल धर्म्म प्राप्त हुआ और उदार लोगोंके दर्शनसे हृदयकी ग्रन्थि छूट गई। जो लोग धर्म्मके पक्षपाती सद्वृत्त रुचिसम्पन्न हैं तथा जिनके दर्शनसे पापका नाश होता है, उन्हें नमस्कार है।

सौति बोले, राजा जनमेजयने द्विजश्रेष्ठ वैशम्पायन मुनिके समीप यह सब सुनके उस ऋषिको बार बार सम्मानित करके पूजा की। अनन्तर धर्म्मज्ञसत्तम जनमेजयने ऋषिवर अच्युत वैशम्पायनसे वनवासकी कथाका शेष वृत्तान्त पूछा।

३५ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, जननाथ धृतराष्ट्रने पुत्रों, राजा युधिष्ठिर तथा आत्मीयजनोंको देखकर अन्तमें क्या किया?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह राजर्षि धृतराष्ट्र पुत्रदर्शनरूपी उस महान् आश्चर्य व्यापारको देखकर शोकरहित होके फिर आश्रममें आये। साधारण लोग और परमर्षिवृन्द धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार यथाभिलषित स्थानमें चले गये। महात्मा पाण्डवोंने स्त्रियोंको सङ्ग लेकर सेनाके सहित महात्मा पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्रके निकट फिर गमन किया। लोकपूजित ब्रह्मर्षि सत्यवतीपुत्र मुनिश्रेष्ठ व्यासदेव उस आश्रममें आके धृतराष्ट्रसे कहने लगे। हे कुरुनन्दन महाबाहो धृतराष्ट्र! तुमने ज्ञानवृद्ध पुण्यकर्म्म करनेवाले पूजनीय अभिजनगणोंके बीच वृद्ध, वेद वेदाङ्ग जाननेवाले धर्म्मज्ञ पुरातन ऋषियोंकी विविध कथा और देवर्षि नारद मुनिके समीप देवरहस्य सुना है; इसलिये अब शोकमें मन न लगाना, क्यों कि विद्वान् पुरुष दैवनिर्बन्धमें व्यथित नहीं होते। तुमने पुत्रोंको जिस प्रकार देखा, वे लोग क्षत्रधर्म्मके अनुसार शस्त्रपूत शुभ गति पाके उसी प्रकार इच्छानुसार विहार किया करते हैं। ये धीमान् युधिष्ठिर भाइयों और सुहृज्जनोंके सहित तुमसे अनुरोध करते

हैं, तुम इन्हें बिदा करो ; ये तुम्हारे समीपसे बिदा होके निज राज्यमें जाके राज्य शासन करें ; इन लोगोंने एक महीनेसे अधिक बनमें बास किया है। हे नरनाथ! अत्यन्त यत्नके सहित सदा राज्यकी रक्षाही राजर्षियोंका धर्म्म है; क्योंकि राजा लोग प्रत्यर्थगणोंसे सदा आक्रान्त हुआ करते हैं। कुरुराज बाग्मी धृतराष्ट्र अमिततेजस्वी बेदव्यासमुनिका ऐसा बचन सुनके युधिष्ठिरको आह्वान करके कहने लगे। हे अजातशत्रो! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम भाइयोंके सहित मेरा बचन सुनो। हे महीपाल! तुम्हारी कृपासे अब शोक मुझे बाधित नहीं कर सकता। हे पुत्र! पहिले तुम्हें हस्तिनापुरके प्रभु तथा प्रिय विषयमें सब प्रकारसे बर्त्तमान जानके मैंने तुम्हारे अनुगत होकर जैसे तुम्हारे सङ्ग सुखभोग किया था, इस समय भी उस ही प्रकार सुखी हुआ। हे वत्स! मुझे तुमसे पुत्रफल प्राप्त हुआ, तुममें मेरी परम प्रीति रही, तुम्हारे विषयमें मुझे तनिक भी क्रोध नहीं है; इसलिये तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे इस स्थानमें सदा रहनेसे तुम्हें देखकर मेरी तपस्या नष्ट होती है; तुम्हारा तपयुक्त शरीर देखकर मेरा मन तुममें लीन हुआ है। मेरे समान ये तुम्हारी दोनों माता बहुत समयसे सूखे पत्ते भोजन करती हुई ब्रत नियममें बर्त्तमान हैं। व्यास मुनिके तपोबलसे और तुम्हारे समागमसे वे परलोकमें गये हुए दुर्य्योधन प्रभृति पुत्र तथा बान्धवगण दीख पड़े। हे अनघ! मेरे जीवनका प्रयोजन निवृत्त हुआ है; अब तुम आज्ञा करो मैं उग्र तपस्या अवलम्बन करूंगा। हे पुत्र! आज पितृपिण्ड, कीर्त्ति तथा यह कुरुकुल तुममें प्रतिष्ठित हुआ। हे महाबाहो! इसलिये आज वा कल गमन करो बिलम्ब मत करो। हे भरतर्षभ! तुमने बहुतसी नीति सुनी है, इसलिये तुम्हारे विषयमें मैं अपना कुछ भी बक्तव्य नहीं देखता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर नरनाथ युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे धर्म्मज्ञ! मैं निरपराध हूं, इसलिये मुझे परित्याग करना आपको उचित नहीं है। मेरे भाई और सेवक लोग इच्छानुसार जावें, परन्तु मैं संयत वा ब्रतनिष्ठ होकर कुन्ती तथा गान्धारी माता और आपका अनुगमन करूंगा। अनन्तर गान्धारी युधिष्ठिरका ऐसा बचन सुनके बोली, हे पुत्र! तुम ऐसा मत करो, मेरा बचन सुनो; यह कुरुकुल तथा मेरे श्वशुरका पिण्ड तुम्हारे अधीन हुआ है। हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा हम लोगोंकी यथेष्ट सेवा हुई है, महाराज जो बचन कहते हैं, वह तुम्हें प्रतिपालन करना उचित है; प्रियवाक्यको अतिक्रम करना पुत्रका कार्य्य नहीं है, इसलिये तुम शीघ्र जाओ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरने गान्धारीका ऐसा बचन सुनके प्रीतिपूर्व्वक बाष्प-परिपूर्ण दोनों नेत्रोंसे आंसू बहाते हुए रोती हुई कुन्ती देवीसे यह बचन बोले, हे माता! राजा और यशस्विनी गान्धारी मुझे परित्याग करती है, परन्तु मेरा चित्त तुममें बद्ध रहनेसे मैं दुःखित होकर किस प्रकार गमन करूं? हे धर्म्मचारिणी! मैं तुम्हारी तपस्यामें विघ्न करनेके लिये उत्साहित नहीं होता, क्योंकि तपस्यासे महत् फल प्राप्त हुआ करता है, इसलिये तपस्याके तुल्य और कुछ भी नहीं है, हे रानी! पहिलेकी भांति राज्यमें मेरा वैसा अनुराग नहीं होता है, मेरा मन इस समय सब प्रकारसे तपस्यामें अनुरक्त हुआ है। हे शुभे! पहिलेकी भांति मेरे पास बस्तुबल नहीं है, इस समय यह समस्त पृथ्वीमण्डल सूना होनेसे मुझे प्रीतिकर नहीं होता है। पाञ्चालगण सब प्रकारसे नष्ट हुए, अब केवल कथा मात्र शेष हैं, उनका कर्त्ता किसीको भी नहीं देखता, वे सब कोई द्रोणाचार्य्यके द्वारा संग्राममें

भस्म होगये हैं, जो लोग शेष थे, उन्हें द्रोण-पुत्र अश्वत्थामाने रात्रिके समय मार डाला। मैं बिना अर्थके केवल धर्म्मार्थ जिन्हें देखकर रहनेकी इच्छा करता हूं, हम लोगोंके पहले देखे हुए उन चेदी और मत्स्यवंशीय लोगोंके बीच केवल वृष्णिवंशके श्रीकृष्णकी कृपासे अवशिष्ट है। आप मुझे शुभनेत्रसे देखो, तुम्हारा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है; राजा अत्यन्त तीव्र अविसम्ह तपस्या आरम्भ करेंगे।

यूथपति महाबाहु सहदेव इतनी बात सुनके आंखोंमें आंसू भरके युधिष्ठिरसे बोले, हे भरतर्षभ! मैं माताको छोड़के न जा सकूंगा, आप शीघ्र जाइये। हे विभु! मैं भी तपस्या करते हुए तपोबलसे इस स्थानमें शरीर सुखाऊंगा और राजा धृतराष्ट्र कुन्ती तथा गान्धारी माताकी चरणसेवामें अनुरक्त रहूंगा।

तिसके अनन्तर कुन्ती महाभुज सहदेवको गोदीमें लेकर बोली, हे पुत्र! तुम मेरे वचनको प्रतिपालन करके जाओ। हे पुत्रगण! तुम लोगोंका आगमन सफल तथा शुभ होवे और तुम लोग रोग रहित रहो; हम लोगोंके तपस्याके विषयमें यह बाधा होती है, कि यदि तुम लोग इस स्थानमें निवास करोगे, तो तुम्हारे स्नेहपाशमें बद्ध होकर तपस्यासे भ्रष्ट होना होगा। हे पुत्र! इसलिये तुम जाओ, हम लोगोंकी तपस्यामें अब थोड़ा ही शेष है।

हे राजेन्द्र! कुन्तीके इस ही प्रकार बहुतसे वचन सुनके राजा युधिष्ठिर और सहदेवका मन स्तम्भित हुआ, वे कुरुपुङ्गवगण निज माता कुन्तीके द्वारा गमन करनेकी आज्ञा पाके कुरुराज धृतराष्ट्रको प्रणाम करके आमन्त्रण करने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! आप मङ्गल-दाता हैं, जब आपके द्वारा हम लोग अनुज्ञात और अभिनन्दित हुए, तब निर्व्विघ्नताके सहित राज्यमें जायेंगे? राजर्षि धृतराष्ट्रने महात्मा धर्म्मराजके ऐसा पूछनेपर, उन्हें अभिनन्दित करते हुए जानेके लिये अनुमति दी। अनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन, अर्ज्जुन तथा यमज नकुल-सहदेवके धीरज देके आश्वासित करते हुए आलिङ्गन तथा अभिनन्दन करके जानेके निमित्त आज्ञा की। पाण्डव लोग गान्धारीसे आज्ञा पाके तथा कुन्ती माताके द्वारा मस्तक सूंघे जानेपर उन्हें प्रणाम करते हुए निवारित बछड़ोंकी भांति प्रदक्षिणापूर्व्वक बार बार देखते हुए प्रदक्षिणा करने लगे।

द्रौपदी प्रभृति कुरु-स्त्रियें न्यायपूर्व्वक श्वशुर धृतराष्ट्रको प्रणामादि करके सास गान्धारी तथा कुन्तीसे अनुज्ञात होके आलिङ्गन पूर्व्वक अभिनन्दित और कर्त्तव्य विषयोंको आज्ञा पाके अपने अपने स्वामीके सङ्ग चलीं। उस समय 'वाहनोंको जोतो' इस प्रकार सूतोंका चिल्लाना, ऊंटोंका बलबलाना और घोड़ोंका हिनहिनाना शब्द प्रकट हुआ। तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर बन्धुजनों और सैनिक लोगोंके सहित फिर हस्तिना नगरमें आये।

३६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके निकटसे हस्तिनापुर जानेपर दो वर्षके अनन्तर एकबार देवर्षि नारद मुनि इच्छानुसार युधिष्ठिरके निकट आये। नारद मुनि कुरुराज महाबाहु युधिष्ठिरके द्वारा पूजित होकर बैठे, तब वाग्मिवर धर्म्मराजने उनसे विश्रब्धभावसे कहा; हे विप्रवर! मैंने आपको बहुत समयसे यहां आते नहीं देखा, इस समय आप कुशल हैं न? हे द्विजवर! आपने कितने देश देखे हैं? कहिये इस समय मुझे तुम्हारा कौनसा मङ्गल कार्य्य करना होगा? आप हम लोगोंकी परम गति हैं।

नारद मुनि बोले, हे नरनाथ! मैं गङ्गाप्रभृति तीर्थोंका दर्शन करके बहुत समयतक तुमसे भेंट न होनेके कारण तपोवनसे आता हूं।

युधिष्ठिर बोले, आज गङ्गातीरनिवासी पुरुषोंने मुझसे परम तपोनिष्ठ महात्मा धृतराष्ट्रका सम्वाद कहा है; परन्तु क्या आपने वहां कुरुराज, गान्धारी, पृथा तथा सूतपुत्र सञ्जयको कुशली देखा है? हे भगवन्! यदि आपने उस मेरे पिता पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको देखा है, तो वह इस समय कैसी अवस्थामें निवास करते हैं? इस विषयको मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

नारद मुनि बोले, हे महाराज! मैंने उस तपोबनमें जो देखा और सुना है, उसे यथार्थ रीतिसे आपके समीप कहता हूं, आप स्थिर होकर सुनिये। हे कुरुनन्दन! आप लोगोंके बनवाससे निवृत्त होनेपर आपके पिता धृतराष्ट्र गान्धारी, कुन्ती और सूत सञ्जयने अग्निहोत्रके सहित कुरुक्षेत्रसे गङ्गाद्वारमें गमन किया। तब आपके तपस्वी पिताने मौनावलम्बन करके मुखमें बीटा अर्थात् गुलिका स्थापन करके वायुभक्षी होकर तीव्र तपस्या आरम्भ की थी। वह महातपस्वी इस ही प्रकार उत्तम कठोर तपस्या करते हुए बनके बीच मुनियोंसे पूजित हुए और छः महीनेके बीच उनकी त्वचा तथा हड्डी मात्र शेष रह गई। हे भारत! गान्धारी जलाहार, कुन्ती एक महीनेतक उपवास और सञ्जय छठवें भागमें भोजन करके प्राण धारण करने लगे। हे प्रभु! वहां याजकगण उस नरनाथके सामने विधानपूर्व्वक अग्निमें आहुति देने लगे। अनन्तर राजाको आश्रम छोड़के बनकी ओर जाते देखकर गान्धारी और कुन्ती देवी तथा सञ्जय उनके अनुगामी हुए। हे महाराज! सञ्जय नरपतिकी सम तथा विषम स्थानमें ले जानेके लिये नायक और अनिन्दिता पृथा गान्धारीको नेत्रस्वरूप हुई।

तिसके अनन्तर नृपसत्तम धृतराष्ट्रने गङ्गाके किसी तटपर जाकर आश्रमकी ओर मुह करके स्नान किया। अन्तमें महावायु प्रकट होनेसे उस बनमें दावाग्नि उत्पन्न हुई, उस दावाग्निने उस बनको चारों ओरसे घेरकर सब जला दिया; हरिनोंके झुण्ड और सांपोंके जलने तथा बाराहोंके जलमें घुसनेपर उस बनके नष्ट होनेसे जब अत्यन्त व्यसन उपस्थित हुआ, तब राजा उपवाससे मन्दप्राण तथा चेष्टाहीन होगये और तुम्हारी माता कुन्ती तथा गान्धारी उनके निकट जानेमें असमर्थ हुई। अनन्तर राजाने अग्निको निकट आते देखकर विजयिप्रवर सूतपुत्र सञ्जयसे यह वचन कहा, हे सञ्जय! जिस स्थानमें अग्नि है, तुम वहां जाओ, यह अग्नि तुम्हें कदापि भस्म न करेगी। हम लोगोंको इस ही स्थानमें अग्निसे ग्रहीत होनेसे परम गति प्राप्त होगी। वाग्मिवर सञ्जय व्याकुल होके उनसे बोले, हे महाराज! इस वृथा अग्निमें आपकी मृत्यु होनेसे वह इष्टकर न होगी, परन्तु अग्निसे बचनेका उपाय भी नहीं देखता हूं; इसके अनन्तर जो कुछ करना हो, आप उसके लिये आज्ञा करिये।

राजा धृतराष्ट्र सञ्जयका ऐसा बचन सुनके फिर उनसे बोले, हे सञ्जय! जब हम लोग गृहसे बाहिर हुए हैं, तब यह मृत्यु हमारे लिये अनिष्टकर न होगी। जल, वायु, अग्नि और योगबलसे प्राणवायुका आकर्षण,—ये सब मृत्युके विषय तपस्वियोंके लिये श्रेष्ठ हैं; इसलिये तुम देरी मत करो, शीघ्र जाओ। राजा ऐसा कहके योगयुक्त चित्तसे गान्धारी और कुन्तीके सहित पूर्व्व मुख होकर बैठे।

मेधावी सञ्जयने धृतराष्ट्रको योगमें चित्त लगाते देखकर उनको प्रदक्षिणा करके कहा, हे प्रभु! आप आत्माको युक्त करिये। ऋषिपुत्र मनीषी राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयका ऐसा बचन सुनके इन्द्रियोंको पूरी रीतिसे रुद्ध करके काष्ठकी भांति निवास किया। अनन्तर महाभागा गान्धारी, तुम्हारी माता, कुन्ती और राजा धृतराष्ट्र दावाग्निके सहित संयुक्त हुए; महामन्त्री सञ्जय उस दावानलसे छूटे। मैंने

देखा, कि तेजस्वी सञ्जयने गङ्गाके तटपर तपस्वियोंसे घिरके उन्हें आमन्त्रण करके सब वृत्तान्त सुनाकर हिमालय पर्व्वतपर गमन किया। हे विशाम्पते! महामना कुरुराज, गान्धारी और कुन्तीकी इसही प्रकार मृत्यु हुई है। हे भारत! मैंने इच्छानुसार घूमते हुए राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती देवीका शरीर देखा।

तिसके अनन्तर तपस्वी ऋषियोंने आके राजाकी वैसी निष्ठा सुनके शोक न किया। हे पुरुषसत्तम! मैंने वहां यह सब वृत्तान्त सुना। हे पाण्डव! राजा, गान्धारीदेवी और कुन्ती,—ये लोग जिस प्रकार जले हैं; वह तुम्हारे शोकका विषय नहीं है, क्यों कि तुम्हारी माता और गान्धारीको अग्नि प्राप्त हुई है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! महात्मापाण्डव लोग धृतराष्ट्रकी मृत्युका समाचार सुनके अत्यन्त शोकार्त्त हुए, राजाकी गति सुनके अन्तःपुर और पुरवासियोंके बीच महान् आर्त्तनाद प्रकट हुआ। इधर युधिष्ठिर भीमसेन प्रभृति भाइयोंके सहित अत्यन्त दुःखसे 'अहो धिक्!' ऐसा वचन कहके दोनों भुजाओंको उठाकर ऊंचे स्वरसे रोदन करने लगे। हे महाराज! पृथा की मृत्युका सम्वाद सुनके रनिवासमें महान्‌रोदनध्वनि प्रकट हुई; इतपुत्र वृद्ध नरनाथ धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीका उस प्रकार जलना सुनके सब कोई शोक करने लगे। हे भारत! मुहूर्त्त भरके बीच वह शब्द निवृत्त हुआ, धर्म्मराज धैर्य्यके सहारे आंसू रोकके कहने लगे।

३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे ब्रह्मन्! हम सब बन्धुबान्धवोंके रहते उस उग्र तपस्यामें रत महात्मा धृतराष्ट्रकी अनाथकी भांति मृत्यु हुई। जब वह विचित्रवीर्य्य पुत्र दावानलमें जले हैं, तब मैंने निश्चय जाना, कि पुरुषकी गति दुर्व्विज्ञेय है। जिसके बाहुबलशाली एक सौ पुत्र हुए थे, वेही अयुत हाथियोंके सदृश बलशाली राजा धृतराष्ट्र दावानलमें भस्म हुए। जिनके समीप मुख्य मुख्य स्त्रियें तालका वेना लेकर सञ्चालन करती थीं, इस समय दावाग्निसे परिगृहीत उस पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको गृद्धगण बीजन करने लगे। हाय! जो उत्तम, शय्यापर सोके प्रतिदिन भोरको सूत और मागधोंके द्वारा जागते थे, आज वेही राजा मुझ पापात्माके कार्य्य दोषसे पृथ्वीपर सोये। मैं उस पतिव्रतमें रत रहनेवाली पतिलोकमें गई हुई हतपुत्रा यशस्विनी गान्धारीके निमित्त शोक नहीं करता; किन्तु जिसने समृद्धिशाली पुत्रोंके प्रदीप्त ऐश्वर्य्यको परित्याग करके वनवासकी अभिलाष की थी, उस पृथाके निमित्त ही मुझे अत्यन्त शोक उपस्थित होता है। हम लोगोंके राज्यबल, पराक्रम और क्षत्रधर्म्मको धिक्कार है और हम लोग जो मरके फिर जीवित हुए, उसे भी धिक्कार है। हे द्विजवरोत्तम! कालकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है, क्यों कि राजा धृतराष्ट्र, राज्यको परित्याग करके वनवासके अभिलाषी हुए थे। पृथा युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्ज्जुनकी जननी होकर अनाथाकी भांति किस निमित्त जली! इसकी चिन्ता करके मैं विमोहित होता हूं; सव्यसाचीने खाण्डव वनमें अनर्थक अग्निको तृप्त किया था, क्यों कि उपकारको स्वीकार न करनेसे मुझे बोध होता है, कि अग्नि कृतघ्न है। हे भगवन्! जो वनके बीच भिक्षार्थी ब्राह्मणके रूपसे निकट जाके सव्यसाचीकी माता पृथाको जलाया है, उस अग्नि भगवान् और पार्थकी सत्यसन्धताको धिक्कार है; क्यों कि यह सबसे बढ़के मुझे कष्टकर बोध होता है। राजर्षि तपस्वी पृथ्वीनाथ कुरुपतिको जो अग्निसंयोग हुआ, वह वृथा है, उस महावनमें उनके मन्त्रयुक्त अग्निके विद्यमान रहते ऐसी मृत्यु क्यों हुई? मुझे बोध

होता है, कि पिताका तेसे अग्निके सहित संयोग होनेसे ही निष्ठा लाभ हुई है और वह अत्यन्त दुबली शिराओंसे व्याप्त पृथा महाभयसे कांपती हा तात धर्म्मराज ! ऐसा कहके रोती हुई तथा 'हे भीम ! भयसे रक्षा करो' ऐसा कहके अवसन्न होकर दावाग्निके द्वारा चारों ओरसे व्याप्त हुई है ; उसके सब पुत्रोंसे अधिक प्रिय वीरश्रेष्ठ माद्रीपुत्र सहदेव उसे अग्निसे बचा न सके ।

पाचों पाण्डव ऐसी बात सुनके सब कोई परस्परको आलिङ्गन करते हुए प्रलयकालके प्राणियोंकी भांति रोदन करने लगे । उन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंके रोदन करते रहनेपर उनके रोनेकाशब्द मन्दिरके परिसर प्रदेशमें परिव्याप्त होनेसे मानो गगन मण्डलके सहित उस प्रासादके स्थान रोदन करने लगे ।

३८ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले, हे भारत ! मैंने उस बनमें जैसा सुना है, वही तुमसे कहूंगा, उसमें अन्यथा न होगी । मैंने सुना कि, वह विचित्रवीर्य्यपुत्र नरनाथ धृतराष्ट्र वृथाग्निमें नहीं जले । हे भरतसत्तम ! मैंने ऐसा सुना है, कि उस धीमान् नरनाथने वायु भक्षणपूर्व्वक बनमें प्रवेश करते हुए यज्ञ कराके अग्निको परित्याग किया ; अनन्तर याजकवृन्द निर्ज्जन बनके बीच उनकी उस अग्निको बिसर्ज्जन करके अभिलषित स्थानमें गये । तपस्वियोंने इस प्रकार कहा, कि उस समय उस अग्निने बनके बीच अत्यन्त बढ़ित होकर उस जङ्गलको प्रदीप्त किया । हे भरतप्रवर ! उसके अनन्तर राजा गाङ्गागीके तटपर उस अग्निके सहित संयुक्त हुए । हे युधिष्ठिर ! गङ्गाजीके तटपर मैंने जिन मुनियोंका दर्शन किया, उन्होंने मुझसे यह सब वृत्तान्त कहा है । हे पृथ्वीनाथ ! जब कि राजा इस प्रकार निज अग्निके सहित संयुक्त हुए हैं, तब उन्होंने निश्चय ही परम गति प्राप्त की है, उनके लिये आप शोक न करिये । हे जननाथ ! आपकी माताने भी गुरुसेवासे महती सिद्धि पाई है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । हे राजेन्द्र ! इस समय आप भाइयोंके सहित उन लोगोंकी विधिपूर्व्वक जल क्रिया पूरी करिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरश्रेष्ठ ! उसके अनन्तर वह पाण्डवधुरन्धर पृथ्वीपति युधिष्ठिर भाइयों और स्त्रियोंके सहित नगरसे बाहिर हुए ; पुरवासियों और जनपदवासियोंने राजभक्ति दिखाते हुए एकवस्त्रसे संवृत्त होकर उन लोगोंको घेरकर गङ्गाकी ओर गमन किया । तिसके बाद उन नरपुङ्गवोंने गङ्गाजलमें स्नान कर युयुत्सुको आगे करके महात्मा धृतराष्ट्रको जल प्रदान किया, फिर गान्धारी और पृथाके नाम गोत्रका उच्चारण करके विधिपूर्व्वक शौचकार्य्य निर्व्वाहित करते हुए नगरके बाहिरी भागमें निवास किया । पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर जहां धृतराष्ट्र जले थे, उस गङ्गाद्वारमें विधिज्ञ आप्तकारी मनुष्योंको भेजा ; पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने उन पुरुषोंको गङ्गाद्वारमें ही उनके कर्त्तव्य कार्य्योंको करनेके लिये आज्ञा करी ।

अनन्तर पाण्डुपुत्र नरनाथ युधिष्ठिरने द्वादशाहमें शौचादिसे निवृत्त होकर उन लोगोंका विधिविहित दक्षिणायुक्त श्राद्ध दान किया । उन्होंने धृतराष्ट्रके उद्देश्यसे सोना, रूपा, गऊ और महामूल्यवान शय्या प्रदान की, फिर पृथक् रीतिसे गान्धारी और पृथाके नामसे सब प्रकारके उत्तम बस्त्र दान किये ? उस समय शय्या भोजनपात्र, यान, मणि, रत्न, धन प्रभृति जो जो जिसे इच्छा हुई, उसने वही पाई, इतनाही नहीं बरन राजा युधिष्ठिरने गान्धारी और पृथा माताके उद्देश्यसे यान, ओढ़नेके बस्त्र, विविध भोग्यवस्तु तथा अलङ्कारयुक्त दासी प्रभृति प्रदान की ।

फिर उन्होंने पिता-माताके उद्देश्यसे बहुतसी श्राद्धीय बस्तु दान करके हस्तिनानगरमें प्रवेश किया । राजाकी आज्ञासे जो लोग धृत-

राष्ट्रादिके संस्कारके निमित्त गये थे, वे उनकी हड्डियोंको एकत्रित करके फिर लौट आये, तब युधिष्ठिरने विविध माला और सुगन्धिसे बिधिपूर्व्वक पूजा करते हुए उसी गङ्गाके सहित संयुक्त करनेके लिये कहा।

हे राजन् ! परमर्षि नारदने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको आश्वासित करके अभिलषित स्थानमें गमन किया। संग्राममें हतपुत्र, ज्ञाति, सम्बन्धी, मित्र, भ्राता और स्वजनोंको सदा धन देनेवाले धीमान् धृतराष्ट्रका इस ही प्रकार नगरमें पन्द्रह बर्ष और बनबासमें तीन बर्ष बीता था। उस समय युधिष्ठिर ज्ञाति-बान्धवोंके मरनेसे राज्य पाके भी प्रसन्नचित्त न हुए। पुरुष समाहित होकर आश्रमवासिक पर्व्वमें ब्राह्मणोंको गन्धमालासे पूजा करके हबिष्य भोजन करावे।

आश्रमवासिक पर्व्व समाप्त।

महाभारत।
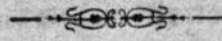
मौषल पर्व्व।

नारायण, नरोत्तम, नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवनन्दन युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर छत्तीसवें वर्षके प्रारम्भमें ही अनेक प्रकारका अशकुन देखा। कङ्कड़से युक्त रूखा वायु शब्दके सहित बहने लगा, पक्षी-वृन्द अपसव्य मण्डलमें भ्रमण करने लगे। सब महानदियें सूख गईं और सब दिशा कुहासेसे परिपूरित हुईं, अङ्गार वर्षा उल्का समूह आकाशमण्डलसे पृथ्वीपरगिरने लगी, हे महाराज! सूर्य्य किरण रहित हुए और उनका मण्डल धूलि धूसरित तथा कबन्धोंसे परिपूर्ण दिखाई देनेलगा, चन्द्र और सूर्य्य मण्डलमें श्याम, अरुण और भस्म सदृश त्रिवर्ग रूच परिवेश दीखने लगा। हे महाराज! हृदयको व्याकुल करनेवाले तथा भयसूचक इस ही प्रकार और भी अनेक उत्पात दीखनेपर किसी दिन कुरुराज युधिष्ठिरने सुना, कि वृष्णि वंशीय लोग सब कोई मूषलयुद्धमें बिनष्ट हुए हैं और राम तथा कृष्णने देह त्याग किया है। पाण्डुनन्दन इतनी बात सुनते ही भाइयोंको बुलाकर बोले;—'ब्रह्मशापसे वृष्णिवंशीय लोग परस्पर युद्ध करके सब कोई बिनष्ट हुए हैं, इसलिये हम लोगोंको इस समय क्या करना चाहिये?' उसे सुनके पाण्डुकेपुत्र अत्यन्त व्यथित हुए; परन्तु समुद्र सूखनेकी भांति बलदेव और श्रीकृष्णकेमरनेको असम्भव समझकेपहले किसीने विश्वास नहीं किया। अनन्तर मौषलयुद्ध विषयक सब सम्वाद सुनके दुःख तथा शोकसे अभिभूत विषण्ण तथा हत-सङ्कल्प होकर बैठ गये।

जनमेजय बोले, हे भगवन्! अन्धक, वृष्णि और महारथ भोजवंशीगण श्रीकृष्णके सामने किस प्रकार बिनष्ट हुए? आप यह सब मेरे समीप प्रकाश करके कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरको राज्य मिलनेपर छत्तीसवें वर्षमें वृष्णिवंशियोंके बीच बहुत ही दुर्नीति उपस्थित होनेसे वे लोग एरकामें लगे हुए मूषल-कणके द्वारा परस्परको मारके बिनष्ट हुए हैं।

जनमेजय बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! वृष्णि, अन्धक और भोजवंशीय लोगोंका किसके शापसे इस प्रकार नाश हुआ? आप वह सब मेरे निकट विस्तारपूर्व्वक कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, एक समय सारण प्रभृति बीरगण विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारद मुनिको द्वारका नगरीमें आया हुआ देख कर साम्बको स्त्रीकी भांति सज्जित करके मानो काल प्रेरित होके ही ऋषियोंके निकट जाकर बोले,—"हे ब्रह्मर्षिगण! पुत्राभिलाषी अमित तेजस्वी यह बभ्रुकी भार्य्या क्या प्रसव करेगी, उसे आप लोग उत्तम रीतिसे गिनके देखिये।" हे महाराज! महर्षि वृन्द ऐसा सुनके वृष्णिवंशियोंके वञ्चना वाक्यसे अत्यन्त ही रुष्ट हुए और जो प्रत्युत्तर दिया, उसे सुनिये। उन लोगोंने

कहा, यह श्रीकृष्णका पुत्र शाम्ब वृष्णि और अन्धकोंके विनाशके निमित्त एक घोर आयस मूषल प्रसव करेगा, तुम लोग अत्यन्त दुर्वृत्त, गर्व्वित और नृशंस हुए हो; इसलिये तुम लोगोंके दोषसे ही राम कृष्णको छोड़के सारा यदुकुल विनष्ट होगा। श्रीमान् हलधर समुद्रमें प्रवेश करके शरीर छोड़ेंगे और जरा नाम कोई कैवर्त्त पृथ्वीपर सोये हुए महात्मा कृष्णको विद्ध करेगा। हे नरनाथ! दुःस्वभाव यादवोंके द्वारा प्रतारित वे मुनिगण क्रोधसे लाल नेत्र करके परस्पर एक दूसरेको अवलोकन करते हुए इतनी बात कहके, पीछे केशव क्रुद्ध हों, इस भयसे मनके बीच उनका ध्यान करने लगे। अनागत विषयोंके जाननेवाले बुद्धिमान् मधुसूदन भी यह सब वृत्तान्त सुनके वृष्णिवंशियोंसे बोले, कि मुनियोंने जैसा कहा है, वैसाही होगा। अनन्तर उस जगत्प्रभु हृषिकेशने जो कालवशसे हुआ है, उसे अन्यथा करनेमें अनभिलाषी होकर पुरके बीच प्रवेश किया। दूसरे दिन सबेरे शाम्बने उस मूषलको प्रसव किया, जिसके द्वारा वृष्णि और अंधकवंशीय पुरुषोंका नाश हुआ। हे महाराज! तिसके अनन्तर वृष्णि और अन्धकोंके विनाशका मूल, मुनिशापके प्रभावसे शाम्बके द्वारा प्रसव हुए उस यमदूत-सदृश महत् मूषलका विषय राजा उग्रसेनके समीप सुनानेपर उन्होंने दुःखी होकर उसका मिहीन चूर्ण कराया और यदुवंशियोंने वह सब चूर्ण समुद्रमें फेंक दिया। तिसके अनन्तर उन लोगोंने महात्मा जनार्द्दन, राम, बभ्रु और आहुकके वचनानुसार नगरमें इस प्रकार ढिंढोरा दिलाया, कि आजसे नगरवासी वृष्णि और अन्धकवंशियोंके बीच कोई मद्यादि पीके मतवाला न होवे। यदि कोई पुरुष मद्य पीयेगा, तो हमलोग जाननेसे उसके अकेले पीनेपर भी बांधवोंके सहित जीवित अवस्थामें ही उसे शूलीपर चढ़ावेंगे। द्वारकावासी लोगोंने अक्लिष्टकर्म्मा रामकी ऐसी आज्ञा सुनके राजभयसे "हमलोग अब मद्य न पीयेंगे"—इसही प्रकार नियम स्थापित किया।

१ अध्याय समाप्त।

———

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अन्धक लोगोंके सहित वृष्णिवंशियोंके इस प्रकार सावधान होनेपर कालपुरुष सदा प्रतिदिन उन लोगोंके गृहोंमें घूमने लगा। किसी किसी गृहमें न दीखनेपर भी उस सिरमुंडे कराल बदन विकट दर्शन कालपुरुषको वार्ष्णेय लोगोंके सब गृहोंमें ही पर्य्यवेक्षण करते देखा गया। यादवलोगोंने उसे मारनेके लिये असंख्य बाण चलाये, परन्तु किसीसे उस सर्व्वभूत क्षयकारीको विद्ध करनेमें समर्थ न हुए। उस समय प्रतिदिन वृष्णि और अन्धकवंशियोंके विनाशसूचक प्रबलतर निदारुण महावायु प्रवाहित होना आरम्भ हुआ। सब रथ्या मूषिक और स्तपात्रोंसे परिपूर्ण होगये और यदुवंशियोंके सोनेपर चूहोंने उनके नखों तथा केशोंको काटना आरम्भ किया। वार्ष्णेय-लोगोंके गृहमें स्थित सारिकासमूह चीचो, कुचो प्रभृति बोली बोलने लगीं और वह शब्द दिन रातके बीच एक बार भी बन्द न हुआ। हे भारत! उस समय सारसवृन्द उल्लुओं और बकरे सियारोंके शब्दका अनुकरण करने लगे। पाण्डुरवर्ण और लालचरणवाले कबूतर आदि पक्षिवृन्द मानो कालसे प्रेरित होके ही वृष्णि और अन्धकगणोंके प्रति गृहोंमें विचरने लगे; गो-योनिमें गर्द्दभ, अश्वतरीसे करभ, शुनीसे बिड़ाल और नकुलोंके गर्भसे चूहे उत्पन्न होने लगे। उस समय वार्ष्णेयगण पापकार्य्य करके भी लज्जा नहीं करते थे और देवता, ब्राह्मण तथा पितरोंका द्वेष करना आरम्भ किया। रामकृष्णके अतिरिक्त प्रायः सब यदुवंशी लोग गुरुजनोंकी अवमानना करनेमें प्रवृत्त हुए, पत्नी पतिको और पति पत्नीको वञ्चना करने लगा।

अग्नि लाल, काली और मञ्जिष्ठावर्ण शिखाके सहित वामावर्त्तमें प्रज्वलित होने लगी; उस पुरीमें उदय और अस्तके समय सूर्य्य बार बार कबन्ध पुरुषोंसे घिरा हुआ दिखाई देने लगा। हे भारत! सिद्ध महानस तथा उत्तम संस्कार-युक्त अन्नादि भोजनकी वस्तुओंमें सहस्रों कृमि दिखाई देने लगे। वे महात्मा लोग जिस समय पुण्याहवाचन तथा जपादिमें रत होते थे, उस समय बोध होता था, कि मानो कोई उस स्थानमें दौड़ रहा है, किन्तु किसीको देख न सकते थे। यादवलोग परस्परके नक्षत्रको ग्रहोंसे पीड़ित देखने लगे, परन्तु किसीने भी अपने नक्षत्रको न देखा; वृष्णि और अन्धकवंशियोंके गृहमें पाञ्चजन्य शङ्खके शब्दके समयमें दारुण स्वरसे गधोंका शब्द होने लगा। उस समय हृषीकेशने त्रयोदशीमें अमावस्या अर्थात् कृष्णपक्षकी त्रयोदश दिवसात्मकादि रूप काल विपर्य्यय देखकर यादवोंसे कहा;—यह देखो, भारत युद्धके समय जिस प्रकार हुआ था, उस ही भांति हम लोगोंके विनाशके निमित्त ही आज त्रयोदशीमें ही पौर्णमासीका कार्य्य सम्पादित होता है। केशिनिषूदन जनार्द्दन इतनी बात कहके ही क्षणभर सोचके निरूपित कालका समागम समझके फिर बोले,—'हत-बान्धवा गान्धारीने पुत्रशोकसे सन्तापित होके आर्त्तभावसे जो कहा था, वही छत्तीसवां वर्ष उपस्थित हुआ है।' इसके अतिरिक्त पहले सब सेनाको व्यूह रचना होनेपर महाराज युधिष्ठिरने निदारुण उत्पातोंको देखकर जो आशङ्का की थी, इस समय भी वही उपस्थित हुआ है।

श्रीकृष्णने इतनी बात कहके ही उस दैवकृत दुर्निमित्तोंको सत्य करनेकी अभिलाषसे ही उस समय तीर्थयात्राके लिये आज्ञा की। तब पुरुषवृन्द नगरके बीच इस प्रकार ढिंढोरा देने लगे, कि हे पुरुषपुङ्गवगण! केशवकी आज्ञानुसार आप सब लोगोंको समुद्रकी तीर्थ-यात्रा करनी होगी।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, काली स्त्री रात्रिके समय पाण्डुर दांत निकालके हंसते हंसते यादवोंके गृहमें प्रवेश कर तथा निद्रावस्थामें यादवोंकी स्त्रियोंके मङ्गल सवादि हरती हुई द्वारकानगरमें सर्वत्र घूमने लगी। वृष्णि और अन्धकवंशीय लोग ऐसा देखने लगे, कि ग्रहगण उनके गृहवास्तुके बीच तथा अग्निहोत्रके गृहोंमें उन्हें भक्षण करते हैं; भयानक निशा-चरोंके द्वारा उनके अलङ्कार, छत्र, ध्वजा और कवच अपहृत होते हैं। पहले अग्निने जो अयोमय वज्रनाभ चक्र प्रदान किया था, वार्ष्णेय लोगोंके सामनेही वह आकाशमें चला गया। दारुकके सम्मुखमें ही उसके मनोजव घोड़ोंने उस जुते हुए आदित्य वर्ण दिव्य रथको हरण करते हुए समुद्रके बीच गमन किया।

राम और जनार्द्दन ताल तथा सुवर्णनाम जिन दो महाध्वजाओंकी सदा पूजा करते थे, आका-शसे उन दोनोंको किसीने हर लिया और अप्सरावृन्द दिन रात ऐसा कहने लगीं। कि तुम लोग तीर्थयात्रा करो। अनन्तर वृष्णि और अन्धकवंशीय महारथ मनुजपुङ्गवगण जिगमिषु होकर अन्तःपुरचारिणी स्त्रियोंके सहित तीर्थ-यात्रा करनेके लिये अभिलाषी हुए। उस समय उन लोगोंने अनेक प्रकारकी भक्ष्य, भोज्य और पीनेकी वस्तु तैयार करके बहुतसा मद्य और मांस मङ्गाया और उग्र पराक्रमी समुज्वल सैनिक पुरुषोंके सहित घोड़े, हाथी और यानोंमें चढ़के नगरसे बाहिर हुए। इस ही प्रकार वे सस्त्रीक यदुवंशी लोग बहुतसी पीने तथा खानेकी वस्तुओंके सहित प्रभास तीर्थमें जाकर इच्छानुसार गृहवासके अनुरूप सुखभोग करने लगी। उस समय मोक्ष विशारद उद्धवने उन

लोगोंको उस समुद्रके तटपर सन्निविष्ट देखके योगबलसे सब जानके उन वीरोंको आमन्त्रण करते हुए प्रस्थान किया। उस महात्माके हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए प्रस्थित होनेपर भी भगवान् कृष्णने उन्हें निवारण करनेकी नहीं की, क्यों कि वृष्णिवंशियोंके नष्ट होनेका विषय वह पहलेसे ही जानते थे। कालके वशमें हुए वृष्णि तथा अन्धकवंशीय महारथोंने इतना ही देखा, कि उद्धव निज तेजके सहारे पृथ्वीतल और आकाशको परिपूरित करते हुए जा रहे हैं।

इस ही प्रकार उद्धवके चले जानेपर उस प्रभासतीर्थमें उग्रवीर्थ्य यादवोंके सैकड़ों तूर्य्य-शब्द तथा नट-नर्त्तकोंके नृत्य गीतादियुक्त महा पान आरम्भ हुआ। ब्राह्मणोंके निमित्त जो सब अन्न पकाया गया था, उन लोगोंने मदमत्त होके वह सब अन्न बानरोंको प्रदान किया। राम, कृतवर्म्मा, सात्यकि, गद और बभ्रु प्रभृति वीरगण कृष्णके सम्मुखमें ही मद्य पीने लगे, इतने ही समयमें सात्यकि मतवाला होकर सभाके बीच उपहास और अवमानना करते हुए कृतवर्म्मासे बोला, हे हार्द्दिक्य! कौन पुरुष क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर मृतक सदृश सोते हुए लोगोंका वध किया करता है; तुमने जो कार्य्य किया है, यदुवंशी लोग उसे कदापि न सहेंगे। सात्यकिने जब ऐसा कहा, तब रथिश्रेष्ठ प्रद्युम्नने कृतवर्म्माकी अवज्ञा करते हुए सात्यकिके कहे हुए बचनकी बहुत ही प्रशंसा की। उसे सुनकर कृतवर्म्मा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और बायां हाथ दिखाके बोला;—भुजा कटनेपर जब भूरिश्रवा रणमें योगयुक्त होकर बैठा था, तब तुमने वीर होकर किस प्रकार नृशंसकी भांति बध करते हुए उसे रणके बीच गिराया था? उसकी इतनी बात सुनके केशीनिसूदन केशव बहुतही क्रुद्ध हुए और क्रोधपूर्व्वक तिरछे नेत्रसे उसे देखने लगे। उस समय सात्यकिने सत्राजितकी स्यामन्तक मणि सम्बन्धीय सब सम्वाद मधुसूदनको सुनाया; उसे सुनके सत्यभामा क्रुद्ध होकर जनार्द्दन केशवके क्रोधको उद्दीपित करनेके निमित्त रोती हुई उनकी गोदीमें गिरी। अनन्तर सात्यकि क्रोधपूर्व्वक उठके बोला। हे सुमध्यमे! मैं सत्यके सहारे शपथ करके कहता हूं, कि धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पांचो पुत्रोंने जिस पदवीमें गमन किया है, मैं भी वही पदवीका अनुसरण करता हूं। जिस पापीने द्रोणपुत्रकी सहायतासे सौप्तिकमें वीरोंका विनाश किया था, आज उस दुरात्मा कृतवर्म्माका यश तथा आयुकाल शेष हुआ है। सात्यकी इतनी बात कहके ही क्रोधपूर्व्वक दौड़ा और केशवके सामने ही तलवारसे कृतवर्म्माका सिर काटा और उसके बान्धवोंका बध करते हुए चारों ओर घूमने लगा; कृष्ण उसे निवारण करनेके लिये आगे बढ़े। महाराज! इतने ही समयमें भोज और अन्धकवंशियोंने कालप्रेरितकी भांति एकत्रित होकर शिनिनन्दनको घेर लिया। परन्तु महातेजस्वी कृष्ण उन लोगोंको क्रोधपूर्व्वक शीघ्रतासे आते हुए देखकर भी क्रुद्ध न हुए; क्यों कि वह काल बिपर्य्ययके विषय पहलेसे ही जानते थे। अनन्तर वे मदमत्त वीरगण मानो कालप्रेरित होके ही जूठे भाजनोंसे सात्यकिको मारने लगे। उस समय रुक्मिणीपुत्र शैनेयको पीड़ित देखके उसकी रक्षा करनेके निमित्त क्रोधपूर्व्वक दौड़के भोजगणोंके सङ्ग और सात्यकि अन्धक वंशियोंके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए। बाहुबलशाली वे दोनों वीर बहुत युद्ध करके भी शत्रुओंकी बहुतायतके कारण कृष्णके सामने ही मारे गये। यदुनन्दन कृष्णने पुत्र और शिनिनन्दनको मरा हुआ देखकर क्रोधपूर्व्वक एक मुट्ठी एरका (पटेर) ग्रहण किया वह बज्रसदृश अयोमय मूषल होगया। अनन्तर जिसे सामने पाया, उस मूषलसे ही उन सबका नाश कर डाला। उसे देखकर कालप्रेरित अन्धक भोज, शैनेय और

वृष्णि वंशीयगण उसही मूषलभूत एरका (पटेर) लेकर परस्परमें एक दूसरेका नाश करने लगे। हे विभु महाराज! उस समय उन लोगोंके बीच जिस किसीने कुपित होकर एक भी एरका (पटेर) ग्रहण किया। ब्रह्मशापसे वही वज्रकी भांति सारवान हुआ तथा समस्त तृण भी मूषल होगये। हे महाराज! वे लोग जो सब तृण चलाने लगे, वे सब भी वज्रकी भांति सारवान मूषल होकर बधानर्ह लोगोंका बध करते हुए दीख पड़े। हे भारत! वे लोग इस प्रकार मतवारे हुए थे, कि परस्पर युद्धमें प्रवृत्त होकर पिता पुत्रको और पुत्र पिताको मारके गिराने लगे। हे महाराज! जैसे पतङ्ग अग्निमें जा पड़ते हैं, वैसे ही वे कुक्कुर और अन्धकवंशीय लोग युद्धमें गिरने लगे; तथापि किसीको भागनेकी इच्छा न हुई; महाबाहु मधुसूदन कालके उलट फेरके विषयको जान सके थे, इसलिये उस युद्धमें जो मूषल देखा, वही ग्रहण करके उसहीसे सबका विनाश करने लगे।

शारङ्गधनुष, गदा और चक्रधारी दाशार्ह माधव शाम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा गद प्रभृति वीरोंको मरे वा पृथ्वीमें पड़े हुए देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस ही भांति बचे हुए लोगोंका नाश करते हुए यदुकुलको निःशेषप्राय किया; तब परपुरविजयी महातेजस्वी बभ्रु और दारुकने उनके समीप जाके जो कहा, उसे सुनिये। वे लोग बोले, हे भगवन्! आपने सबका विनाश करके यदुकुलको निःशेषप्राय किया है, इस समय जिस स्थानमें राम निवास करते हैं, वहां चलिये, हम लोग आपके अनुगामी होते हैं।

३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर केशव, दारुक और बभ्रुने शीघ्र ही वहांसे चलकर रामके समीप जाके देखा कि वह अनन्तवीर्य्य निर्ज्जन स्थानमें वृक्षके ऊपर बैठके ध्यान कर रहे हैं। माधवने बलदेवको वैसे भावसे उपस्थित देखकर दारुकसे कहा,—तुम शीघ्र जाके कौरवोंको विशेष करके अर्ज्जुनके समीप यादवोंका निदारुण मृत्यु-सम्वाद कहो और जिस प्रकार यादवोंके ब्रह्मशापजनित मृत्युकी समाचार सुनके अर्ज्जुन शीघ्र इस स्थानमें आवें, उस विषयमें यत्नवान् होना। इतनी बात सुनके दारुक विकलचित्तसे रथपर चढ़के कौरवोंके निकट गया।

दारुकके जानेपर केशव पशवारेकी ओर स्थित बभ्रुकी ओर देखकर बोले,—आप शीघ्र द्वारकानगरमें जाकर स्त्रियोंकी रक्षा करिये; जिससे डाकू लोग धनके लोभसे उनकी हिंसा न कर सकें। ज्ञातिवधसे दुःखी मदसे मतवारा बभ्रु अत्यन्त थके रहनेपर भी केशवकी ऐसी आज्ञा सुनके जाने लगा, इतने ही समयमें ब्रह्मशापवश किसी व्याधके एक कूटसंयुक्त दुरन्त मूषलने सहसा गिरके कृष्णके निकट ही उसका जीवन हर लिया। उग्रवीर्य्य माधव बभ्रुको मरा हुआ देखके अग्रज भ्राता रामसे बोले,—जबतक मैं स्त्रियोंको स्वजनोंके तत्त्वावधारणमें रखकर न लौटूं, तबतक आप इस ही स्थानमें मेरी प्रतीक्षा करिये। जनार्द्दन इतनी बात कहके ही द्वारकानगरमें प्रवेश करके पितासे बोले,—जबतक अर्ज्जुन न आवें, तबतक आप इन पुरनारियोंकी रक्षा करिये। राम वनके बीच मेरी प्रतीक्षा करते हैं, इसलिये आज मैं शीघ्र जाके उनके सङ्ग मिलूंगा, पहिले असंख्य राजाओं और कौरवोंका मरना तथा इस समय यादवोंकी मृत्यु देखकर इस यादवरहित यदुनगरोंमें रहनेकी मुझे अभिलाष नहीं होती है; इसलिये अब मैंने ऐसा निश्चय किया है, कि रामके सहित वनवासी होकर शेष समय व्यतीत करूंगा। श्रीकृष्ण इतनी बात कहके ही सिर झुका उनके दोनों चरणोंको छूके शीघ्रताके

सहित वहांसे चले, तब पुरके बीच स्त्रियों और बालकोंके रोदनकी महान् ध्वनि प्रकट हुई। उसे सुन केशव लौटकर उन रोनेवाली स्त्रियोंसे बोले,—नरश्रेष्ठ अर्ज्जुन इस द्वारकापुरीमें आके तुम लोगोंका दुःख दूर करेंगे। अनन्तर केशवने वनके बीच जाके देखा, कि राम निर्ज्जनमें अकेले योगयुक्त होके बैठे हैं और उनके मुखसे एक श्वेतवर्ण महानाग बाहिर होता है। जिसके द्वारा समुद्र अपनेको महानुभाव कहके बोध करता था, देखते देखते वह सहस्रशीर्ष पर्व्वत भोगसदृश लोहितवदन नागने अपना मानुषी तन परित्याग करके समुद्रमें प्रवेश किया। हे महाराज! उस समय समुद्र, पवित्र नदियें, उग्र तेजस्वी महात्मा कर्कोटक, वासुकी, तक्षक, पृथुश्रवा, वरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, चक्रमन्द, अभिखण्ड, दुर्मुख और अम्बरीष प्रभृति श्रेष्ठ नागों तथा राजा वरुणने स्वयं उठके उन्हें ग्रहण करते हुए स्वागत प्रश्न तथा पाद्य अर्घसे पूजा की।

उग्रवीर्य्य कृष्ण भ्राताको गमन करते देखकर दिव्य दृष्टिके सहारे कालकी सारी गतिका पर्य्यवेक्षण करके निर्ज्जन वनमें घूमते घूमते पृथ्वीमें बैठे। उस महानुभावने पहलेसे ही इन सब विषयोंको सोचा था, तथापि पहले गान्धारीके वचन तथा जूठा पायस लेप करनेके समयमें दुर्व्वासाने जो कहा था, उसे स्मरणकर कुरु, अन्धक और वृष्णिवंशियोंके मृत्युका विषय सोचके उस समयको संक्रमणका उपयुक्त काल समझके इन्द्रियोंको संयत किया। इसके अतिरिक्त वह सर्व्वार्थ तत्त्ववित देवश्रेष्ठ कृष्ण समर्थ होके भी महर्षि अत्रिके वचनकी प्रतिपालना तथा तीनों लोकोंकी स्थिति और सन्देह निराकरणके हेतु नियमित मृत्युके अधीन होनेके अभिलाषी होकर वाङ्मन प्रभृति इन्द्रिय निरोधरूपी महायोग अवलम्बन करके सोये। इतने ही समयमें जरा नाम किसी उग्रमूर्त्ति व्याधने मृगयाभिलाषी होकर उस स्थानमें आके सोये हुए योगयुक्त माधवको मृग जानके शीघ्र ही बाणसे विद्ध करके पकड़नेकी इच्छासे निकट गया और समीप पहुंचके उस योगयुक्त पीताम्बरधारी चतुर्भुज पुरुषको देखकर अपनेको अपराध करनेवाला समझ शङ्कितचित्तसे उनका दोनों चरण धारण किया। उस समय महात्मा माधव उसे आश्वासित करके निज तेजके सहारे आकाश और पृथ्वीको परिपूरित करते हुए ऊपरकी ओर गये। उनके स्वर्गके निकट पहुंचनेपर मुनिगण, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वदेवगण, अप्सराओंके सहित गन्धर्व्व और सिद्धगणोंने उठके उनकी अभ्यर्थना की। हे महाराज! तिसके अनन्तर वह उग्रवीर्य्य योगाचार्य्य सर्व्वभूतप्रभव अव्यय महात्मा भगवान् नारायण निज शोभाके सहारे सुरलोकको प्रकाशित करते हुए देवता, ऋषि और चारणोंके सहित मिलके तथा प्रणत हुए मुख्य सिद्ध गन्धर्व्व और अप्सराओंसे पूजित होकर अपने धामकी ओर गये। हे नरनाथ! उस समय श्रेष्ठ मुनियोंने ऊंचे स्वरसे ऋक् उच्चारण करते हुए उस जगदीश्वरका यश गाया; इन्द्रादि देवताओंने स्वागत प्रश्नादिसे उन्हें प्रत्यभिनन्दित किया और गन्धर्व्व लोग प्रीतिपूर्व्वक उनकी स्तुति गान करते हुए उनका अनुसरण करने लगे।

४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर दारुकने कौरवोंके नगरमें जाके पृथापुत्रोंके समीप वार्ष्णियलोगोंके परस्परमें मूषलघटित युद्ध तथा मरनेका सम्वाद प्रदान किया। पाण्डुके सब पुत्र भोज, अन्धक और कुकुरगणोंके सहित वार्ष्णियलोगोंका मरना सुनके अत्यन्त ही शोक सन्तप्त तथा व्याकुलचित्त हुए। अनन्तर केशवके प्रिय

सखा अर्ज्जुन बोले, बोध होता है, यदुकुल नष्ट हुआ,—इतनी बात कहके सबको आमन्त्रण करते हुए निज मातुल वसुदेवको देखनेके लिये चले। हे महाराज! उस वीरने दारुकके सहित वृष्णियोंके निवासस्थानमें जाके देखा, कि द्वारकानगरी नाथरहित कामिनोकी भांति शोभाविहीन हुई है; जो पहले लोकनाथ कृष्णके अधिष्ठानसे सनाथ हुई थीं, उन नाथरहित स्त्रियोंने इस समय नाथसखा अर्ज्जुनको देखते ही रोदन करना आरम्भ किया। श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियां अर्ज्जुनको आया हुआ देखके महाशब्दके सहित रोदन करने लगीं; उनके भी दोनों नेत्र आंसूसे परिपूरित हुए और वह उन यदुकुल भूषण कृष्णकी तथा पुत्रादिरहित यादवोंकी स्त्रियोंकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए।

अनन्तर इधर उधर पर्य्यवेक्षण करते हुए देखा, कि शोतक लक्ष्मी श्रीविहीन स्त्रीकी भांति वृष्णिपुङ्गवोंसे रहित कालपाशग्रस्त यादवनगरी वृष्णि और अन्धकवंशरूपी जल, घोड़ेरूपी मीन, रथरूप नाव, बाजे और रथशब्दरूप ओघ, प्रासादरूप महाह्रद घट, रत्नसमूहरूपी शिवार, वज्रप्राकाररूपी माला, रथ्यारूपी स्रोतजल और भंवर, चत्वररूपी स्थिर ह्रद और राम कृष्णरूपी ग्राहशालिनी भयङ्करी वैतरनी नदीकी भांति मालूम होती है। हे पृथ्वीनाथ! पृथापुत्र अर्ज्जुन दारुका तथा श्रीकृष्णकी स्त्रियोंकी ऐसी अवस्था देखके सशब्द रोते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े; उसे देखके रुक्मिणी और सत्राजितपुत्री सत्यभामा प्रभृति कृष्णकी स्त्रियां शीघ्र ही उस स्थानमें आके उनके चारों ओर रोदन करने लगीं। अनन्तर वे स्त्रियां उस महात्माको उठाके रत्नमय पोढ़ेपर बिठलाकर निर्ज्जनमें उनके चारों ओर बैठीं; तब अर्ज्जुनने भगवान्‌के कार्य्योंको कहकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुतिकर कृष्णकी स्त्रियोंको आश्वासित करके मामाको देखनेके लिये गमन किया।

५ अध्याय समाप्त।

कुरुपुङ्गव धनञ्जयने वसुदेवके गृहमें जाके देखा, कि वह पुत्रशोकसे दुःखी वीरवर महात्मा सोये हुए हैं। हे भारत! उस समय विशालवक्ष महाभुज पृथानन्दनने आंखोंमें आंसू भरकेअधिक आर्त्तभावसे उनके दोनों चरणोंको ग्रहण किया; महाबाहु अरिन्दम वृद्ध आनक दुन्दुभि भानजेके मस्तकको सूंघनेके अभिलाषी होके भी शोकवशसे पहले असमर्थ हुए। अनन्तर बहुत कष्टसे अपने दोनों भुजाओंके सहारे महाभुज अर्ज्जुनको आलिङ्गन करके पुत्र, पौत्र, दौहित्र, भ्राता और बान्धवोंको स्मरण करते हुए विह्वलचित्तसे रोदन तथा विलाप करने लगे।

वसुदेव बोले, हे धनञ्जय! बोध होता है, मेरी मृत्यु नहीं है, कारण जिन्होंने सैकड़ों दैत्यों तथा राजाओंको जीता था, मैं उन्हें न देखके भी अबतक जीवन धारण करता हूं। हे पार्थ! जो दो पुरुष तुम्हारे अत्यन्त प्रिय शिष्य थे, उनकी दुर्नीतिसे वार्ष्णेयगण मारे गये हैं। हे कुरुशार्दूल धनञ्जय! जो दो पुरुष वृष्णिवंशियोंके बीच अतिरथ तथा कृष्णके प्यारे थे और तुम कथाछलसे सदा जिनकी प्रशंसा करते थे, वे प्रद्युम्न और सात्यकि दोनों ही वृष्णिवंशके विनाशके आधनायक हैं। हे अर्ज्जुन! अथवा सात्यकि, कृतवर्म्मा, रुक्मिणीपुत्र वा अक्रूरको दोष नहीं दे सकता; क्यों कि ऋषियोंका शाप ही इमलोगोंके वंशनाश-विषयमें कारण हुआ है। हे पार्थ! जिस जगत्प्रभुने विक्रमके सहित केशी, कंस और शिशुपालको मारा और निषदराज एकलव्य, काशीराज पौण्ड्रक, कलिङ्ग, मागध, गांधार, प्राच्य, दाक्षिणात्य, पर्व्वतीय और मरुदेशीय राजाओंको अपने वशमें किया था, उसे

मधुसूदनने बालकोंके अपराधसे वंशनाश-विषयमें उपेक्षा किया। हे अर्जुन! मेरा वह पुत्र अनघ गोविन्द जो सनातन विष्णु था, उसे तुम जानते हो और मैंने भी नारद तथा अन्यान्य मुनियोंके निकट सुना था। हे परन्तप! जब उस अधोक्षज विभु जगदीश्वरने कुलक्षयके विषयको जान सकनेपर भी उपेक्षा किया, तब निश्चय बोध होता है, कि वह गांधारी तथा महाभाग ऋषियोंके वचनको अन्यथा करनेके अभिलाषी नहीं हुए। हे अरिन्दम! तुम्हारे पुत्रको अश्वत्थामाके द्वारा मरा हुआ देखके उन्होंने सम्मुखमें ही निज तेजके सहारे उसे फिर जिलाया था; परन्तु इस समय निज ज्ञातिगणोंको मरते हुए देखके भी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं की। हे भारत! तुम्हारे उस सखाने निज पुत्र, पौत्र, भ्राता तथा सखियोंको मरके सोये हुए देखकर मुझसे यह वचन कहा, "आज इस यदुकुलके नाशका समय उपस्थित है; इसलिये जब आप धनञ्जयको वार्ष्णेयलोगोंके इस निदारुण मृत्यु सम्वाद प्रदान करेंगे, तब वह द्वारकानगरीमें आवेंगे। हे प्रभु! वह महातेजस्वी यदुवंशियोंके मरनेका सम्वाद सुनते ही जो शीघ्र इस स्थानमें आवेंगे, उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है; जो अर्जुन वही मैं हूं और जो मैं वही अर्जुन है, हम दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं है; इसलिये वह जैसा कहेंगे, उसहीके अनुसार कार्य्यके अनुवर्त्ती होना। वह पाण्डुपुत्र अर्जुनही कालपरीत बालक, स्त्री तथा आपका भी जर्द्धदैहिक कार्य्य करेंगे, धनञ्जयके द्वारकासे चले जानेपर समुद्र उस ही समय प्राकार तथा अटालिकाओंके सहित इस नगरीको डुबा देगा। मैं बुद्धिमान रामके सहित किसी पवित्र स्थानमें योग अवलम्बन करके देह त्याग करूंगा; मैंने जो कहा, आप इसमें तनिक भी सन्देह न करिये।"

हे पार्थ! अचिन्त्यपराक्रमी सर्व्वशक्तिमान् हृषीकेशने इतनी बात कहके ही बालकोंके सहित मुझे परित्याग करके प्रस्थान किया है। इस समय मैं तुम्हारे उन दोनों महात्मा भाइयों और इस निदारुण ज्ञातिवधके विषयकी चिन्ता करके अत्यन्त शोकपीड़ित हुआ हूं और आहारादि परित्याग किया है, क्यों कि जीवन धारण तथा भोजनादि करनेकी इच्छा नहीं है। हे पाण्डुनन्दन! तुम मेरे भाग्यसे ही आये हो, इस समय कृष्णने जो कहा है, वह सब पूरा करो। हे अरिनिशूदन पृथानन्दन! इस राज्य, ऐश्वर्य्य, स्त्रियों और अपने प्रिय प्राणको भी तुम्हारे हाथमें सौंपता हूं, जो करना हो वह करो।

६ अध्याय समाप्त।

———

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अरिन्दम बीभत्सु दीनचित्त मातुल वसुदेवका ऐसा वचन सुनके बोले,—"मामा! मैं उन वृष्णिप्रवीर तथा बांधवोंसे रहित इस पृथ्वीको अब कदापि देखनेको अभिलाष नहीं कर सकूंगा। बोध होता है, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल-सहदेव और द्रौपदीकी भी ऐसी ही दशा होगी; क्यों कि हम छःहों एकान्तःकरण हैं। हे धर्म्मज्ञ! धर्म्मराजका भी संक्रमणकाल उपस्थित हुआ है, इसलिये आप निश्चय जानिये; कि वह शीघ्र ही मृत्युके वशमें होंगे। इस समय मैं यदुवंशियोंकी स्त्रियों तथा बालकोंको शीघ्र ही इन्द्रप्रस्थमें ले जाऊंगा।" धनञ्जय मामासे इतनी बात कहके दारुकसे बोले,—"चलो अब विलम्बकी आवश्यकता नहीं है, इस समय वृष्णिवंशियोंके मन्त्रियोंसे भेंटकर आऊं। शूरवर अर्जुन इतनी बात कहके महारथ यादवोंके निमित्त शोक करते करते सुधर्म्मा नामी यादवोंकी सभामें जाके आसनपर बैठे, तब ब्राह्मण, वणिक् तथा प्रजापुञ्ज उनके चारों ओर एकत्रित हुए। पृथापुत्रने उन लोगोंको दीनचित्त किंकर्त्तव्यविमूढ़ तथा मुमूर्षुप्राय देखकर दीनभावसे उस समयके अनुसार यह

वचन कहा,—थोड़े ही दिनके बीच समुद्र द्वारकानगरको डुबावेगा, इसलिये मैं वृष्णि और अंधकवंशके अवशिष्ट लोगोंको इन्द्रप्रस्थमें ले जाऊंगा और उस ही स्थानमें वज्रको तुम लोगोंके राजपदपर प्रतिष्ठित करूंगा; इसलिये तुम लोग अनेक प्रकारके यान तथा रत्नोंको सज्जित करो। आजसे सौर-सप्तम दिवसमें हम लोग नगरसे बाहिर होंगे। इसलिये तुम लोग विलम्ब न करके इतनेही समयके बीच सज्जित हुए रहो।

अक्लिष्टकर्म्मा पृथानन्दनकी ऐसी आज्ञा सुनके वे सब कोई निज निज प्राण रक्षाके निमित्त उत्सुक हुए और शीघ्र ही यानादि सज्जित करने लगे। अर्ज्जुनने भी महत् शोक और मोहसे अभिभूत होकर उस रात्रिमें केशवके गृहमें निवास किया, दूसरे दिन भोरमें ही प्रतापवान महातेजस्वी वसुदेव योग अवलम्बन करके उत्तम गतिको प्राप्त हुए। उस समय वसुदेवके गृहमें रोनेवाली स्त्रियोंकी निदारुण रोदनध्वनि प्रकट हुई; वे स्त्रियें केशोंको खोलती तथा आभूषणोंको परित्याग करती हुई दोनों हाथोंसे अपने अपने वक्षस्थलमें आघात तथा करुणस्वरसे विलाप करने लगीं। स्वीरत्न देवकी, भद्रा, मदिरा और रोहिणी स्वामीके सहित चितामें चढ़नेकी अभिलाषिणी हुईं। अनन्तर धनञ्जयने मनुष्य-वाहित महाई महत् यानके सहारे शौरिके शवको नगरसे बाहिर किया, उस समय अत्यन्त अनुरक्त द्वारकानिवासी प्रजासमूह दुःख और शोकयुक्त होके उनके पीछे पीछे चलने लगे। याजकवृन्द अग्रगामी हुए और अश्वमेधिक द्रव्य प्रदीप्त अग्नि तथा छत्र उनके यानके आगे उपस्थित होने लगा। देवकी प्रभृति देवीगण विविध अलङ्कारोंसे सज्जित और असंख्य स्त्रियों तथा बधूगणोंसे घिरकर उस वीरके पीछे चलने लगीं। अनन्तर जो स्थान जीवित समयमें उस महात्मा शूरपुत्रको परम प्रिय था, उस ही स्थानमें उनके शवको स्थापित करके पितृमेध कार्य्य आरम्भ हुआ। उनकी स्वीरत्न चारों रानियें चिताग्निके बीच उस वीरके सहित चितापर बैठकर पतिलोकमें गईं। इस ही प्रकार जब पाण्डुनन्दन चन्दनादि अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे चारों स्त्रियोंके सहित उस शवको जला रहे थे, तब समृद्ध अग्नि, सामग ब्राह्मणों और रोनेवाले लोगोंका शब्द एक ही समयमें प्रकट हुआ। तिसके अनन्तर वज्र प्रभृति वृष्णिकुमारों तथा यादवोंकी स्त्रियोंने मिलके उस महात्माका तर्पणकार्य्य पूरा किया। हे भरतपुङ्गव! धार्म्मिकश्रेष्ठ धनञ्जय धर्म्मके अनुसार उन कार्य्योंको पूरा करके जहां वार्ष्णेयगण विनष्ट हुए थे, उस स्थानमें गये। कुरुनन्दन उस स्थानमें पहुंचके उन सब लोगोंको रणमें मरे हुए देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और उस समयके अनुसार कार्य्य करनेके लिये अभिलाषी होकर जो लोग ब्रह्मशापसे एरकासे प्रकट हुए मूषलके सहारे मरे थे, प्रधानताके अनुसार उन लोगोंका अन्त्येष्टिकार्य्य किया। अनन्तर अनुगत लोगोंके द्वारा राम और कृष्णके शरीरका अनुसन्धान कराके विधिपूर्व्वक जलाया और प्रेतकार्य्य पूरा करके सातवें दिन उस स्थानसे बाहिर हुए। कृष्णवंशियोंकी शोककर्षित स्त्रियें रोदन करती हुई घोड़े, बैल, खच्चर और ऊंटोंसे चलनेवाले रथोंमें चढ़के महात्मा पाण्डुपुत्र धनञ्जयकी अनुगामिनी हुईं। अन्धक और वृष्णिवंशीय रथी तथा घुड़सवार प्रभृति सेवक वृन्द, पुरवासी और जनपदवासी लोग पार्थकी आज्ञानुसार उन बालक और बूढ़ोंसे युक्त वीरविहीन स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये उनके चारों ओर चले और पदत्राणयुक्त पदाति तथा गजारोही पुरुष पर्व्वतसदृश हाथियोंपर चढ़के आगे पीछे चलने लगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, महाधनवान वैश्य और शूद्रगण तथा अन्धक वा वृष्णिवंशीय बाल-

कगण पार्थके अनुगामी हुए। धीमान् वसुदेवनन्दन कृष्णकी स्त्रियें उनके परपोते वज्रको आगे करके बाहिर हुईं, वृष्णि और अन्धकवंशीय हतनाथा स्त्रियें भी उनकी अनुगामिनी हुईं। इस ही प्रकार परपुर-विजयी रथियों में श्रेष्ठ पार्थ उन मरनेसे बचे हुए महान् समृद्धिशाली वृष्णिवंशियोंको सङ्ग लेकर चलने लगे।

उन लोगोंके बाहिर होनेपर मगरालय समुद्रने समग्र रत्नपूरित द्वारकानगरीको जलमें डुबाया। पुरुषशार्दूल धनञ्जय वहांपर भूभागका जो जो अंश परित्याग करने लगे, समुद्र शीघ्र ही उन स्थानोंको जलसे डुबाने लगा। द्वारकावासी लोग अद्भुत घटना देखके कहने लगे, ओहो! कैसी दैव दुर्घटना है! ऐसा कहते हुए जितना शीघ्र होसका, नगरसे बाहिर हुए। इधर धीमान अर्जुनने बीच बीचमें रमणीय बन, पर्व्वत तथा नदियोंके तटपर निवास करते हुए यादवोंकी स्त्रियोंको सङ्ग लेकर जाते जाते एक दिन पञ्चनदके समीपवर्त्ती गोपशु तथा धान्यसे पूर्ण किसी एक स्थानमें निवास किया। हे भारत! उस स्थानमें बहुतसे डाकू वास करते थे। वे लोग धनञ्जयको अकेले हतनाथा स्त्रियोंको लेके जाते हुए देख लोभके वशमें हुए। हे महाराज! उन पापकर्म्म करनेवाले आभोरगणने लोभमें अन्धे होकर परस्पर मिलके इस प्रकार सलाह की, कि अर्जुन एकला धनुर्द्धर है और उसके सब योद्धा लोग तेजरहित हैं; इसलिये हम लोगोंको अतिक्रम करके किसी प्रकार भी इन बचे हुए बाल बूढ़ोंके सहित हतनाथा स्त्रियोंको लेकर जानेमें समर्थ होंगे।

वे परधन हरनेवाले अनगिनत डाकूलोग इसही प्रकार सलाह करके लाठीरूपी अस्त्र लेकर वृष्णिवंशियोंकी स्त्रियोंकी ओर दौड़े। हे भारत! वे लोग अन्यान्य अनुयात्रियोंको सिंहनादसे डराते हुए मानो काल-प्रेरित होके ही अर्जुनको वध करनेके लिये जाने लगे। उन्हें देखकर महाबाहु कुन्तिनन्दन धनञ्जय पदातियोंके सहित निवृत्त होके हंसते हंसते उनसे बोले,---रे अधार्म्मिकगण! यदि बचनेकी इच्छा हो, तो निवृत्त होजाओ, नहीं तो इस ही मुहूर्त्तमें मेरे बाणोंसे कटके तथा मरके अनुताप करना होगा। परन्तु मूढ़ भीलोंने वीरवर अर्जुनका ऐसा बचन सुनके तथा बार बार निवारित होके भी उनके बचनको उपहास करते हुए स्त्रियोंकी ओर दौड़े; तब अर्जुन अपने उत्तम महत् दिव्य अजर गाण्डीव धनुषपर रोदा चढ़ानेकी इच्छासे बहुत यत्नके सहित नमाके अत्यन्त परिश्रम तथा कष्टसे रोदा चढ़ाकर अस्त्रोंको स्मरण करने लगे, परन्तु कोई अस्त्र ही उस समय उनके स्मृतिपथमें न आया। कुन्तीपुत्र निज भुजवीर्य्यकी विपरीतता तथा दिव्य महास्त्रोंका विनाश देखकर बहुत लज्जित हुए; इधर वृष्णिपत्नीय रथी तथा गज सवार प्रभृति योद्धा लोग उन ह्रियमाण स्त्रियोंको लौटानेमें समर्थ न हुए। उन स्त्रियोंकी संख्या बहुत थी, इससे डकू लोग चारों ओरसे आके आक्रमण करने लगे, धनञ्जयने स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न किया; परन्तु डाकू लोग योद्धाओंके द्वारा निवारित होके भी उन स्त्रियोंको सब भांतिसे आकर्षण करके लेजाने लगे और कोई कोई स्त्री इच्छानुसार भीलोंकी अनुगामिनी हुईं। उसे देख प्रभावशाली धनञ्जय अत्यन्त ही व्याकुल हुए और वृष्णिवंशीय सेवकोंके सहित गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंसे डाकुओंको मारने लगे; हे महाराज! परन्तु जो बाण पहले बिना रुधिर पीये हुए निवृत्त नहीं होते थे, उस समय वे शीघ्रगामी अक्षयबाण क्षीणवीर्य्य होकर उनके सम्मुखमें ही निष्फल होने लगे। इन्द्रपुत्रने निज बाणोंको व्यर्थ होते देखकर दुःख और शोकसे अभिभूत होकर धनुषके कोनेसे

डाकुओंको मारना आरम्भ किया। हे जनमेजय! परन्तु म्लेच्छगण देखते देखते अर्जुनके सम्मुखमें ही हृष्णि और अन्धकवंशियोंकी स्त्रियोंको लेकर चले गये। प्रभावशाली धनञ्जय उस दैव दुर्घटनाके विषयको सोचकर दुःख तथा शोकसे अभिभूत होके लम्बीसांस छोड़ने लगे; वह अपने बाहुबल अस्त्र और वाणोंका क्षय होना और शरासनको शासनके बाहिर देखकर मन मलिन होके बहुत समयतक यह सोचकर कि यह दैवकृत है, नहीं तो कदापि ऐसा न होता,---ऐसा वचन कहके निवृत्त हुए।

हे भारत! अनन्तर महाबुद्धिमान कुरुनन्दनने हरनेसे बचे हुए हृतरत्न यादवोंकी स्त्रियोंको कुरुक्षेत्रमें लाके जहां तहां वासस्थान प्रदान किया। वह कृतवर्म्माके पुत्र तथा हरनेसे बची हुई भोजराजकी स्त्रियोंको मार्त्तिकावत नगरमें स्थापित करते हुए अवशिष्ट वीरविहीन बालक, वृद्ध और स्त्रियोंको इन्द्रप्रस्थमें ले गये। अनन्तर परवीर-निशूदन पाण्डुनन्दन धर्म्मात्मा पार्थ सत्यकनन्दन युयुधानके प्रियपुत्रको वृद्ध और बालकोंके सहित सरस्वती नदीके तटपर स्थापित करके वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य प्रदान किया। वज्रने इन्द्रप्रस्थमें राजा होकर अक्रूरकी स्त्रीको बार बार निषेध किया, तौभी उन्होंने प्रव्रज्याधर्म्म ग्रहण किया। रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हैमवती और जाम्बवती देवीने अग्निमें प्रवेश किया और श्रीकृष्णकी सत्यभामा प्रभृति अन्यान्य प्रिय स्त्रियें तपस्या करनेका निश्चय करके वनमें प्रविष्ट हुईं। उन्होंने फलमूल भोजी होकर मनमें श्रीकृष्णका ध्यान करती हुई हिमालयको अतिक्रम करके कलापग्राममें प्रवेश किया। जो द्वारकावासी लोग पृथापुत्र धनञ्जयके सङ्ग आये थे, अर्जुनने विभागक्रमसे उन लोगोंमेंसे बहुतेरे लोगोंको वज्रके समीप स्थापित किया। अर्जुनने यह सब समयके अनुसार कार्य्य करके आंखोंसे आंसू बहाते हुए भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास मुनिके आश्रममें जाके उनका दर्शन किया।

७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! अर्ज्जुनने व्यासदेवके आश्रममें जाकर देखा, कि मुनिश्रेष्ठ सत्यवतीपुत्र निर्ज्जनमें अकेले बैठे हैं। उनको देखकर उन्होंने उस महाव्रती धार्म्मिकश्रेष्ठके निकट जाकर कहा, कि मैं अर्ज्जुन हूं,—इस ही प्रकार अपना नाम सुनाके प्रणाम किया। महामुनि सत्यवतीपुत्र व्यास भी स्वागत प्रश्नके अनन्तर बैठनेको कहके धनञ्जयको कातर मन मलिन तथा बार बार लम्बी सांस छोड़ते हुए देखकर बोले;—हे भरतपुङ्गव! तुम्हें तो कभी पराजित होते नहीं सुना, तब इस समय इस प्रकार श्रीविहीन क्यों देखता हूं? तुम नखके जल, केशके जल, वस्त्रादि अथवा कुम्भके मुखोदकसे अभिषिक्त तो नहीं हुए हो? क्या तुमने त्रिरात्रके बीच रजस्वलागमन वा ब्रह्महत्या की है अथवा किसी युद्धमें पराजित हुए हो? हे पार्थ! किस कारणसे तुम्हारी ऐसी अवस्था हुई है? हे अर्ज्जुन! यदि यह मेरे सुनने योग्य हो, तो शीघ्र प्रकाश करके कहो।

अर्ज्जुन बोले, जिसकी देह श्री बादलसदृश और दोनों नेत्र विशाल कमलदलके तुल्य थे, उस श्रीमान् कृष्णने रामके सहित शरीर छोड़के सुरलोकमें गमन किया है। ब्रह्मशापवशसे प्रभासमें मूषलजनित युद्धमें वृष्णिवंशियोंका निदारुण लोमहर्षण विनाश हुआ हैं। हे ब्रह्मन्! जो भोज, हृष्णि और अन्धकवंशीय महाबली शूरवीर लोग पञ्चास्यसदृश पराक्रान्त तथा दर्पशाली थे, वे लोग परस्पर युद्ध करके विनष्ट हुए हैं। हे महाभाग! कालकी उलटी गति देखिये, जिन लोगोंकी भुजा परिघके समान थीं और जो लोग परिघ तथा शक्ति

प्रभृति आयुधोंके प्रहारको सहजमें ही सह सकते थे, वेही एरका (पटेरकी) चोटसे मरे हैं। हाय! पांच लाख यदुवंशीय विशालबाहु वीर परस्पर युद्धमें प्रवृत्त होके मारे गये हैं। मैं बार बार चिन्ता करता हूं, तथापि यदुवंशियों और श्रीकृष्णके मरनेमें मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता है। समुद्रके सूखने, पर्व्वतके चलना, आकाशके पतन तथा अग्निमें शीतगुणकी भांति क्या श्रीकृष्णके विनाशमें किसी प्रकार श्रद्धा होसकती है? जो हो अब मैं श्रीकृष्णसे रहित होकर इस पृथ्वीमें रहनेकी इच्छा नहीं करता। हे तपोधन! इसके अतिरिक्त जिसकी चिन्ता करके मेरा मन सदा विदीर्ण होता है, इससे भी बढ़के कष्टका कारण सुनिये,—हे ब्रह्मन्! मैं यादवोंकी स्त्रियोंको लेकर आता था, इतने ही समयमें मार्गके बीच पञ्चजननिवासी भीलोंने युद्धकी अभिलाष करके मेरे सामने ही देखते देखते उन स्त्रियोंको हरण किया है। यद्यपि मैं उस समय अपना गाण्डीव धनुष धारण किये हुए था, परन्तु मेरी दोनों भुजा पहलेकी भांति पराक्रम प्रकाश करनेमें असमर्थ हुईं, मैं उस धनुषमें रोदा चढ़ाके उसे खींच न सका। हे महामुनि! उस समय मैं अनेक प्रकारके अस्त्रोंको भूल गया था और सब बाण मुहूर्त्त भरके बीच सब प्रकारसे तूणसे खाली होगये थे। हे तपोधन! जिनके दोनों नेत्र कमलदलके सदृश विशाल थे, वेही शंख, चक्र और गदाधारी श्यामवर्ण चतुर्भुज पीताम्बरधारी अप्रमेयात्मा परम पुरुष गोविन्दको जब नहीं देखता हूं, तो अब मुझे जीवन धारण करनेसे क्या फल है? हाय! वह महातेजस्वी शत्रुसेनाको जलाते हुए मेरे रथके आगे चलते थे, मैं उस अच्युतको अब नहीं देखता हूं। हाय! वह आगे निज तेजके सहारे शत्रुसेनाको जलाते थे, तिसके बाद मैं गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंसे शत्रुओंका नाश करता था। हे सत्तम! इस समय उन्हें न देखकर मैं विषण्ण होता हूं, तथा मेरा अन्तःकरण ऐसा कातर होके घूर्णित होता है, कि कहीं भी मुझे शान्ति प्राप्त नहीं होती। जबसे जनार्द्दन विष्णु अन्तर्द्धान हुए हैं, इतनी बात सुननेके समयसे ही मुझे सब दिशा अन्धकारमय दीखती हैं, इसलिये कृष्णसे रहित होके अब मुझे जीवन धारण करनेका उत्साह नहीं होता है। हे सत्तम! मेरे पराक्रम तथा स्वजनोंके विनष्ट होनेसे चित्त घबड़ा रहा है और जगतको सूना देखता हूं; इसलिये जिससे मेरा मङ्गल हो, आपको उचित है, कि मुझे वैसा ही उपदेश करें।

वेदव्यास मुनि बोले, हे कुरुशार्द्दूल! वृष्णि और अन्धकवंशीय महारथगण ब्रह्मशापसे भस्म होकर विनष्ट हुए हैं, इसलिये उन लोगोंके निमित्त शोक मत करो। जो होनहार होता है, वह अवश्य हुआ करता है; इसलिये कृष्णने समर्थ होके भी महात्मा यदुवंशियोंके इस अवश्यम्भावी विनाशके विषयको जान सकनेपर भी निवारण करनेकी चेष्टा न की, बल्कि उपेक्षा ही की थी; नहीं तो इन यदुवंशीय महात्माओंके ब्रह्मशापकी तो कुछ बात ही नहीं है, गोविन्द इच्छा करनेसे स्थावर और जङ्गमके सहित तीनों लोकोंको भी अन्यथा कर सकते। वह शंख, चक्र गदाधारी चतुर्भुज विशालनयन पुरातन ऋषि वासुदेव श्रीकृष्ण प्रीतिके वशमें होकर ही तुम्हारे रथके आगे चलते थे; इस समय पृथ्वीका भार हरके शरीर छोड़कर निज धाममें गये हैं। हे महाबाहो पुरुषपुङ्गव! तुमने भी भीमसेन और नकुल, सहदेवकी सहायतासे देवताओंका उत्तम महत् कार्य्य सिद्ध किया है। हे विभु कुरुपुङ्गव भारत! तुम लोग जिस लिये इस पृथ्वीमें आये थे, उसमें कृतकृत्य हुए; अब तुम लोगोंका काल उपस्थित हुआ है, इसलिये मेरे

विचारमें अब यहांसे गमन करना ही कल्याण-कारी बोध होता है; क्यों कि सम्पतकालमें बुद्धिका जो तेज तथा प्रतिपत्ति होती है, आपदकालमें वह सभी विपन्न हुआ करता है। हे धनञ्जय! काल ही सबका मूल है; उसने ही बीज स्वरूप होके इस जगत्की सृष्टि की है, और वही इच्छानुसार फिर सब हरेगा; कालके वशसे बलवान होके भी पुरुष फिर निबल होता है तथा सबका ईश्वर होके भी फिर दूसरेकी आज्ञाके वशमें हुआ करता है; इसलिये उसके लिये शोक न करना चाहिये। तुमने समयके अनुसार जिन सब अस्त्रोंको पाया था, वे सब कृतकृत्य होकर इस समय निज निज स्थानमें गये हैं; युगान्तरमें फिर वे सब तुम्हारे हाथमें आवेंगे। हे भरतपुङ्गव! तुम लोगोंका भी अभिलषणीय महाप्रस्थानका समय उपस्थित हुआ है, इसलिये मेरे विचारमें अब वैसा ही अनुष्ठान करनेसे कल्याण लाभ कर सकोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वीरवर पृथानन्दन अमिततेजस्वी श्रीवेदव्यास मुनिका ऐसा वचन सुनके उनकी आज्ञा पाके हस्तिनापुरमें आये और नगरमें प्रवेश करके धर्म्मराजके समीप जाके वृष्णि तथा अन्धकवंशियोंके विनष्ट होनेका सारा वृत्तान्त आदिसे अन्ततक कह सुनाया।

८ अध्याय समाप्त।

मौषल पर्व्व समाप्त।

महाभारत।
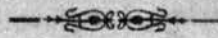
महाप्रस्थानिक पर्व्व।

नरायण, नरोत्तम नर और सरस्वतीदेवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

जनमेजय बोले, वृष्णि और अन्धकवंशियोंके इस प्रकारसे मूषलयुद्धमें मरने और श्रीकृष्णके निज धाममें जानेका सम्वाद सुनके पाण्डवोंने किस कार्य्यका अनुष्ठान किया? आप वह सब मेरे निकट प्रकाश करके कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवराज युधिष्ठिरने वृष्णिवंशियोंके वैसे निदारुण विनाशका विवरण सुनके सुरलोकमें जानेके लिये अभिलाषी होकर अर्ज्जुनसे कहा;—हे महाबुद्धिमान्! कालही प्राणियोंको हरण किया करता है, मुझे बोध होता है, कि हम लोग भी उसी कालपाशमें आवद्ध हुए हैं, इसलिये अब तुम लोगोंको भी इन सब विषयोंको आलोचना करनी चाहिये। जेठे भाई बुद्धिमान् धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनकर कुन्तीपुत्र अर्ज्जुनने कालको अपरिहार्य्य कहके उनके वचनको स्वीकार किया। भीमसेन और नकुल सहदेवने भी सव्यसाची धनञ्जयका अभिप्राय जानके उन्होंने जैसा कहा, उसमें ही निज निज सम्मति प्रकाश की। अनन्तर पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिरने वैश्यापुत्र युयुत्सुको बुलाकर धर्म्माचरणके निमित्त बनमें जानेका अभिप्राय प्रकाशित करके उन्हें सब राज्यभार प्रदान किया और राजा परीक्षितको निज राज्यपर अभिषिक्त करके दुःखित भावसे सुभद्रासे बोले,—यादवोंमें बचे हुए वज्रको इन्द्रप्रस्थके राजपदपर अभिषिक्त किया गया है और तुम्हारा यह पोता हस्तिनापुरमें कौरवोंका राजा हुआ। हे भद्रे! यदुनन्दन वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य दिया गया है, तुम उसके विषयमें किसी प्रकार अधर्म्माचरणकी अभिलाष न करके सदा उसकी रक्षा करना। धर्म्मात्मा धर्म्मराजने इतनी बात कहके भाइयोंके सहित धीमान् कृष्ण, वृद्ध मामा वसुदेव और राम प्रभृतिको जल देके विधिपूर्व्वक सबका श्राद्ध किया। अनन्तर शारङ्गधारी केशवका नाम लेकर उनके उद्देशसे द्वैपायन, नारद, मारकण्डेय, भरद्वाज और याज्ञवल्क्य प्रभृति तपोधन श्रेष्ठ द्विजोंको यत्नपूर्व्वक अनेक प्रकारकी स्वादिष्ट भोज्य वस्तु भोजन कराके असंख्य रत्न, वस्त्र, घोड़े, रथ और सैकड़ों सहस्रों स्त्री तथा ग्राम दान किये।

हे भरतसत्तम! तिसके अनन्तर उन लोगोंने पुरवासियोंसे पुरस्कृत गुरु कृपाचार्य्यको पूजा करते हुए परीक्षितको शिष्यरूपसे उनके हाथमें सौंप दिया। अनन्तर राजर्षि युधिष्ठिरने प्रजापुञ्जको बुलाकर निज चिकीर्षित विषय कह सुनाया। पुरवासी तथा जनपदवासी लोग उनका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त दुःखित चित्त हुए और उस वचनको अनुमोदन न करके बार बार इस प्रकार कहने लगे, हे नरनाथ! आपको ऐसा न करना चाहिये। परन्तु राजा युधिष्ठिरने कालके विपरीत धर्म्मको जान लिया था,

इसलिये उन पुरवासियों और जनपदवासियोंके अभिलाषके अनुसार कार्य्य करनेमें असम्मति प्रकाश करके सबकी अनुमति लेकर भाइयोंके सहित वनमें जानेकी इच्छा की।

अनन्तर धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने शरीरके सब आभूषणोंको उतारा, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रुपदपुत्रीने भी भूषणोंका परित्याग करके वल्कलवस्त्र पहना। हे भरतपुङ्गव! तिसके अनन्तर उन पुरुषपुङ्गवोंने विधिपूर्व्वक उत्सर्ग कालके अनुसार अन्तिम यज्ञ समाप्त करके अग्निको जलके बीच छोड़ दिया। पहले जूएके खेलमें हारनेपर जिस प्रकार गमन किया था, उस समय भी उन श्रेष्ठ पुरुषोंको द्रौपदीके सहित उस ही भांति जाते हुए देखके पुरकी स्त्रियें रोने लगीं। परन्तु वे भ्रातृगण वृष्णियोंका विनाश देखके तथा युधिष्ठिरके अभिप्रायको जानके गमन-विषयमें ही हर्ष प्रकाश करने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिर चारों भाइयों द्रौपदी और एक कुत्ता, इन सात जनोंके सहित नगरसे बाहिर हुए, तब पुरवासियों तथा अन्तःपुरवासियोंने बहुत दूरतक उनका अनुगमन किया, परन्तु कोई भी उन्हें "निवर्त्तित होइये"– ऐसा वचन कहनेमें समर्थ न हुआ। तिसके अनन्तर नगरवासियों तथा कृपाचार्य्य प्रभृति अनुयाई लोग लौटकर युयुत्सुके चारों ओर स्थित हुए, भुजगनन्दिनी उलूपीने गङ्गामें प्रवेश किया तथा चित्राङ्गदा मणिपुरकी ओर गई और दूसरी कुरुस्त्रियें परीक्षितके निकट निवास करने लगीं।

हे कुरुनन्दन! इधर सन्न्यास धर्म्मावलम्बी योगयुक्त महात्मा पाण्डवों तथा यशस्विनी द्रुपदनन्दिनीने उपवासी होकर पूरबकी ओर चलकर अनेक जनपद सागर तथा नदियोंको अतिक्रम किया। उस समय युधिष्ठिर सबके आगे और भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव यथाक्रमसे एक दूसरेके पीछे चलने लगे। हे भरतसत्तम! कमलनयनी श्यामाङ्गिनी वरारोहा स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रुपदनन्दिनी उन सबके पीछे चलने लगी, इसहीप्रकार जब पाण्डुपुत्रोंने वनकी ओर प्रस्थान किया, तब एकमात्र कुत्ता ही उनका अनुगामी हुआ था। हे महाराज! उस महाप्रस्थानके समयमें भी धनञ्जय रत्नलोभके वशमें होकर उत्तम महत् गाण्डीव नामक धनुष और उन दोनों अक्षय तूणीरोंको परित्याग न कर सके।

हे भारत! इसी प्रकार क्रमसे जाते जाते उन लोगोंने उदयाचलके पासमें स्थित लौहित्य समुद्रके तटपर उपस्थित होकर देखा, कि मूर्त्तिमान अग्निदेव पुरुष विग्रह परिग्रह करते हुए पर्व्वतका मार्ग रोकके सामने निवास करते हैं। देवश्रेष्ठ सप्तार्च्चि पाण्डवोंको समागत देखकर बोले,– हे वीर पाण्डुपुत्रो! मुझे अग्नि जानो। हे महाबाहो युधिष्ठिर! हे भीमसेन! हे अरिन्दम अर्जुन! हे वीर दोनों अश्विनीकुमार! तुम सब कोई मेरा वचन सुनो। हे कुरुश्रेष्ठगण! मैं अग्नि हूं; मैंने ही उस नारायण और अर्जुनके प्रभावसे खाण्डववनको जलाया था। तुम लोगोंका भ्राता यह अर्जुन इस परमायुध गाण्डीवको परित्याग करके वनमें जावे, क्यों कि इस समय इससे इनका अब कुछ प्रयोजन नहीं है; महात्मा कृष्णके निकट जो चक्ररत्न था, वह इस समय प्रस्थित हुआ है, परन्तु अवतारान्तरमें फिर उनके हाथमें स्थित होगा, "मैंने अर्जुनके निमित्त वरुणके समीपसे यह श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव ला दिया था, इसलिये अब यह उन्हें ही दिया जावे।" अग्निकी इतनी बात सुनके सब भाइयोंने अर्जुनसे अनुरोध किया, तब उन्होंने धनुष और दोनों अक्षय तूणीर जलके बीच फेंक दिया। हे भरतश्रेष्ठ! उसे देखकर अग्निदेव भी शीघ्रही उस स्थानमें अन्तर्द्धान हुए और उन लोगोंने भी दक्षिण ओर गमन किया। हे भरतशार्दूल! अनन्तर वे लोग

लवण समुद्रके उत्तर किनारेसे चलते हुए दक्षिण-पश्चिम दिशामें गये, तिसके अनन्तर वहांसे निवृत्त होकर पश्चिमकी ओर जाकर द्वारकामें उपस्थित होके देखा, कि महासागरने उस नगरीको डुबादिया है। हे महाराज! इस ही प्रकार वे योगावलम्बी भरतसत्तमगण पृथिवीकी प्रदक्षिणा करनेके लिये अभिलाषी होकर पश्चिमदिशासे लौटकर उत्तरकी ओर चले।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, संयतचित्त पाण्डुपुत्रोंने इसही प्रकार तीनों दिशाओंकी प्रदक्षिणा करके समाहित मनसे उत्तरकी ओर जाके महागिरि हिमवान्को देखा। वे लोग उस शैलराजको अतिक्रम करते हुए बालुकार्णव पार होकर शिखरश्रेष्ठ महाशैल सुमेरुमें उपस्थित हुए। हे महाराज! वे योगधार्म्मिक गण सुमेरु शिखरपर शीघ्रतासे चढ़ रहे थे, इतने ही समयमें द्रौपदी योगभ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें गिर पड़ी। द्रुपदपुत्रीको गिरती हुई देखकर महाबली भीमसेनने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे पूछा;—हे अरिन्दम! इस राजपुत्री कृष्णाने कभी अधर्म्माचरण नहीं किया, तौभी पृथ्वीतलमें गिरपड़ी इसका क्या कारण है? मुझसे प्रकाश करके कहिये।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषोत्तम! हम सब लोगोंके तुल्य होनेपर भी अर्ज्जुनके ऊपर विशेष रीतिसे इसका महत् पक्षपात था, यह आज उस ही फलको भोग करती है। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा धीमान् पुरुष पुङ्गव भरतसत्तम युधिष्ठिर इतनी बात कहके द्रौपदीकी ओर फिरके न देखकर ही समाहित चित्तसे चलने लगे; इतने ही समयके बीच विद्वान् सहदेव पृथ्वीतलमें गिरे। उसे देखकर भीमने धर्म्मराजसे पूछा,—जो अहङ्कार रहित होकर सदा हम सब लोगोंकी सेवा करते थे, यह वही माद्रीपुत्र किस निमित्त पृथ्वीपर गिरे?

युधिष्ठिर बोले, यह राजपुत्र किसी पुरुषको ही अपने समान प्राज्ञ नहीं समझते थे, वे उस दोषसे ही इस समय गिरे हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इतनी बात कहके ही उस समय सहदेवको परित्याग कर भाइयों तथा उस कुत्तेके सहित चलने लगे। परन्तु द्रौपदी और पाण्डुनन्दन सहदेवको गिरते हुए देखके भ्रातृप्रिय शूर नकुल शोकसे पीड़ित होके पृथ्वीतलमें गिर पड़े, उस वीर श्रेष्ठ सुन्दर नकुलके गिरनेपर भीमसेनने राजा युधिष्ठिरसे पूछा,—जो कभी धर्म्ममार्गसे विचलित नहीं हुए सदा हम लोगोंके आज्ञानुवर्त्ती थे और तीनोंलोकोंके बीच जिनके सदृश रूपवान् कोई नहीं है, यह वही भ्राता नकुल किस निमित्त पृथ्वीतलमें गिरे?

धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रगण्य धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर भीमसेनका ऐसा प्रश्न सुनके बोले,—नकुल सर्व्वदा मनमें ऐसी विवेचना करते थे, कि तीनों लोकोंके बीच मेरे समान रूपवान् कोई नहीं है तथा मैंही सबसे अधिक रूपवान हूं। हे वृकोदर! वे इस समय उस ही गर्व्ववशसे गिरे हैं। हे वीर! जिसके लिये जिस प्रकार विहित हुआ है, वह अवश्य उसहीके अनुरूप फल भोग करेगा, इसलिये इसके निमित्त शोक न करके आगमन करो।

द्रौपदी और भाइयोंको इस प्रकार गिरते हुए देखकर पाण्डुपुत्र परवीरनिसूदन श्वेतवाहन पार्थ शोकसे सन्तापित होकर गिर पड़े। सुरराज सदृश तेजस्वी दुराधर्ष पुरुषसिंह अर्ज्जुनको गिरते तथा मरते देखकर भीमने फिर राजासे पूछा,—मुझे ऐसा स्मरण होता है, कि इन्होंने कभी परिहासके छलसे भी मिथ्या वचन नहीं कहा था तथापि किस कर्म्मविकारसे इस समय ये पृथ्वीमें गिरे?

युधिष्ठिर बोले, अर्ज्जुनने कहा था, कि मैं एक ही दिनके बीच शत्रुओंको जला दूंगा;

परन्तु कार्य्यसे उसे पूरा नहीं किया। हे वीर! ये शूरताभिमानी इस समय उस मिथ्या प्रतिज्ञासे ही गिरे। विशेष करके फाल्गुन धनुर्द्धारियोंमें अग्रगण्य थे, इसलिये सदा दूसरे धनुर्द्धरोंकी अवज्ञा करते थे, यह भी उनके गिरनेका दूसरा कारण है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर इतनी बात कहके ही चलने लगे, उस ही समय भीमसेन गिरे और गिरते गिरते धर्म्मराज युधिष्ठिरसे पूछा,—भो भो राजन्! यह देखिये मैं तुम्हारा प्रिय होके भी गिरता हूं। हे महाराज! मैं किस निमित्त गिरता हूं? यदि आपको यह मालूम हो, तो प्रकाश करके शीघ्र कहिये।

युधिष्ठिर बोले, हे पार्थ! तुम बहुतसा भोजन करते और दूसरेके बलको न देखकर सदा अपने बलकी बड़ाई करते थे, इस ही निमित्त पृथ्वीमें गिरे हो।

महाबाहु युधिष्ठिर इतनी बात कहके उनकी ओर न देखकर ही चलने लगे। मैंने जिसका विषय बारम्बार तुम्हारे निकट वर्णन किया है, उस समय वह एकमात्र कुत्ता ही उनका अनुगमन करने लगा।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर देवराजने रथपर चढ़के पृथ्वी और आकाशमण्डलको अन्नादित करते हुए उस स्थानमें आकर युधिष्ठिरको रथमें चढ़नेके लिये कहा। परन्तु धर्म्मराज युधिष्ठिर भाइयोंको गिरा हुआ देखके शोकसे सन्तापित होकर सहस्रलोचनसे यह वचन बोले,—हे सुरेश्वर! भ्रातृवृन्द मेरे सङ्ग चलें, यही मुझे अत्यन्त अभिलषणीय था, परन्तु वे लोग इस स्थानमें गिरे हुए हैं, इसलिये मैं अपने भाइयोंसे रहित होकर स्वर्गमें जानेकी इच्छा नहीं करता।

इन्द्र बोले, हे भरतपुङ्गव! उनके निमित्त शोक मत करो; वे तुमसे पहले ही सुरलोकमें गये हैं, तुम स्वर्गमें जाके ही द्रौपदीके सहित उन लोगोंको देखोगे। हे भारत! वे लोग मनुष्य शरीर परित्याग करके स्वर्गमें गये हैं, परन्तु तुम निःसन्देह इस शरीरसे ही स्वर्गमें जाओगे।

युधिष्ठिर बोले, हे भूतभव्यगणके ईश्वर! यह कुत्ता मेरा चिरभक्त है, इसलिये इसे अपने सङ्ग स्वर्गमें ले जानेकी इच्छा करता हूं, क्यों कि ऐसा न करनेसे मेरे विचारमें इसके ऊपर निर्द्दय व्यवहार करना सिद्ध होगा।

इन्द्र बोले, हे राजन्! इस समय तुम मर्त्यभावसे रहित होके मेरे सदृश हुए हो और समग्र लक्ष्मी, महती सिद्धि तथा स्वर्गसुख प्राप्त किया है, इसलिये इस कुत्तेको परित्याग करो, उसमें तुम्हारी किसी प्रकार निर्द्दयता प्रकाश करनी न होगी।

युधिष्ठिर बोले, हे आर्य्य सहस्रलोचन! आर्य्य होके इस प्रकारके अनार्य्य कार्य्यको करना दुष्कर है; आप जिस ऐश्वर्य्यकी बात कहते हैं, उसके सहित मेरा सम्मिलन न हो, तौभी मैं इस प्रकार भक्तजनका परित्याग न कर सकूंगा।

इन्द्र बोले, जिन लोगोंके कुत्ता रहता है, उन अपवित्र लोगोंको स्वर्गमें स्थान नहीं मिलता, क्यों कि क्रोधवश नाम देवगण उनके इष्टापूर्त्तके फलको हरण किया करते हैं; हे धर्म्मराज! इसलिये तुम विचार करके इस कुत्तेको परित्याग करो, उसमें तुम्हारी निर्द्दयता न होगी।

युधिष्ठिर बोले, हे महेन्द्र! मुनि लोग भक्तत्यागको ब्रह्महत्याके सदृश महापातक कहा करते हैं, इसलिये मैं निज सुखकी अभिलाषसे इस भक्तको किसी प्रकार भी परित्याग न कर सकूंगा। विशेष करके यदि मेरा प्राण जाय,

तौभी जो संसारमें और किसीको भी नहीं जानता तथा निज प्राणरक्षाके निमित्त अत्यन्त कातर हुआ है, मैं ऐसे शरणागत क्षीणबल भक्तको किसी प्रकार भी परित्याग न करूंगा, यही मेरा नित्यव्रत है।

इन्द्र बोले, हे धर्म्मराज! जो दत्त, इष्ट, विवृत अथवा हुत हो, वह सारमेयके द्वारा दीखनेपर क्रोधवश नाम देवगण यह सब हरण करते हैं, इसलिये तुम इस कुत्तेको परित्याग करो, क्यों कि इस कुत्तेको परित्याग करनेसे ही देवलोकमें जा सकोगे। हे वीर! तुम भाइयों तथा दयिता द्रौपदीको परित्याग करते हुए निज कर्म्मके सहारे इस लोकको प्राप्त करके भी किस निमित्त इस सारमेयको परित्याग नहीं करते हो? तुम सब त्याग करके भी जो आज मोहयुक्त होते हो, यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है।

युधिष्ठिर बोले, हे सुरेश्वर! मरे हुए लोगोंको फिर नहीं जिलाया जा सकता और मरे मनुष्योंके सङ्ग मर्त्य लोगोंकी सन्धि, विग्रह तथा दूसरे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता; मैंने इस लोकस्थितिके वशमें होके ही उन्हें परित्याग किया है, उन्हें जीवित रहते नहीं छोड़ा है। हे शक्र! शरणागतको भय दिखाना, स्त्रीवध, ब्रह्मस्व हरण और मित्रद्रोह, ये जो चार पातक हैं, मैं भक्तत्यागको भी उन्हींके सदृश समझता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मरूपी भगवान् धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त प्रसन्न हुए और स्तवयुक्त मधुर वाणीसे नरेन्द्र युधिष्ठिरसे कहने लगे।

धर्म्म बोले, हे राजेन्द्र भारत! तुमने निज बुद्धि और सब प्राणियोंमें ऐसी दया प्रकाश करके कौलीन्य तथा पिताकी समानता प्राप्त की है। हे पुत्र! जलके निमित्त पराक्रम प्रकाश करके तुम्हारे भाइयोंके मरनेपर तुमने जिस स्थानमें सहोदर भीम तथा अर्जुनको परित्याग करके मातृकुलके साम्याभिलाषसे नकुलको जीवित करनेकी इच्छा की थी, मैंने पहले उस द्वैतवनमें एक बार तुम्हारी परीक्षा की थी। हे नरनाथ! बोध होता है, स्वर्गमें तुम्हारे समान कोई नहीं है, क्यों कि इस सारमेयको भक्त कहके तुम इसके अनुरोधसे देवरथको भी परित्याग करनेके लिये उद्यत हुए हो। हे भरतश्रेष्ठ! इस ही कारण तुमने सशरीर ही अक्षयस्वर्गलोक और अनुत्तम दिव्य गति प्राप्त की।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्म, इन्द्र, मरुद्गण और जिनके वचन बुद्धि तथा कर्म्म पवित्र हैं, वे रजोविहीन पुण्यात्मा देव, देवर्षि और कामविहारी सिद्धगण पाण्डुनन्दनको रथपर चढ़ाके अपने अपने विमानोंमें चढ़कर चलने लगे। कुरुकुलश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर भी उस रथपर चढ़के निज तेजसे पृथ्वी और स्वर्गको परिपूरित करते हुए शीघ्र ही ऊपरको उठने लगे। उस समय सुरपुरमें स्थित सर्व्वलोकवित् बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ बृहत्तपा नारद मुनि ऊंचे स्वरसे यह वचन बोले,—जो सब राजर्षि हैं, वे सभी उपस्थित हैं, परन्तु राजा युधिष्ठिर उन सबकी कीर्त्तिको आच्छादित करके आरहे हैं। मैंने ऐसे किसी राजर्षिकी कथा नहीं सुनी, जिसने निज यश, तेज सच्चरित और सम्पत्तिसे लोकोंको आवृत करते हुए सशरीर ही स्वर्गलोक प्राप्त किया है।

नारद मुनिका वचन सुनके धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर देवताओं तथा अपने पक्षके राजाओंको आमन्त्रण करते हुए बोले,—जिस स्थानमें मेरे भ्रातृवृन्द गये हैं, वह शुभ हो अथवा अशुभ ही होवे, मैं उस ही स्थानमें जानेकी इच्छा करता हूं; दूसरे लोकमें मेरी अभिलाष नहीं है।

धर्म्मराजका वचन सुनकर देवराज पुरन्दर दयालु हृदय युधिष्ठिरसे बोले, हे राजेन्द्र!

अबतक भी किस निमित्त मानुष सुलभ स्नेह-भाव ढारहे हो? निज शुभकर्म्मोंके सहारे जो लोक जय किया है, इस समय उसमें हो बास करो। हे कुरुनन्दन! जो और किसी पुरुषको हो नहीं प्राप्त हुई, तुमने वैसी परम सिद्धि पाई है, परन्तु तुम्हारे भाइयोंको कोई स्थान प्राप्त न हुआ। हे नरनाथ! इस समय भी जो मनुष्यभाव तुम्हें परित्याग नहीं करता है, उसका क्या कारण है? इस स्वर्ग, इन त्रिदिव-निवासी देवर्षियों तथा सिद्धोंको देखो।

सर्व्वभूतेश्वर देवेन्द्रके ऐसी बात कहते रहनेपर धीमान् युधिष्ठिर फिर यह अर्थयुक्त बचन बोले,—हे दैत्यनिषूदन! मैं भाइयोंसे रहित होके इस स्थानमें बास करनेकी इच्छा नहीं करता; इसलिये जहां मेरे भ्रातगण गये हैं, मैं उसी स्थानमें जाऊंगा। हाय! जिस स्थानमें मेरी वह बुद्धिसत्त्व तथा गुणान्विता श्यामा-ङ्गिनी बरवर्णिनी द्रुपदनन्दिनी गई है, मैं उस स्थानमें हो जाऊंगा।

३ अध्याय समाप्त।

———

महाप्रस्थानिक पर्व्व सम्पूर्ण।

महाभारत।

स्वर्गारोहण पर्व्व।

नारायण, नरोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

जनमेजय बोले, फलके उत्कर्षसे त्रिभुवन जिसके अन्तर्भूत होता है, वह त्रिपिष्टप स्वर्गलोक लाभ करनेपर मेरे पूर्व्व पितामह पाण्डवों तथा धार्त्तराष्ट्रोंको कौनसे स्थान प्राप्त हुए थे? मैं इसे ही सुननेकी इच्छा करता हूं। आचार्य्य कर्म्मशील महर्षि व्यासदेवके द्वारा अनुज्ञात होनेसे आप सर्व्वज्ञ हुए हैं, यही मुझे अभिमत है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तुम्हारे पूर्व्व पितामह युधिष्ठिर प्रभृतिने त्रिपिष्टप स्वर्गलाभ करके जो किया था, उसे सुनो। धर्म्मराज युधिष्ठिरने त्रिपिष्टपमें जाके श्रीसम्पन्न दुर्य्योधनको दीप्यमान दिवाकरकी भांति आसनपर बैठे हुए देखा, वह उस समय वीर श्रीसे परिपूरित तथा दीप्तिमान देवताओं और पुण्यकर्म्मशील पुरुषोंके सहित बैठे थे। अनन्तर युधिष्ठिर दुर्य्योधनको देखकर अमर्षके वशमें होकर तथा उनकी श्री देखनेसे सहसा सन्निवृत्त हुए; अनन्तर ऊंचे स्वरसे उन लोगोंसे बोले, मैं अदीर्घदर्शी लोभी दुर्य्योधनके सङ्ग स्वर्गलोकमें वास करनेकी कामना नहीं करता। जिसके निमित्त हम लोगोंने पहले महावनके बीच महाकष्ट भोगकर अन्तमें पृथ्वीपरके सब सुहृदों तथा बान्धवोंको बलपूर्व्वक संग्राममें संहार किया है। धर्म्मचारिणी पाञ्चालराजपुत्री अनवद्याङ्गी द्रौपदी हम लोगोंकी पत्नी होकर सभाके बीच गुरुजनोंके समीप आकृष्ट हुई थी, हे देवगण! इसलिये उस दुर्य्योधनकी ओर देखनेकी मुझे इच्छा नहीं है, मेरे वे भ्राता लोग जिस स्थानमें हैं, मैं वहीं जानेकी इच्छा करता हूं।

नारद मुनि उस समय मानो हंसी करते हुए बोले, हे राजेन्द्र! आप ऐसा न कहिये, स्वर्गवासमें विरुद्ध भाव नाश होता है। हे महाबाहु युधिष्ठिर! इसलिये आप राजा दुर्य्योधनके विषयमें किसी प्रकार ऐसी बात न कहिये, मेरा यह वचन सुनिये। ये जो सब साधु राजा लोग स्वर्गवासी हुए हैं, वे देवताओंके सहित राजा दुर्य्योधनकी पूजा किया करते हैं। ये समरमें अपना शरीर आहुति करके वीरलोकमें आये हैं, आप सब कोई देवतुल्य हैं, इन्होंने सदा आप लोगोंकी हिंसा की है। जो भूपति महाभयसे नहीं डरते थे, उन्होंने ही क्षत्रधर्म्मके अनुसार यह स्थान पाया है, हे तात! द्यूतक्रीड़ाके समय जो हुआ था, उसे मनमें लाना उचित नहीं है और द्रौपदीको जो सब क्लेश हुए थे उसकी भी चिन्ता करनी अनुचित है। संग्राममें अथवा अन्य स्थानमें तुम लोगोंको स्वजनोंके द्वारा दूसरे जो सब क्लेश हुए थे, उसे अब स्मरण करना योग्य नहीं है। इस समय न्यायपूर्व्वक राजा दुर्य्योधनके सङ्ग मिलो। हे नरनाथ! यह स्वर्गलोक है, इस स्थानमें कुछ वैर नहीं होता। जब नारदमुनिने कुरुराज युधिष्ठिरसे इतनी बात कही, तब उस मेधावी

राजाने भाइयोंका विषय पूछते हुए यह वचन कहा। जिसके निमित्त घोड़े, हाथी और मनुष्योंके सहित भूमण्डल विनष्ट हुआ है और हमलोग भी वैर-प्रतिचिकीर्षु होकर क्रोधसे जलते थे, उस अधर्मज्ञ पापाचारी पृथ्वी और सुहृदोंके द्रोही दुर्य्योधनको यदि ये सब सनातन लोक प्राप्त हुए, तो मेरे जो सब भाई वीर महात्मा महाव्रत सत्यप्रतिज्ञ लोकोंके बीच अत्यन्त शूर और सत्यवादी थे, उन लोगोंको इस समय किस प्रकारके लोक प्राप्त हुए हैं? उन सब लोकोंको देखनेकी इच्छा करता हूं। हे ब्रह्मन् नारद! सत्यसङ्गर महात्मा कुन्तीपुत्र कर्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, धृष्टद्युम्नके पुत्रगण और जो सब राजा क्षत्रधर्म्मके अनुसार शस्त्रोंसे मरे हैं, वे सब राजा लोग कहां हैं? उन लोगोंको नहीं देखता हूं। हे नारद! विराट द्रुपद और धृष्टकेतु प्रभृति तथा पाञ्चालपुत्र शिखण्डी द्रौपदीके पुत्रों और दुर्द्धर्ष अभिमन्युको देखनेकी अभिलाष करता हूं।

१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे देवगण! मैं इस स्थानमें अमित तेजस्वी कर्ण, महानुभाव दोनों भाई युधामन्यु और उत्तमौजाको नहीं देखता हूं? जिन सब महारथ राजा और राजपुत्रोंने मेरे निमित्त युद्धरूपी अग्निमें शरीरकी आहुति प्रदान किया तथा मेरे निमित्त मारे गये हैं, वे सिंहसदृश विक्रमशाली सब महारथ कहां हैं? उन पुरुषसत्तमोंने क्या इस स्वर्गलोकको जय नहीं किया? हे देवगण! यदि उन महारथने इन लोकोंको जय किया हो, तो मुझे भी प्रस्तावित महात्माओंके सहित इस स्थानमें स्थित जानिये। क्या राजाओंने इस शुभ लोकमें निवासलाभ नहीं किया? यदि ऐसा ही हो, तो मैं उन भाइयों तथा स्वजनोंके बिना इस स्थानमें निवास न करूंगा। जलाञ्जलि देनेके समय "कर्णका तर्पण करो"– जननीकी ऐसी बात सुनके मैंने सूर्य्यनन्दनको जलाञ्जलि दान की। हे देवगण! इस समय मैं बार बार यह परिताप करता हूं, कि मैं उस परबल पीड़नकारी कर्णके दोनों चरणोंको जननीके चरणोंके सदृश देखकर भी उनके अनुमत न हुआ। हम लोग कर्णके सङ्ग मिले रहते, तो देवराज भी हमें युद्धमें जय करनेमें समर्थ नहीं थे। मुझे मालूम न रहनेसे ही वह सव्यसाचीके द्वारा मारे गये, वह सूर्य्यपुत्र चाहे किसी स्थानमें क्यों न हों, मैं उन्हें देखनेकी इच्छा करता हूं। मैं प्राणसे भी प्रिय भीमविक्रमी भीमसेन, इन्द्र सदृश अर्ज्जुन, यमके समान यमजनकुल-सहदेव और उस धर्म्मचारिणी द्रुपदपुत्रीको देखनेकी अभिलाष करता हूं। मैं इस स्थानमें निवास करनेकी इच्छा नहीं करता, आप लोगोंसे सत्य ही कहता हूं। हे सुरसत्तमगण! भाइयोंसे रहित रहनेसे मुझे स्वर्गसे क्या प्रयोजन है। वे लोग जिस स्थानमें हैं, वही मेरा स्वर्ग है, यह स्थान स्वर्गरूपसे मुझे सम्मत नहीं है।

देवगण बोले, हे तात! यदि उस ही स्थानमें तुम्हारी श्रद्धा हो तो वहां जाओ, विलम्बका प्रयोजन नहीं है। देवराजकी आज्ञासे हम लोग तुम्हारा प्रियकार्य्य करेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रुतापन! देवताओंने उनसे इतनी बात कहके देवदूतसे कहा, "युधिष्ठिरके सुहृदोंको दिखाओ।" हे नृपवर! अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर जिस स्थानमें वे पुरुषपुङ्गवगण स्थित थे, देवदूतके सङ्ग वहीं हो गये। देवदूत आगे और राजा पीछे पीछे पापकर्म्मवाले पुरुषोंसे सेवित उस अशुभ पथमें शीघ्रही जाने लगे। वह मार्ग अन्धकारसे परिपूरित घोरकेश शैवल शाद्वल समन्वित, पापियोंकी गन्धयुक्त, मांस रुधिरके कीचड़-विशिष्ट, दंश उत्पात, भालू मक्खियों

और मच्छड़ोंसे आवृत, इधर उधर सर्व्वत्र मृत शरीरोंसे घिरे हड्डियों तथा केशोंसे भरे कृमि तथा कीटोंसे परिपूर्ण प्रज्वलित अग्निसे समन्तात परिवेष्टित, अयाम ख कौवे, प्रभृति और सूचीमुख गिद्धगण वहां दौड़ते हैं। विन्ध्याचल पर्व्वतके समान प्रेतोंसे वह मार्ग परिवृत, चर्व्वी और रुधिरयुक्त कटे हुए बाहु, जङ्घा, हाथ कटे हुए उदर और कटे पांववाले मुर्दें इधर उधर पड़े हैं। धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर उन मृत शरीरोंके दुर्गन्ध युक्त अमङ्गल लोमहर्षण मार्गसे बहुत चिन्ता करते हुए चलने लगे। मार्गके बीच उष्णजलसे भरी हुई दुर्गमन और चोखे छूरसंवृत असिपत्र वन देखा। जलते हुए सूक्ष्म बालू, आयसीशिला और तेलसे भरे हुए लोहेके घड़े चारों ओर सज्जित हैं, कुन्तीनन्दनने उस समय तीक्ष्ण कांटेयुक्त दुःस्पर्श कूट सेमलके वृक्षों तथा पापियोंकी पीड़ा देखी। वह उस दुर्गम स्थानको देखकर देवदूतसे बोले, हम लोगोंको इस प्रकार कितना मार्ग चलना होगा? मेरे वे भ्रातृगण कहां हैं? वह तुम मुझसे कहो और देवताओंका यह कौनसा स्थान है? उसे भी जाननेकी इच्छा करता हूं।

देवदूत धर्म्मराजका इतना वचन सुनके निवृत्त हुआ और उनसे बोला, यहांतक ही तुम्हें आना योग्य है, इसके अनन्तर निवृत्त होना उचित है; देवताओंने मुझे ऐसा ही कहा था। हे राजेन्द्र! यदि तुम थके हुए हो, तो लौट सकते हो। हे भारत! युधिष्ठिरने निर्व्विण्ण तथा उस गन्धसे मूर्च्छित होकर लौटनेमें मन स्थिर किया तथा वहांसे लौटे। उस धर्म्मात्माने दुःख शोक सहित निवृत्त होके वहांपर चारों ओरसे चिल्लानेवाले मनुष्योंका दीन-वचन सुना। हे धर्म्मज्ञ पुण्याभिजनराजक पाण्डव! आप हम लोगोंके विषयमें अनुग्रहके निमित्त मुहूर्त्त भर निवास करिये, आपके आनेसे पवित्र वायु बहता और तुम्हारे गन्धके अनुगत होता है, उस ही कारण हम सुखी होरहे हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ राजसत्तम पार्थ! हम लोग बहुत समयके अनन्तर आपको देखकर सुखी हुए हैं; हे महाबाहु-भारत इसलिये आप मुहूर्त्तभर निवास करिये, हे कौरव्य आपके खड़े रहते समस्त यातना हम लोगोंको पीड़ा न दे सकेगी। हे महाराज! उन्होंने उस स्थानमें निवास करते हुए विलाप करनेवाले मनुष्योंके इसही भांति अनेक प्रकारके दीन-वचन सुने।

दयालु युधिष्ठिर उन दीन वचन कहनेवालोंको वाणी सुनके क्या "कष्ट है।" ऐसा कहके स्थित रहे। पाण्डुपुत्र अग्रभागमें ग्लानियुक्त दुःखी लोगोंके यह सब वचन बार बार सुनके यह न समझ सके, कि वे किनके वचन हैं? धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर वह सब वचन न समझ सकनेपर बोले, आप लोग कौन हैं और किस निमित्त इस स्थानमें निवास करते हैं? वे लोग ऐसा सुनकर चारों ओरसे कहने लगे। मैं कर्ण हूं, हे प्रभु! मैं भीमसेन हूं, मैं अर्जुन हूं, मैं नकुल मैं सहदेव, मैं द्रौपदी और हम लोग द्रौपदीके पुत्र हैं,—इस ही प्रकार वे लोग चिल्लाने लगे। हे राजन्! उस समय राजा युधिष्ठिरने उन लोगोंके अनुरूप वह सब वचन सुनके विचारा। हाय! दैवने यह क्या किया है। महात्मा कर्ण तथा द्रौपदी आदिने कौनसा पापकर्म्म किया था, जो इस पापगन्धसे परिपूर्ण दारुण स्थानमें निवास करते हैं? मैं इन सब पुण्यकर्म्म करनेवालोंका कुछ दुष्कृत नहीं जानता धृतराष्ट्रका पुत्र राजा सुयोधन कौनसा कर्म्म करके पदानुग पापाचारियोंके सहित वैसा श्रीसम्पन्न हुआ है और महेन्द्रकी भांति लक्ष्मीवान तथा परम पूजित होरहा है? और सर्व्वधर्म्मज्ञ, शूर सत्यागम परायण सबधर्म्ममें रत, याज्ञिक तथा बहुतसी दक्षिणादान करके भी ये लोग इस समय नरक गामी हुए हैं, यह

किस पापका विकार है? क्या मैं सोया हूं अथवा जागता हूं, मुझे चेत है वा अचेत हुआ हूं, कैसा आश्चर्य है। क्या यह मेरा चित्त विकार अथवा चित्त बिभ्रम हुआ है? राजा युधिष्ठिर इस ही भांति अनेक प्रकार बिचारने लगे। धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर शोक दुःखसे युक्त तथा चिन्तासे व्याकुलेन्द्रिय होकर बहुत ही क्रुद्ध हुए और देवताओं तथा धर्मकी निन्दा करने लगे। वह तीव्रगन्धसे सन्तापित होके देवदूतसे बोले, तुम जिन लोगोंके दूत हो, उनके समीप जाओ, मैं वहां न जाऊंगा, इस ही स्थानमें रहूंगा, उन लोगोंसे ऐसा ही निवेदन करो। मेरे आश्रयसे ये मेरे दुःखित भाई सुखी हुए हैं। देवदूत उस समय धीमान् पाण्डुपुत्रका ऐसा बचन सुनके जिस स्थानमें देवराज शतक्रतु निवास करते थे, वहां गया। हे जननाथ! धर्मराजने जो किया था, तथा धर्मपुत्रने जो कहा था, उसने वह सब देवराजके निकट कह सुनाया।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कौरव! प्रधानन्दन युधिष्ठिरके मुहूर्त्तभर निवास करनेके अनन्तर इन्द्रको आगे करके सब देवता उस स्थानमें आये और कुरुराज राजा युधिष्ठिर जिस स्थानमें थे, मूर्त्तिमान् धर्म उस राजाको देखनेके लिये वहां समागत हुए। हे महाराज! उन प्रकाशमान शरीर पवित्र जन्मकर्मयुक्त देवताओंके वहां समागत होनेसे वह अन्धकार दूर हुआ। वहां उन पापियोंकी वैसी यातना, वैतरणी नदी और कूट शाल्मलि वृक्ष न दीख पड़े। बड़े भयानक लोहेके घड़े और समस्त शिला अदृश्य हुईं तथा वहांपर चारों ओर जो सब बिकृत शरीर थे, वे भी न दीख पड़े। राजाने देखा, कि वे सब अदृश्य हुए। हे भारत! अनन्तर देवताओंके समीप शीतल पवित्र पुण्यगन्धयुक्त सुखस्पर्श वायु बहने लगा। जिस स्थानमें परम तेजस्वी राजा धर्मपुत्र स्थित थे, वहां इन्द्रके सहित मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, इनके अतिरिक्त सुरपुरवासी समस्त सिद्ध और महर्षिवृन्द आये। अनन्तर परम श्रीसम्पन्न सुरराज इन्द्र शान्त्वनापूर्व्वक युधिष्ठिरसे यह बचन बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! देवगण तुम्हारे बिषयमें प्रसन्न हुए हैं। हे पुरुषप्रवर! आओ, यहांतक ही भला है, तुम्हें सब अक्षयलोक तथा सिद्धि प्राप्त हुई है; तुम क्रोध मत करो, मेरा यह वचन सुनो।

हे तात! सब राजाओंको ही नरक देखना होता है। हे पुरुषवर! शुभ और अशुभकी दो राशि है, उसके बीच जो लोग पहले सुकृत भोग करते हैं, वे पीछे नरक भोग किया करते हैं और जो लोग पहले नरकभागी होते हैं, वे पश्चात् स्वर्गलाभ करते हैं जो लोग बहुतसे पाप कर्म करते हैं, वे पहले स्वर्ग भोग किया करते हैं, इस ही निमित्त मैंने तुम्हारे कल्याणके निमित्त ऐसा कराया है। हे राजन्! तुमने छलपूर्व्वक द्रोणको सन्तानके निमित्त प्रतारणा की थी, इस ही लिये मैंने तुम्हें छल क्रमसे नरक दिखाया है। तुमने जिस प्रकार कपटनरक देखा, उस ही प्रकार भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रुपदराजपुत्री द्रौपदीने छलक्रमसे नरकमें गमन किया था। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे पक्षके जो सब राजा लोग युद्धमें मरे हैं, देखो वे सभी स्वर्गमें आये हैं। तुम जिसके निमित्त परिताप करते हो, उस शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्द्धर कर्णको परम सिद्धि प्राप्त हुई है। हे नरश्रेष्ठ महाबाहो! सूर्य्यपुत्रको निज स्थानमें देखो। हे पुरुषश्रेष्ठ! शोक परित्याग करो, तुम अपने अन्यान्यभाइयों तथा स्वपक्षके राजाओंको निज निज स्थानमें देखो, तुम्हारे मनका शोक दूर होवे। हे

कौरव! पहिले कष्ट अनुभव करके इसके अनन्तर शोकरहित तथा निरामय होकर मेरे सङ्ग विहार करो। हे तात महाबाहु महाराज! तुम अपनी तपस्यासे उपार्ज्जित पुण्यकर्म्म तथा दानके फलको स्वयं प्राप्त करो। आज रजोहीन वस्त्र भूषणयुक्त देव गन्धर्व्व तथा दिव्य अप्सरावृन्द स्वर्गमें तुम्हारी सेवाकरें। हे महाबाहो! तुमने राजसूय यज्ञसे जिन लोकोंको स्वयं बृद्धियुक्त किया है, उन सब लोकों तथा तपस्याके फलको पाओ। हे युधिष्ठिर! राजाओंके ऊपर तुम्हारे लोक प्रस्तुत हैं। हे पार्थ! तुम जिन लोकोंमें विहार करोगे, वे हरिश्चन्द्रके लोकके सदृश हैं। जिस स्थानमें राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्मन्तपुत्र भरत निवास करते हैं, तुम वहां विहार करोगे। हे राजेन्द्र पार्थ! यह त्रैलोक्यपावनी पवित्र देवनदी आकाशगङ्गा है, इसमें स्नान करके चलना। इसमें स्नान करनेसे तुम्हारा मनुष्यभाव छूट जायगा, तुम शोकहीन, निरायास और वैर रहित होगे।

हे कौरवेन्द्र! जब देवराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार कह रहे थे, तब मूर्त्तिमान् साक्षात् धर्म्मने अपने पुत्रसे कहा, हे महाप्राज्ञ राजेन्द्र! हे पुत्र! मुझमें भक्ति, सत्य बचन, क्षमा और दमसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। हे राजन्! मैंने तुम्हारी यह तीसरी बार परीक्षा की है। हे पार्थ! किसी कारणसे तुम्हें स्वभावसे विचलित करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। पहिले द्वैतवनमें अरणी सहित ब्राह्मणके निमित्त मैंने तुम्हारी प्रश्न-जिज्ञासा-हेतु परीक्षा की थी, तुम उससे निस्तीर्ण हुए हो। हे भारत! हे पुत्र द्रौपदीको आरम्भ करके सहोदरोंके बिनष्ट होते रहनपर मैंने वहां कुत्तेका रूप धरके दूसरी बार तुम्हारी परीक्षा की थी। हे महाभाग! यह मेरी तीसरी परीक्षा है; जब तुम भाइयोंके लिये निवास करनेकी इच्छा करते हो, तब तुम अत्यन्त पवित्र, सुखी और पापरहित हो; हे नरश्रेष्ठ पार्थ! तुम्हारे भाईलोग नरकके योग्य नहीं हैं, देवराज महेन्द्रके द्वारा यह माया प्रयुक्त हुई थी। हे राजेन्द्र! सब राजाओंको अवश्य नरक देखना होता है, इसलिये तुम्हें मुहूर्त्त भर यह कष्टकर दुःख प्राप्त हुआ। हे राजन्! सव्यसाची, भीमसेन, पुरुषश्रेष्ठ नकुल सहदेव और सत्यबादी शूरवर कर्ण, ये लोग बहुत समयतक नरकभोगके उपयुक्त नहीं हैं। हे युधिष्ठिर! राजपुत्री द्रौपदी भी नरकके योग्य नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! आओ त्रिलोकगामिनी गङ्गाको देखो।

तुम्हारे पूर्व्वपितामह वह राजर्षि धर्म्म और सब देवताओंके सहित ऋषियोंसे स्तुतियुक्त पावनी पवित्र जलवाली देवनदी गङ्गाके समीप गये। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने उसमें स्नान करके मानुषी-मूर्त्ति परित्याग की। अन्तमें धर्म्मराज युधिष्ठिर उस गङ्गाजलमें स्नान करके दिव्य देहयुक्त तथा सन्तापरहित होके शोभित होने लगे। अनन्तर धीमान कुरुराज युधिष्ठिर देवताओंसे घिरके ऋषियोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर जिस स्थानमें वे पुरुषश्रेष्ठ शोकरहित शूरवर पाण्डवों तथा धार्त्तराष्ट्रगणोंने निज निज स्थान प्राप्त किया, धर्म्मके सहित वहां गये।

३ अध्याय समाप्त।

———

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिर ऋषियोंके सहित मरुद्गणसे स्तुतियुक्त होकर जिस स्थानमें कुरु-पाण्डवगण निवास करते थे देवताओंके सङ्ग वहां गये। वहां पहिले देखे हुए सादृश्यके द्वारा सूचित ब्राह्मशरीरयुक्त गोबिन्दका दर्शन किया। वह उस समय निज शरीरकी शोभासे दीप्यमान थे, चक्र प्रभृति पुरुषविग्रह घोर दिव्य अस्त्र उनकी उपासना करते थे; सुन्दर तेजशाली वीरश्रेष्ठ फाल्गुन उनकी उपासना करते थे। कुन्तीनन्दनने वैसे स्वरूपयुक्त मधुसूदनका दर्शन किया। उन

पुरुषश्रेष्ठ देवताओंसे पूजित नर-नारायणने युधिष्ठिरको देखकर यथावत् पूजा करते हुए सम्मान प्रदर्शित किया। दूसरी ओर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने शस्त्रधारीश्रेष्ठ कर्णको द्वादश आदित्यके समान देखा। अनन्तर दूसरे स्थानमें मरुद्गणसे घिरे हुए विभु भीमसेनको वैसे ही शरीरयुक्त अवलोकन किया। वह उस समय मूर्त्तिमान् वायुके समीप दिव्य मूर्त्तियुक्त परम श्रीसम्पन्न तथा परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे। अनन्तर कुरुनन्दने दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट निज तेजके सहारे दीप्यमान नकुल और सहदेवको देखा और सूर्य्यकी भांति तेज-शालिनी कमल मालिनी द्रौपदीको शरीरको सुघराईसे सुरपुरको आक्रमण करती हुई देखा; राजा युधिष्ठिरने उसे देखते ही सहसा पूछनेकी इच्छा की। अनन्तर भगवान इन्द्रने उनसे कहा, हे युधिष्ठिर! यह लक्ष्मी है, द्रौपदीरूपसे तुम लोगोंके निमित्त मनुष्य लोकमें गई थी। यह अयोनिजा, सर्व्वलोक कान्ता और पुण्य गन्धशालिनी है, तुम लोगोंके रतिके निमित्त इसे महादेवने बनाया था। इसने द्रुपदकुलमें जन्म लेकर तुम लोगोंको उपजन्य किया था। हे राजन्! ये अग्निप्रभा सदृश अमित तेजस्वी महाभाग पांच गन्धर्व्व द्रौपदीके गर्भसे तुम लोगोंके पुत्ररूपसे जन्मे थे। इस गन्धर्व्वराज मनीषी धृतराष्ट्रका दर्शन करो, इन्हें ही तुम अपने पिताका पूर्व्वज भ्राता जानो, ये अग्नि सदृश तेजस्वी कुन्ती-नन्दन सूर्य्य-पुत्र राधेय तुमसे जेठ तथा श्रेष्ठरूपसे विख्यात् हैं आदित्यसदृश कर्ण जा रहे हैं, उस पुरुष श्रेष्ठको देखो। हे राजेन्द्र! साध्यगण, विश्वदेवगण और मरुद्गणके बीच वृष्णि तथा अन्धकवंशीय महारथोंको और सात्यकी प्रभृति भोजवंशीय वीरवर महाबली पुरुषोंको देखो। चन्द्रमा सदृश तेजस्वी महाधनुर्द्धर सुभद्रापुत्र अपराजित अभिमन्युको चन्द्रके सहित देखो। ये तुम्हारे पिता महाधनुर्द्धर पाण्डु कुन्ती तथा माद्रीके सङ्ग विमानके सहारे सदा मेरे समीप आते हैं। हे राजन्! शान्तनुपुत्र भीष्मको देवताओंके सहित देखो और वृहस्पतिके निकट अपने गुरु द्रोणको अवलोकन करो। हे पाण्डव! ये सब तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य राजा और तुम्हारे योद्धा लोग गन्धर्व्व, यक्ष और पुण्यात्मा लोगोंके सहित गमन करते हैं। हे नरनाथ! किसी किसीने देह त्यागके पवित्र वचन बुद्धि और कर्म्मसे स्वर्ग जय करके गुह्यकगणकी गति प्राप्त की है।

४ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, महानुभाव भीष्म, द्रोण, महाराज धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शङ्ख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन और राजा सत्यजित, दुर्योधनके पुत्रगण, सुवलनन्दन शकुनि, कर्णके पराक्रमी पुत्रगण, राजा जयद्रथ और घटोत्कच प्रभृति जिन लोगोंका नाम नहीं कहा गया तथा जिन राजाओंका वर्णन किया गया है, उन्होंने कितने समयतक स्वर्गमें वास किया था, वह भी मेरे समीप वर्णन करिये। हे द्विजोत्तम! क्या स्वर्ग ही उन लोगोंका शाश्वत स्थान है? अथवा कर्म्मफल भोगनेके अनन्तर श्रेष्ठ पुरुषोंको कौनसी गति प्राप्त हुई? इसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप प्रदीप्त तपस्याके सहारे सब अवलोकन करते हैं।

सौति बोले, उस विप्रर्षि वैशम्पायन मुनिने राजाका ऐसा प्रश्न सुनके महात्मा व्यासदेवकी आज्ञानुसार उनके निकट सब वर्णन करनेकी इच्छा की।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! कर्म्मको समाप्ति होनेपर सब लोग प्रकृतिको नहीं प्राप्त हो सकते; यदि जीव मात्र ही प्रारब्ध कर्म्मोंके शेष होनेपर प्रकृतिको प्राप्त हों, तो सब लोग ही मुक्त हो जावें, संसार भी

खालो हो जाय ; इसलिये कोई कोई कर्म्म शेष होनेपर निज प्रकृतिको प्राप्त होते हैं, सब कोई नहीं ; यही विचारकर तुम्हारा प्रश्न पूरी रीतिसे प्रयोजित हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ कुरु-कुल धुरन्धर महाराज! महातेजस्वी प्रतापवान् अगाधबुद्धि सर्व्वज्ञ सर्व्वगतिज्ञ दिव्यचक्षु पुराण मुनि पराशरसुतने जो कहा है, देवताओंके गोपनीय उस वृत्तान्तको सुनो। हे भरतश्रेष्ठ! जो आठों वसु दीखते हैं, महातेजस्वी महाद्युति भीष्मको उन वसुगणका लोक प्राप्त हुआ है। द्रोण आङ्गिरसप्रवर वृहस्पतिके शरीरमें प्रविष्ट हुए, हार्द्दिक्य कृतवर्म्माने मरुद्गणमें प्रवेश किया। प्रद्युम्न जहांसे आये थे, उस ही सनत्कुमारमें प्रविष्ट हुए। धृतराष्ट्रने दुरासद कुवेरके लोकोंमें गमन किया, उनके सङ्ग यशस्विनी गान्धारीको भी उक्तलोक प्राप्त हुए। पाण्डुने दोनों पत्नियोंके सहित महेन्द्रके स्थानमें गमन किया। विराट, द्रुपद, राजा धृष्टकेतु, शिशठ, अक्रूर, शाम्ब, भानुकम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वोपति भुरि, कंस, उग्रसेन और वसुदेव, नरश्रेष्ठ उत्तर तथा उनके भाई शङ्ख प्रभृति श्रेष्ठ पुरुषोंने विश्वदेवगणोंमें प्रवेश किया। वर्च्चा नाम महा-तेजस्वी प्रतापवान चन्द्रमाके पुत्र जो अभिमन्यु-रूपसे नरश्रेष्ठ अर्ज्जुनका पुत्र हुआ था, उस धर्म्मात्मा महारथने अनन्य-साधारण पुरुषोंकी भांति क्षत्रियधर्म्मके अनुसार संग्राम करके शेष कर्म्म होनेपर चन्द्रमण्डलमें प्रवेश किया है। पुरुषश्रेष्ठ कर्ण मरके सूर्य्यमण्डलमें प्रविष्ट हुए हैं। शकुनि द्वापरको और धृष्टद्युम्न अग्निको प्राप्त हुए। धृतराष्ट्रके सब पुत्र बलोत्कट राक्षस थे, उन महाबलियोंने समृद्धिसम्पन्न तथा शस्त्रसे मरकर स्वर्गमें गमन किया है। विदुर और राजा युधिष्ठिर धर्म्ममें प्रविष्ट हुए। जिन्होंने पितामहके नियोगके अनुसार योगबलसे पृथ्वीको धारण किया था, वह भगवान् अनन्त-देव रसातलमें प्रविष्ट हुए हैं। देवदेव सनातन नारायणके अंशसे जो श्रीकृष्णरूपसे जन्मे थे, वह कर्म्म शेष होनेपर नारायणमें प्रविष्ट हुए।

हे जनमेजय! श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियें थीं, वे कालक्रमसे सरस्वती नदीमें डूबीं, उन्होंने वहां शरीर छोड़के फिर सुरपुरमें आरोहण किया, वेही अप्सरा होकर श्रीकृष्णके समीप गईं। उस महा संग्राममें जो घटोत्कच प्रभृति वीर मारे गये थे, वे देवताओं तथा यक्षोंको प्राप्त हुए। हे राजन्! दुर्य्योधनके सहाय राक्षसरूपसे कहे गये हैं, तोभी उन लोगोंने क्रमसे उत्तम लोकोंको पाया था। उन श्रेष्ठ पुरुषोंने महेन्द्रके भवन, धीमान कुवेर और वरुणके स्थानमें प्रवेश किया था। हे महा-द्युतिमान भारत! यह मैंने तुम्हारे समीप कुरु-पाण्डवोंका समस्त चरित्र विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया।

सौति बोले, हे द्विजश्रेष्ठगण! राजा जनमे-जय यज्ञकार्य्यके बीच इसे सुनके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर यज्ञ करानेवालोंने उनके उस यज्ञकार्य्यको समाप्त किया; आस्तिक मुनि भी सांपोंको छुड़ाके अत्यन्त प्रसन्न हुए, अन्तमें राजाने उन द्विजातियोंको दक्षिणा देके परितुष्ट किया; वे लोग राजासे पूजित होकर निज निज स्थानपर गये। महाराज जनमेजय ब्राह्म-णोंको बिदा करके तक्षशिलासे फिर हस्तिना-पुरमें आये। राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यास-देवकी आज्ञानुसार श्रीवैशम्पायन मुनिके द्वारा कहे हुए ये सब विषय तुम्हारे निकट वर्णित हुए। यह इतिहास अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त उत्कृष्ट है। हे विप्र! सत्यवादी, सर्व्वज्ञ विधिज्ञ धर्म्मज्ञानवान साधु अतीन्द्रित और पवित्र तप-स्यासे शुद्धचित्त ऐश्वर्य्यसम्पन्न सांख्य योगवान् अनेक तन्त्र विशुद्ध कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) मुनि दिव्य दृष्टिके सहारे देखकर लोकमें महानुभाव पाण्डवों तथा अन्यान्य अधिक धन तथा तेजस-म्पन्न क्षत्रियोंकी कीर्त्ति विस्तार करते हुए

इसकी रचना की है। जो बिद्वान् पुरुष सदा पर्व्व पर्व्व इसे सुनाता है, वह पाप नष्ट तथा स्वर्ग जय करके ब्रह्मस्वरूपताको प्राप्त होता है। जो लोग सावधान होकर कृष्णद्वैपायनके रचे हुए यह समस्त वेद सुनते हैं, उनके ब्रह्म-हत्यादिजनित कोटिसंख्यक पाप बिनष्ट होते हैं, जो लोग श्राद्धकालमें ब्राह्मणोंको कमसे कम इसका एक पाद सुनाते हैं, उनके पितरोंके निकट अक्षय अन्न जल उपस्थित होता है। दिनमें इन्द्रियों अथवा मनसे जो पाप किये जाते हैं, महाभारत पाठ करके सायं सन्ध्याके समय मनुष्य उन पापोंसे छूट जाता है। ब्राह्मण स्त्रियोंके बीच घिरके रात्रिमें जो पाप करता है, प्रातःसन्ध्याके समय महाभारतका पाठ करके उस पापसे छूटता है। भरतबंशियोंका उत्तम महत् जन्मवृत्तान्त इसमें वर्णित है, इस निमित्त इसे भारत कहते हैं और महत्त्व तथा भारतत्त्व हेतुसे इसका महाभारत नाम हुआ करता है।

हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग इस महाभारतके निरुक्तको जानते हैं, वे धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयमें सब पापोंसे रहित हुआ करते हैं। जो इसमें है, वह अन्यत्र भी है; जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। यह जय नामक इतिहास मुमुक्षु मनुष्योंको सुनना चाहिये; ब्राह्मण, क्षत्रिय और गर्भिणी स्त्रियोंको इसे अवश्य सुनना योग्य है। इसे सुनके स्वर्गकी इच्छा करनेवाला मनुष्य स्वर्ग पाता है, जयके अभिलाषीको जय प्राप्त होती, गर्भिणीको पुत्र प्राप्त होता अथवा अत्यन्त भाग्य-वती कन्या प्राप्त हुआ करती है। नित्यसिद्ध मोक्षस्वरूप सर्व्वशक्तिमान मुनिने धर्म्मकाम-नासे इस भारतकी रचना की है। उन्होंने चारों वेदोंसे पृथक्भूत दूसरी साठ लाख श्लोकोंकी संहिता रची, उसमें तीसलाख देव-लोक, पन्द्रह लाख पितृलोक, चौदह लाख यक्षलोक और केवल एकलाख श्लोक मनुष्य-लोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। नारद मुनिने इसे देवताओंको सुनाया, असित देवल मुनिने पित-रोंको, शुकदेवने यक्ष तथा राक्षसोंको और श्रीवैशम्पायन मुनिने मनुष्योंको सुनाया है। हे शौनक! जो लोग ब्राह्मणोंको आगे करके इस वेदतुल्य पवित्र महार्थ व्यासदेवके कहे हुए इतिहासको सुनते हैं, वे मनुष्य इस लोकमें सब कामना तथा कीर्त्ति लाभ करके अन्तमें परम सिद्धि पाते हैं, इस विषयमें मुझे कुछ सन्देह नहीं है। पवित्र भारतका सारा पाठ करना तो दूर रहे, जो लोग इसका एक पाद भी पाठ करते हैं, उन श्रद्धावान मनुष्योंके सब पाप छूट जाते हैं। धर्म्मात्मा महर्षि व्यासदेवने पहले चार श्लोकोंमें इस संहिताकी रचना करके अपने पुत्र शुकदे-वको पढ़ाया था। सहस्रों मातापिता, सहस्रों स्त्रीपुत्र संसारमें अनुभूत हुए हैं, किसी किसीको प्राप्त हुए हैं, दूसरे लोगोंको प्राप्त होंगे। सहस्रों हर्षके स्थान और सैकड़ों भयके स्थान दिन दिन मूढ़ मनुष्योंमें आवेश करते हैं, परन्तु पण्डितोंमें प्रवेश नहीं कर सकते। मैं ऊर्द्ध्वबाहु होकर चिल्ला रहा हूं, कोई मेरा चिल्लाना नहीं सुनता, इसलिये धर्म्मके कारण अर्थ और कामकी सेवा क्यों न करेगा? काम, भय, लोभ अथवा जीवनके निमित्त कदापि धर्म्मको न छोड़े, धर्म्म ही नित्य है; सुख और दुःख अनित्य मात्र हैं; जीव नित्य है, जीवके हेतु शरीरादि अनित्य हैं।

जो लोग भोरके समय उठके इस भारत-संहिताका पाठ करते हैं, वे भारतका फल पाके परब्रह्म लाभ करते हैं। सर्व्व ऐश्वर्य्यशाली समुद्र और हिमवान पर्व्वत जिस प्रकार रत्न-निधि कहके विख्यात है, भारत भी वैसा ही है; बिद्वान मनुष्य कृष्णद्वैपायन मुनिके रचे हुए इस वेदको सुनाकर अर्थ भोग करता है। जो लोग भली भांति सावधान होके इस भारत

आख्यानका पाठ करते हैं, उन्हें परम सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। जो लोग वेदव्यास मुनिके ओठसे निकले हुए अप्रमेय पुण्य पवित्र पाप हरनेवाले तथा कल्याणकारी इस महाभारतका पाठ सुनते हैं, उन्हें पुष्करतीर्थके जलसे अभिषेकका क्या प्रयोजन है?

५ अध्याय समाप्त।

फलश्रुति।

जनमेजय बोले, हे भगवन्! पण्डित लोग किस विधिके अनुसार महाभारत सुनें? इसको सुननेसे क्या फल होता है और पारणके समय किन किन देवताओंकी पूजा करनी होगी? हे भगवन्! पर्व्व समाप्त होनेपर क्या दान करना चाहिये और इसे पाठ करनेवाला कैसा अभिलषणीय हो? यह सब आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत वंशवर राजेन्द्र! तुमने मुझसे जो पूछा है, उस विषयमें इसकी विधि और इसके सुननेसे जो फल होता है, उसे सुनो। हे महीपाल! सुरपुर वासीदेवगण क्रीड़ा करनेके लिये भूमण्डलमें आये थे, वे कार्य्य शेष करके फिर स्वर्गमें गये हैं। अच्छा, ऋषियों और देवताओंके पृथ्वीतलमें उत्पत्ति विषयक जो तुमसे संक्षेप कथा कहता हूं, उसे सुनो। हे भारत! रुद्रगण, साध्यगण, शाश्वत विश्वदेवगण, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार सब लोकपाल, महर्षिवृन्द, गुह्यकगण, गन्धर्व्व, नाग, विद्याधर, सिद्धगण, धर्म्म, स्वयम्भू, मुनिगण, कायगोचर पर्व्वत, समुद्र और नदियें, अप्सरावृन्द, ग्रहगण, सम्वत्सर, अयन, सब ऋतु तथा सुरासुरोंके सहित स्थावरजङ्गमयुक्त जगत् इस भारतके एक स्थानमें उत्तम रीतिसे दिखाई देता है। सबके नाम तथा कर्म्मानुकीर्तन-निबन्धन प्रतिष्ठा सुनके मनुष्य घोर पाप करके भी उस ही समय मुक्त होता है। हे भारत! विधिपूर्व्वक पूरी रीतिसे इस इतिहासको संयतचित्त तथा पवित्र हो भारतके पारगामी होकर महाभारत सुननेके अनन्तर श्रद्धापूर्व्वक दान करना उचित है भारत सुनके ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्व्वक शक्तिके अनुसार महादान विविध रत्न कांसेकी दोहनीयुक्त गऊ कामगुण सम्पन्न उत्तम रीतिसे अलंकृत कन्या अनेक प्रकारकी सवारियें, विचित्र गृह, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण, घोड़े, मतवारे हाथी प्रभृति वाहन, शय्या, पालकी, अलंकृत रथ और गृहमें जो सब उत्तम वस्तु तथा मूल्यवान धन हो, वह सब द्विजातियोंको दान करना योग्य है; और कहांतक कहें, आत्मदारा तथा पुत्रोंको परम श्रद्धापूर्व्वक दान करते करते क्रमसे उस विषयमें पारग होवे। शक्तिके अनुसार प्रसन्नचित्त होकर हृष्ट, शुश्रुषु, सङ्कल्प रहित सत्य और सरलतामें रत, दान्त, पवित्र शौचयुक्त, श्रद्धावान् और जितक्रोध होकर मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि लाभ करता है, उसे सुनो। शुचिशील सम्पन्न, सदाचार-सफेद वस्त्रधारी, जितेन्द्रिय, संस्कारापन्न, सर्व्वशास्त्रज्ञ, श्रद्धालु, सत्यवादी जितेन्द्रिय दान तथा मानशील पाठक नियुक्त करना उचित है। पाठ करनेवाला अच्छे आसनपर बैठके स्वस्थ तथा सावधान होकर विलम्ब न करके अद्भुत और उच्छृङ्खल असंसक्त अक्षर और पदयुक्त स्वर तथा भाव सम्पन्न तिरसठ वर्णान्वित कण्ठ-तालु प्रभृति आठों स्थानोंसे समीरित पाठ करे। नारायण, नरोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

हे भरतवंश-प्रदीप महाराज! नियममें रहनेवाला पवित्र श्रोता ऐसे पाठकके सुखसे भारत सुनके फल पाता है, पहिले भारत पारणप्राप्ति होनेपर मनुष्य इच्छानुसार द्विजगणको तृप्त करे, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता

है। परिणाममें वह अप्सराओंसे युक्त उत्तम महत् विमान पाता है और प्रहृष्ट तथा सावधान होकर देवताओंके सहित सुरलोकमें गमन किया करता है। द्वितीय पारण प्राप्त होनेसे अतिरात्र यज्ञका फल पाके रत्नमय दिव्य विमानमें आरोहण किया करता है, दिव्य मालाम्बरधारी दिव्य गन्धविभूषित तथा सदा दिव्य गन्धको धारण करते हुए देवलोकमें निवास करता है। तीसरे पारणको प्राप्त होके द्वादशाह साध्य यज्ञका फल पाता और देवसदृश होकर दस हजार वर्षतक देवलोकमें निवास किया करता है। चौथे और पांचवें पारणमें वाजपेय यज्ञका दूना फल होता है, वह मनुष्य उदित आदित्य तथा जलते हुए अग्नितुल्य विमानमें चढ़के देवताओंके सहित स्वर्गमें जाता है और वहां दस हजार वर्षतक इन्द्रके भवनमें प्रमुदित होके रहता है। छठें पारणमें दूना और सातवेंमें तिगुना फल होता है; वह पुरुष कैलाशके शिखरकी भांति वैदूर्य्य मणिकी वेदी युक्त अनेक प्रकारके मणियोंसे खचित विद्रुम विभूषित उत्तम अप्सराओंसेयुक्त कामगामी विमानमें चढ़के द्वितीय सूर्य्यकी भांति सब लोकोंमें विचरता है। आठवें पारणमें पुरुषको राजसूय यज्ञका फल मिलता है और चन्द्रकिरणसदृश मनोजव घोड़ोंसे युक्त चन्द्रोदय समान रमणीय विमानमें चढ़ता है, वह विमान चन्द्रमासे भी अधिक कान्ततर सुखयुक्त उत्तम स्त्रियोंसे सेवित है; वह पुरुष सुन्दरी स्त्रियोंकी गोदीमें सुखसे सोते हुए मेखला तथा नूपुरके शब्दसे जागता है। हे भारत! नवें पारणमें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है; सोनेके स्तम्भ और वैदूर्य्यनिर्म्मित वेदीयुक्त स्वर्णमय दिव्य गवाक्षके सहारे सब भांतिसे परिवृत द्युलोकचारी गन्धर्व तथा अप्सराओंसे सेवित विमानपर चढ़के परम श्रीसम्पन्न मनुष्य दिव्य माला धारण कर दिव्य चन्दनसे विभूषित देवलोकमें अन्य एक देवताकी भांति देवताओंके सहित प्रमुदित हुआ करता है। दशवें पारणको प्राप्त होनेसे द्विजातियोंकी वन्दना करके मनुष्य किङ्किणीजालके शब्दयुक्त पताका ध्वजासे शोभित रत्नमय वेदी सनाथ वैदूर्य्य मणिमय तोरणयुक्त सोनेके तारोंसे खचित प्रवाल वलभीमुख गीतमें निपुण गन्धर्व्व तथा अप्सराओंसे शोभित पुण्यवानोंके निवासस्थान विमानको सहजमें ही पाता है। सुवर्ण विभूषित अग्निवर्ण मुकुट धारण करके अङ्गमें दिव्य चन्दन लगाये हुए दिव्य आभूषणोंसे भूषित और दिव्य भोगयुक्त होकर दिव्य लोकोंमें विचरता तथा देवताओंकी कृपासे परम श्रीसम्पन्न होता है।

अनन्तर इस ही प्रकार वह अनेक वर्षतक स्वर्गलोकमें निवास करता है, वह गन्धर्व्वोंके सहित इक्कीस हजार वर्ष रमणीय इन्द्रपुरीमें इन्द्रके सहित प्रमुदित होता है। दिव्य यान वा विमानोंमें तथा विविध लोकोंमें दिव्य स्त्रियोंसे घिरके देवताकी भांति निवास करता है। हे राजन! अनन्तर वह सूर्य्यके स्थानमें फिर चन्द्रमाके स्थान तथा महादेवके स्थानमें वास करके विष्णुके समान लोक पाता है। हे महाराज! इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है, इसमें इस ही प्रकार श्रद्धावान् होना चाहिये, मेरे गुरुने ऐसा ही कहा है। मन[illegible] मन जो इच्छा हो, वह पाठ करनेवालेको दान करे; विशेष करके हाथी, घोड़े, रथ, यान तथा समस्त वाहन सोनेके कुण्डल, ब्रह्मसूत्र, विचित्र वस्त्र तथा सुगन्ध दान करे और उसको देवताके समान पूजा करे, तो विष्णुलोक प्राप्त होगा।

हे महाराज! इसके अनन्तर प्रति पर्व्वके पाठमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो जो देना चाहिये, उसे कहता हूं। हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! क्षत्रियलोग जाति देश, सत्य, माहात्म्य और धर्म्मवृत्ति मालूम करके पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके शेषमें कार्य्य करनेमें प्रवृत्त होवें, पर्व्व

समाप्त होनेपर निज शक्तिके अनुसार पूजा करें । हे महाराज ! वस्त्र और गन्धयुक्त करके उहली पाठककी विधिपूर्व्वक उत्तम मधु तथा दूध भोजन करावे । हे राजन् ! अनन्तर आस्तीकपर्व्वमें बहुतसा फल मूल और मधु घृतके सहित पायस भोजन करावे और अपूप पूप तथा मोदकयुक्त गुड़ोदन दान करे । हे राजेन्द्र ! सभापर्व्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे । बनपर्व्वमें ब्राह्मणोंको फलमूलोंसे तृप्त करे । अरण्यपर्व्वमें जलभरे घड़े प्रदान करे और ब्राह्मणोंको सुख्य तृप्तिजनक धान्य मूल फल तथा सर्व्वकामगुणयुक्त अन्न दान करे । विराटपर्व्वमें विविध वस्त्र प्रदान करे । हे भरतश्रेष्ठ ! उद्योगपर्व्वमें ब्राह्मणोंको गन्धमालासे अलंकृत करके सर्व्वकाम गुणान्वित अन्न भोजन करावे । हे राजेन्द्र ! भीष्मपर्व्वमें उत्तम सवारी प्रदान करके सर्व्वगुणमय संस्कारयुक्त अन्न दान करे । हे राजेन्द्र ! द्रोणपर्व्वमें ब्राह्मणोंको परमार्च्चित भोजन, शय्या, धनुष और उत्तम तलवार दान करनी चाहिये । कर्णपर्व्व समाप्त होनेपर संयतचित्त होकर ब्राह्मणोंको सर्व्वकामसम्पन्न संस्कारयुक्त अन्न पूरी रीतिसे दान करे ।

हे राजेन्द्र ! शल्यपर्व्व समाप्त होनेपर गुड़ोदनके सहित लड्डु तथा तृप्तिजनक अपूपके सहित समस्त अन्न दान करे । गदापर्व्वमें सुद्गमिश्रित ऊपर कही हुई सब वस्तु दान करे । स्त्रीपर्व्व समाप्त होनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको रत्नोंसे परितृप्त करे । ऐषीकपर्व्वमें पहले घृतौदन दान करे; अनन्तर सर्व्वगुण सम्पन्न उत्तम रीतिसे संस्कारयुक्त अन्न प्रदान करे । शान्तिपर्व्व समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे । अश्वमेधपर्व्व सम्पूर्ण होनेपर सर्व्वकामसम्पन्न भोजन प्रदान करे । आश्रमनिवासपर्व्व समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे । मौषल और महाप्रस्थानपर्व्व समाप्त होनेपर सर्व्वगुणसम्पन्न गन्धमालानुलेपन प्रदान करे । स्वर्गारोहण पर्व्व समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे । हरिवंश समाप्त होनेपर सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे और ब्राह्मणोंको निष्कयुक्त एक एक गऊ दान करे । हे राजन् ! दरिद्रको इसका आधा दान करना चाहिये ; सब पर्व्वोंके समाप्त होनेपर बुद्धिमान मनुष्य पाठ करनेवालेको सुवर्णसंयुक्त पुस्तक प्रदान करे । हरिवंश पर्व्वमें ब्राह्मणोंको पायस भोजन करावे । हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! प्रति पारणमें शास्त्र जाननेवाला मनुष्य सावधान होके विधिपूर्व्वक सारी संहिता समाप्त करके पवित्र स्थानमें क्षौम वस्त्र पहरके सफेद अम्बर मालाधारी उत्तम रीतिसे अलङ्कृत तथा समाहित होकर पृथक् पृथक् संहिता पुस्तकको गंधमालाके सहारे पूजा करे । भक्ष्य मांस, पीने योग्य तथा विविध पवित्र वस्तुओंके सहित सुवर्णकी दक्षिणा देवे । अनन्तर सब देवताओं तथा नर-नारायणका कीर्त्तन करे ; अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गंधमालासे अलंकृत करके विविध काम्यविषय तथा अनेक प्रकारके दानसे परितृप्त करे, तो मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है और प्रति पर्व्वमें यज्ञका फल प्राप्त हुआ करता है ।

हे भरतश्रेष्ठ ! जिससे अक्षर, पद और स्वरोंका स्पष्टरीतिसे उच्चारण होसके, ऐसा विद्वान पाठक भविष्य-भारत सुनावे । श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर उन्हें विधिपूर्व्वक दान करना उचित है । हे भरतश्रेष्ठ ! उत्तम रीतिसे अलंकृत वाचकको भोजन कराके परितुष्ट करनेसे उत्तम कल्याणदायिनी प्रीति हुआ करती है । ब्राह्मणोंके परितुष्ट होनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं । हे भरतश्रेष्ठ ! इसलिये सुन्दर तथा विविध सर्व्व कामके द्वारा न्यायके अनुसार ब्राह्मणोंका भरण करना उचित है । हे नरश्रेष्ठ ! यह मैंने तुम्हारे समीप भारतपाठकी विधि कही है, इसलिये तुमने मुझसे जो

पूछा था, उस विषयमें श्रद्धावान् होना उचित है।—हे नृपवर! जो लोग परम कल्याण चाहते हैं, उन्हें भारत सुनने तथा पारणमें यत्नवान होना उचित है। सदा भारत सुने, सदा भारत कहे, जिसके घरमें भारत रहता है; जय उसके हस्तगत है। भारत परम पवित्र है, भारतमें विविध कथा विद्यमान हैं, देवतालोग भारतकी सेवा करते हैं, भारत ही परम पद है। हे भरतश्रेष्ठ! भारत सब शास्त्रोंसे उत्कृष्ट है, भारतसे मोक्ष प्राप्त होती है, यह तत्त्वकथा कहता हूं, महाभारत आख्यान, पृथ्वी, गऊ, सरस्वती, ब्राह्मणों तथा केशवका कीर्त्तन करनेसे मनुष्य अवसन्न नहीं होता।

हे भरतश्रेष्ठ! वेद, रामायण, पवित्र पुराण भारत, आदि, अन्त और मध्यमें हरि सर्व्वत्र कीर्त्तित होते हैं। जिस स्थानमें पवित्र विष्णुकथा तथा श्रुति कीर्त्तित होती है, परमपदकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको उसे अवश्य सुनना चाहिये। यह परम पवित्र है, यही धर्म्मका निदर्शन तथा यही सर्व्वगुणसम्पन्न है; इसलिये ऐश्वर्य्यके अभिलाषी लोगोंको अवश्य सुनना चाहिये। जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे अन्धकार दूर होता है, वैसे ही इसके सुननेसे कायिक, वाचिक और मानसिक सब पाप नष्ट हुआ करते हैं। अट्ठारहों पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वैष्णव मनुष्य महाभारत सुननेसे वही फल पाता है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। स्त्रियें तथा पुरुषवृन्द इसे सुननेसे वैष्णवपद प्राप्त करते हैं। पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको यह वैष्णव यश सुनना योग्य है। यथोक्त मानाभिलाषी मनुष्य इसे सुनके पाठ करनेवालेको शक्तिके अनुसार सुवर्णमूल्य दक्षिणा देवे। जो लोग अपने कल्याणकी इच्छा करते हैं, वे पाठ करनेवालेको सोनेके सींगयुक्त सवत्सा कपिला गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करें।

हे भरतश्रेष्ठ! पवित्र मनुष्य अलंकार विशेष करके कानका आभरण दान करे तथा विशेष रीतिसे अन्यान्य वस्तु प्रदान करे। हे नरनाथ! पाठ करनेवालेको भूमि दान करे; भूमिदानके समान दान न हुआ और न होगा, जो मनुष्य सदा महाभारत सुनता अथवा सुनाता है, वह सब पापोंसे छूटके वैष्णवपद पाता है, वह ग्यारह पुरुषोंतक पितृलोकका, अपनी पत्नी और पुत्रका उद्धार करता है। हे नरनाथ! महाभारत सुनके दशांश होम करना चाहिये।

हे नरश्रेष्ठ! आपके समीप मेरे द्वारा यह सब वर्णित हुआ। जो लोग भक्तिपूर्व्वक आदिसे इस महाभारतको सुनते हैं, वे ब्रह्मघाती गुरुतल्पी, सुरा पीनेवाले, चोरी करनेवाले अधिक कहांतक कहें, चाण्डालयोनिवाले होनेपर भी पापोंसे छूट जाते हैं। जैसे सूर्य्य अन्धकारको हरता है, वैसे ही वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुकी भांति निःसन्देह प्रमुदित होते हैं।

६ अध्याय समाप्त।

स्वर्गारोहण पर्व्व सम्पूर्ण।

महाभारतका माहात्म्य और अष्टादश पर्व्व समाप्त।